एकलव्य-सम एक लक्ष्य धर

सतत साधना के पथ पर

पावन पा पाथेय 'गुप्त' ही

बढ़ें सदा जीवन-पथ पर।

॥ श्री वाक् पतये नमः ॥

अहो तव प्राकृत हारि प्रिया वक्त्रेन्दु सुन्दरम् ।
सूक्तयो यत्र राजन्ते सुधा निष्यन्द निर्भरा ॥

× × × ×

संस्कृताद् प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रंश भाषणम् ॥

× × × ×

अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तद् तद् देशेषु भाषितम् ।

× × × ×

व्याकर्तुं प्राकृतत्वेन गिर परिणाति गता ॥

प्रस्तावना

भारतीय आर्य भाषाओ के विकास तथा प्रसार मे प्राकृत भाषायें निश्चित शृखलायें हैं। इतिहास के निर्माण मे आदि मध्य एव अवसान की सभी घटनायें परस्पर अनुस्यूत होती हैं। प्रत्येक भाषा की शब्दावली स्वय अपने स्वरूप मे एक विस्तृत इतिहास है। शब्दो के स्वरूप सतत परिवर्तित होते रहते हैं और व्यक्ति अपनी सुविधानुसार उनका रूप वोलियो मे विकृत अथवा परिष्कृत कर लेता है।

सस्कृत साहित्य के रूपको तथा उपरूपको मे महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची तथा मागधी प्राकृतो का प्रयोग परम्परा से होता चला आया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नाटककार सस्कृत के साथ ही साथ इन प्राकृत भाषाओ का भी पूर्ण ज्ञान उपलब्ध करता था। प्राकृत भाषाओ का सस्कृत से अधिक साम्य है। प्रतीत होता है कि प्राकृतजनो मे उच्चारण के भेद से एक ही शब्द के अनेक रूप प्रचलित हो गये और उनका प्रयोग प्रचुर मात्रा मे होने लगा। कालान्तर मे उन शब्दो को कुछ नियमो मे बाँधा गया और उन्ही नियमो को प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थ प्राकृत भाषाओ के व्याकरण के नाम से व्यवहृत हुए।

सस्कृत के द्वादश के स्थान पर हम सम्प्रति हिन्दी भाषा मे वारह का प्रयोग तो करते हैं पर यह वारह द्वादश से किन रूपो द्वारा अपने वर्तमान स्वरूप मे आया इस ओर हमारा ध्यान नही जाता। इसी प्रकार षष्ठी से छट्ठी फिर छट्ठी से छठी कैसे परिवर्तित हुए। इन रूपो को किस प्रकार तथा किस क्रम से वर्तमान रूप प्राप्त हुआ? इसके सम्वन्ध मे हिन्दी मे शास्त्रीय शैली पर लिखी गई कोई मौलिक पुस्तक नहीं थी। उधर उपाधि कक्षाओ मे अध्ययन करने वाले छात्रो की यह उत्सुकता कि 'वृश्चिक' का 'विच्छुओ' रूप किन नियमो से हो गया अथवा 'भवति' का 'होइ' रूप कैसे वना, आदि इस बात के लिए प्रेरित करते थे कि छात्रो एव अपने मान्य विद्वानो के हाथो मे हिन्दी भाषा मे एक ऐसी पुस्तक समर्पित की जाय जिससे

कि उनके औत्सुक्य तथा कौतूहल का कुछ शास्त्रीय समाधान हो सके। अत
प्रस्तुत ग्रन्थ का यही प्रयोजन है ।

इस पुस्तक मे प्राकृत भाषाओ का विवेचन वररुचि के प्राकृत प्रकाश के आधार पर ही किया गया है, क्योकि उनका यह ग्रन्थ प्राकृत व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ है।

आशा है कि विज्ञ पाठक इस ग्रन्थ से कुछ साहित्यिक रसास्वाद अवश्य प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि :—

आपरितोपाद् विदुपा न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम् ।

दीपमालिका
(१९६१)

विदुषा वशंवद —
नरेन्द्रनाथ

विषय-सूची

पृष्ठ सख्या

१	प्राकृत भाषाओ की उत्पत्ति—विभिन्न मत	१
२	प्राकृत भाषाओ के भेद	९
३	प्राकृत भाषाओ का साहित्यिक सविधान	१७
४	रूप-सिद्धि	२१
५	प्राकृत शब्द-सिद्धि	२५
६	प्राकृत भाषाओ मे सर्वनाम, निपात, कारक तथा क्रियायें	१३३
७	प्राकृत भाषाओ का उद्भव, वैशिष्ट्य एव साहित्य	१९३
८	वररुचि प्रणीत प्राकृत प्रकाश के सूत्र तथा उनके अर्थ	२०७

प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति—विभिन्न मत

आन्तरिक रमणीयता वाह्य सौन्दर्य सापेक्ष्य अवश्य होती है। कला की पूर्णता तथा महत्ता यही है कि वह अनुभूत्यात्मक हृदय की कोमल भावनाओ के साथ रागात्मक सम्वन्ध स्थापित कर सके। यही रूप-सविधान चित्त तथा इन्द्रियो की वृत्तियो को स्वाभिमुख आकृष्ट करता है। हृदय के आह्लाद के लिये वस्तु-स्वरूप तथा वस्तु-सविधान दोनो ही आवश्यक हैं। उपपत्ति के लिये नितान्त आवश्यक है कि उसका समुचित उपस्थान भी किया जावे। धूलि मे पडा हुआ गुलाब का कोमल कुसुम, कवरी-शृखला मे ग्रथित होकर ही अधिक हृद्य तथा रम्य प्रतीत होता है। गन्दे तालाव के किनारे आसीन वक-पक्ति, श्याम-घन-घटाओ मे उडती हुई वक-पक्ति का सन्तुलन कैसे कर सकती है? स्वर्णकार अपनी कल्पनाओ की उपपत्ति को मणि-काञ्चन के उपस्थान से ही आभिरामिक बनाता है।

कुशल शिल्पी की मानसिक अनुभूत्यात्मक आकृति तक्षण-कला के द्वारा जिस रूप का सविधान करती है उसके लिए समुचित तथा व्यवस्थित उपकरण भी उपदेय होते हैं। चित्रकार भी तूलिका, रग पट एव अन्यान्य उपकरणो के साहाय्य से ही अपनी कृति को कुशलता पूर्वक उपन्यस्त करता है। साध्य की सिद्धि के लिये साधन सम्पन्नता नितान्त आवश्यक है।

साहित्यिक कलाकार भी भावाभिव्यक्ति के लिये प्रमुख रूप से भाषा के ही आश्रित होता है। भाषा विचारो तथा अनुभूतियो को केवल आकार ही प्रदान नही करती प्रत्युत उनको अन्य सवेद्य भी वनाती है—साथ ही स्थायित्व भी प्रदान करती है।

जिस भाषा के माध्यम से व्यक्ति अपनी शैशवावस्था से ही कुछ सोचता, समझता या विचार करता है या जिस भाषा के द्वारा मातृगर्भ से वियुक्त होने पर मन मे सस्कारो का अदृश्य रूप से सचय करता रहता है वही उसकी मातृ-भाषा कहलाती है। जो बोली उसके वातावरण को प्रभावित करती है वह उसको भी अवश्य प्रभावित करती है और वह स्वय उसी भाषा मे अपने आप सोचता विचारता भी है। यही उसकी स्वाभाविक भाषा वन जाती है।

जन साधारण, अशिक्षा के कारण, स्वाभाविक तथा सरल उच्चारण के कारण तथा सक्षेप की प्रवृत्ति अथवा प्रयत्न लाघव के कारण भापाओ के मूल शब्दो के भिन्न-भिन्न उच्चारण करता है । यह प्रक्रिया निरन्तर प्रवाहित रहती है और इस प्रकार अनेक शब्द तथा ध्वनिया वनती और विगडती रहती हैं ।

साधारण मनुष्य भाषा के सरल से सरल तथा मधुर रूप के द्वारा भावो की अभिव्यक्ति चाहता है। भापाओ के शुद्ध रूपो तथा व्याकरण सम्मत प्रयोगो की वह अपेक्षा नही करता और इस प्रकार शब्दो की मूल प्रकृति चाहे कुछ भी हो उससे उसको विशेप प्रयोजन नही होता । वह तो उस मूल प्रकृति से निष्पन्न प्राकृत शब्दो का ही प्रयोग करता है। वे ही सुगम, सरल ,'तथा मधुर प्रतीत होते हैं। जो पद विना किसी विशेप प्रयत्न तथा वनावट के स्वय निकलते हैं उन्ही का प्रयोग किया जाता है । शास्त्रीय, वैज्ञानिक शुद्ध प्रयोग लोक भापा मे न्यून ही होता है। इस प्रकार शब्दो की मूल प्रकृति से सम्वन्धित अनेक प्राकृत-पदो का निर्माण होता है ।

कालान्तर मे इन प्राकृत प्रयोगो को मूल प्रकृति मान कर इनसे भी अनेक अपभ्रश या देशी पद वनते रहते हैं और इस प्रकार एक ही शब्द के अनेक रूप समय-समय पर बनते और बिगडते रहते हैं । इन परिवर्तनो के अनेक कारण होते हैं— उच्चारण की सुगमता इनमे प्रधान कारण है ।

भारतीय आर्य शाखा की वैदिक भाषा ही कालान्तर मे सस्कृत मे परिणत हुई और वही पुन प्राकृत, अपभ्रश आदि रूपो को धारण करती हुई देशी भापाओ के रूप मे ही प्रचलित हुई है ऐसा ही विचार आर्य जाति की भाषा के सम्वन्ध मे है । हजारो वर्षों के उपरान्त आजकल हिन्दी की वोलियो में प्रचलित शब्दो का मूल प्रकृति से चाहे प्रत्यक्ष सम्वन्ध न प्रतीत होता हो परन्तु ऐसे अनेक शब्द हैं जो आज भी इसी वात को स्पष्ट करते हैं कि वाह्य रूप के परिवर्तित हो जाने पर भी उनके अन्दर मूल प्रकृति का आभास अवश्य मिलता है ।

वेदो मे वैश्वानर अग्नि का अनेक स्थलो पर उल्लेख मिलता है । उपनिषद् काल मे वैश्वानर विद्या आध्यात्म सम्वन्धी एक विशेप विद्या थी जिसका अध्ययन तथा अध्यापन भी होता था उत्तर भारत मे विशेषकर' अवध प्रान्त मे अग्नि मे किन्ही पदार्थो को हवि के रूप मे डालने को 'वसन्दर करना कहते हैं। वसन्दर का निश्चय ही वैश्वानर से कुछ अवश्य आत्मीय सम्वन्ध प्रतीत होता है। न केवल ध्वनि या स्वर साम्य से अपितु

भाव साम्य से भी क्योकि जिस भावना को वेदो का वैश्वानर द्योतित करता है उसी को किसी न किसी रूप मे 'बसन्दर' भी करता ही है। आज बसन्दर देशी भाषा का शब्द हो गया है। इस प्रकार शब्द स्वत घिसते-मजते रहते हैं। कभी-कभी आवश्यकतानुसार रूप का आमूल परिवर्तन हो जाता है और यदि मूल प्रकृति के उच्चारण मे कुछ कठिनता होती है तो नया रूप ही मूल प्रकृति धारण कर लेती है।

अस् धातु का जिस अर्थ मे प्रयोग वैदिक भाषा मे होता था आज उसी को हम, हवै या है के रूप मे पाते हैं। युष्माकम् का तुम्हार होना इसी पूर्ण रूप परिवर्तन को प्रकट करता है। इसी प्रकार अनेक शब्द देशी भाषाओ मे आज भी अपनी मूल प्रकृति के साथ विद्यमान है।

इन परिवर्तित रूपो के कारण जो नवीन बोलिया या भाषायें समय-समय पर लोक मे प्रचलित हो जाती हैं। कालान्तर मे वैयाकरण उनके लिये एक नियम की, एक रूपता की व्यवस्था करते हैं। वे किसी नवीन भाषा को निर्मित नही करते अपितु प्रचलित भाषा की स्वरूप व्यवस्था ही करते है।

इन्ही प्राकृत भाषाओ मे अत्यन्त उत्तम तथा उच्च कोटि का साहित्य भी निर्मित हुआ है। लोक मे प्रचलित भाषा मे निर्मित साहित्य नागरिको तथा साहित्यिक व्यक्तियो के लिये भले ही अरुचिकर तथा स्वारस्य रहित प्रतीत हो पर लोक मे वही सुरुचिपूर्ण और रमणीय होता है। किसी भी देश की अथवा जाति की कुछ विशिष्ट रुचिया अथवा प्रवृत्तिया होती हैं उनके लिए किसी कारण विशेष का ज्ञात करना दुष्कर होता है।

वर्तमान अग्रेजी भाषा मे त, द, छ, झ, ञ, ङ, ठ, ढ ण, ध्वनिया नही हैं फिर भी प्रयोग तथा व्यवहार की दृष्टि से भाषा मे किसी भी प्रकार का व्यवधान नही प्रतीत होता है। वर्तमान हिन्दी मे भी ज् श् ख् ज् तथा स्वरो की पडी हुई ध्वनिया, नही हैं पर भाषा के प्रवाह मे विशेष अडचन नही। इसी प्रकार प्राकृत भाषाओ सर्वत्र न् ध्वनि के स्थान पर ण् का होना, ङ् की ध्वनि का अभाव, ट् को ठ होना, य का सर्वत्र ज् होना आदि ऐसी प्रवृत्तिया हैं जो उस समय की प्रवृति तथा रुचि का निर्देश करती हैं और इनके अभाव मे भी भाषा का सौन्दर्य विकृत नही होता। प्राकृत भाषाओ के अभ्युदय के काल में नयनम् को **'णअण'** कहना नगरम् को **'णअर'** नदी को **'णई'** निद्रा को **'णिद्दा'** कहना ही मधुर तथा सरल प्रतीत होता था। यज्ञ का रूप **'जण्णों'** प्रचलित था। युधिष्ठिर का **'जहिट्ठिलों'** रूप इस समय अनभ्यास के कारण

भले ही सुन्दर न प्रतीत हो पर प्राकृत भाषाओ मे यही रूप मधुर तथा रुचि पूर्ण था।

इस प्रकार समय-समय पर प्रत्येक देश तथा काल मे भाषाओ के रूप विधानो मे इसी प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। ये परिवर्तन, लोक रुचि को ही प्रकट करते है क्योकि यदि लोक इनको स्वीकार न करे तो इनका प्रचलन ही नही हो सकता।

इसी आधार पर किसी कवि ने

"अहो तत्प्राकृत हारि प्रिया व क्त्रेन्दु सुन्दरम्।
सूक्तयो यत्र राजन्ते सुधा निष्यन्द निर्झरा."

अर्थात् स्नेहमयी प्रियतमा के चन्द्र रूपी मुख के समान वह प्राकृत भाषा आकर्षक तथा मनोहर है, जिस प्राकृत भाषा मे अमृत के प्रवाह के निर्झरो के समान सुन्दर सूक्तिया प्रकाशित रहती हैं। इस प्रकार प्राकृत भाषाओ में भी ललित एव मधुर साहित्य की न्यूनता नही है। अत इन भाषाओ का पठन-पाठन भी सहृदय भावुको के लिये वाञ्छित है।

नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के अनुसार

"नाना देश समुत्थ हि काव्य भवति नाटके"

अर्थात् नाटको मे भिन्न-भिन्न देशो मे निर्मित काव्य अवश्य होता है। यह भी असन्दिग्ध ही है कि जिस देश मे जिस काव्य की रचना होती है वह उस देश की भाषा मे ही होती है यदि वह रचना लोक साहित्य से सम्बन्धित है। साधारणत कवि यदि वह अधिक विद्वान् तथा बहुश्रुत नही है तो उसको अपने देश की भाषा मे काव्य रचना करने मे सरलता होती है और इस प्रकार नाटको मे नाना प्रकार की बोलियो तथा भाषाओ के व्यवहार से यह आवश्यक था कि साधारण व्यक्ति अन्य देशो की भाषाओ से भी अवगत अवश्य होते क्योकि यदि केवल नाटक मे काम करने वाले पात्र ही रट रटाकर इनका प्रयोग करते होते तो दर्शक वृन्द को नाटक के समझने मे अत्यन्त असुविधा होती। अत. प्राकृत भाषाओ का ज्ञान साहित्यिक भाषा (सस्कृत) के साथ ही साथ चलता था।

वर्तमान समय मे भी नगरो में बोली जाने वाली नागरी (हिन्दी) मे यदि कोई नाटक लिखा जावे और उन नाटको मे यदि ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्ति भी कुछ अभिनय करें तो यदि वे शुद्ध नागरी का उच्चारण करते हैं तो यह अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है अत वे लोग ग्रामीण क्षेत्र मे प्रचलित हिन्दी

की बोलियो का ही प्रयोग करते हैं और यह स्वाभाविक भी है। जैसे **'मुझे क्या करना है'** इस वाक्य को बैसवाडी बोली मे 'मोहिका का करै का है' यही ग्रामीण व्यक्ति के मुख से अधिक उपयुक्त होता है और इस वाक्य को समझने वाले दर्शक वृन्द भी इस बोली से अवश्य अवगत होने चाहियें।

सस्कृत को मूल प्रकृति मानकर उनसे ही भिन्न-भिन्न पदो, ध्वनियो तथा रूपो का निर्माण होता है। वही भाषाओ का प्राकृत पाठ है ऐसा विचार भरत मुनि का है—

"एतदेव विपर्यस्तं सस्कार गुण वर्जितम्।
विज्ञेय प्राकृत पाठ्य नाना वस्थान्तरात्मकम्।"

अर्थात् मूल प्रकृति सस्कृत के पदो को विपर्यस्त करके आगे के वर्ण को पीछे, पीछे के वर्ण को आगे मध्य के वर्णों को आगे पीछे करके भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलना प्राकृत पाठ कहलाता है। जैसे लखनऊ, को नखलऊ, अमरूद को अरमूद, रिक्शे को रिस्का आदि विपर्यस्त पाठ हैं। यह प्राकृत पाठ सस्कारो अर्थात् शुद्ध उच्चारण, स्थान तथा प्रयत्नो द्वारा शुद्ध प्रयोग अथवा स्वरादि गुणो से रहित होता है। जैसे लेफ्टिनेन्ट का लपटन या लपटन्ट, लैन्टर्न का लालटेन, टिकट का टिक्कस आदि सस्कारो से रहित प्रयोग लोक मे प्रचलित हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थाओ मे एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न प्रयोग प्रतिदिन हम किया ही करते हैं। दादा, दद्दा, ददुआ, भाई, भैय्या, भैवा, भायल प्रयोग एक दादा तथा भाई के लिये अपनी मानसिक अवस्थाओ के अनुरूप होते रहते हैं। भरत मुनि के अनुसार ये सब प्रयोग एक ही मूल प्रकृति से सम्बन्धित होने के कारण प्राकृत शब्दो की कोटि मे आ सकते हैं।

आचार्य भर्तृहरि ने इन प्राकृत प्रयोगो के सम्बन्ध मे विवेचना करते हुए लिखा है कि—

'दैवीवाक् व्यवकीर्णेयम शक्तैरभि धातृभि.'

अर्थात् दैवीवाक् (अमर भारती या सस्कृत भाषा) अशक्त कहने वालो के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से विस्तार या फैलाव को प्राप्त होती है। अशक्ति से यही तात्पर्य है कि साधारण जन, शिक्षा के अभाव और अभ्यास के न होने से शब्द की मूल प्रकृति से परिचित नही होते और न वे उनको शुद्ध प्रयोगो को ही जानते हैं अत अपनी सुविधा के अनुसार उन शब्दो का व्यवहार करने लगते है और फिर क्रमश जन साधारण मे उन्ही का प्रयोग अथवा व्यवहार होने लगता है। इस प्रकार केवल अशक्ति अथवा शुद्ध प्रयोग के असामर्थ्य के कारण शब्दो के विविध रूप प्राकृत शब्द से कहे जाते हैं।

इन प्राकृत शब्दो के लालित्य तथा माधुर्य के सबध मे भिन्न-भिन्न विचार धारायें हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि तो इस प्रकार के विकृत शब्दों के प्रयोग के सर्वथा विरुद्ध प्रतीत होते हैं। वे तो इस प्रकार के रूपो को शब्द कहने मे भी सकोच करते है। उन्होने इनको अपशब्द की सज्ञा दी है और उनके विचार से इन अपशब्दो के प्रयोग मे अधर्म भी होता है।

"यथैव हि शब्द ज्ञाने धर्म, एवमपशब्द ज्ञाने प्यधर्मः। अथवा भूयानधर्मः प्राप्नोति। भूयासोऽपशब्दा.। अल्पीयांस' शब्दा। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रशा। तद्यथा गौरित्यस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिके त्येयमादयोऽपभ्रशा"

अर्थात् जैसे शब्दो के भली प्रकार जानने मे धर्म होता है इसी प्रकार अपशब्दो के जानने मे अधर्म होता है, यही नही धर्म की अपेक्षा अधर्म अधिक होता है क्योकि शब्द कम हैं और अपशब्द बहुत अधिक हैं, एक ही शब्द के बहुत से 'अपभ्रश' होते है जैसे गौ इस शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपो तलिका आदि अपभ्रण रूप पाये जाते हैं। इस प्रकार पतञ्जलि प्राकृत पदो के प्रयोग के पक्ष मे नहीं प्रतीत होते।

पर एक दूसरे आचार्य का विचार है कि—

'संस्कृतात् प्राकृतं श्रेष्ठं ततोऽपभ्रश भाषणम्'

अर्थात् सस्कृत से प्राकृत श्रेष्ठ है और प्राकृत से भी अपभ्रश भाषा अधिक मधुर तथा श्रेष्ठ है।

वृद्ध वाग्भट्ट अपभ्रश शब्दो को अशुद्ध या अपशब्दो के रूप मे नही स्वीकार करते और अपभ्रश शब्द से उन भाषाओ का ग्रहण करते है जो अपने अपने देशो मे बोली जाती थी—

'अपभ्रश स्तुयच्छुद्धं तत्तद् देशेषु भाषितम्'

अर्थात् शुद्ध अपभ्रश वह भाषा है जो अपने अपने प्रान्तो या देशो मे बोली जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपभ्रश पदो के प्रति जो घृणा महाभाष्यकार की थी वह वृद्ध वाग्भट्ट की नही है और वे अपभ्रश को भी शुद्ध ही मानते हैं।

दण्डी ने अपने काव्यादर्श मे महाराष्ट्री प्राकृत को आदर्श प्राकृत भाषा के नाम से सम्बोधित किया है—[१]

'महाराष्ट्राशया भाषां प्रकृष्ट प्राकृतं विदु'

महाराष्ट्र प्रदेश की प्राकृत आदर्श प्राकृत है। इस प्रकार प्राकृत भाषाओ के प्रति आग्रह उत्तरोत्तर बढता हुआ ही प्रतीत होता है। यदि ये

प्राकृत भाषाए मधुर तथा लोकप्रिय न होती तो भरत मुनि कदापि नाटको मे इनके प्रयोग की अनुमति न देते और न सस्कृत नाटको मे इनका व्यवहार ही पूर्ण रूप से किया जाता।

प्राकृत भाषाओ के सम्वन्ध मे एक विचार धारा और भी है। इस विचार धारा के व्यक्ति प्राकृत भाषाओ को मनुष्य की प्रकृति या स्वभाव से सिद्ध भाषायें स्वीकार करते है और यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भ मे ये ही भाषाए मनुष्य द्वारा बोली जाती थी और उन्ही का कालान्तर मे वैयाकरणो ने सस्कार करके सस्कृत भाषा को जन्म दिया। प्रत्यक्ष रूप से वैदिक भापा से इनका सम्वन्ध अनेक विद्वानो ने स्थापित किया है और प्राकृत भाषाओ के कतिपय पदो तथा रूपो के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि प्राकृत भाषाए सस्कृत भाषा से पूर्व की हैं और इनका अधिक सम्बन्ध सस्कृत से न होकर वैदिक भाषा से है।

अम्हे, अस्मे, हवि, हु, त्तन्, त्वन् आदि प्रत्ययो की तथा पदो की प्रवृत्ति दोनो मे प्राप्त होती है। लिङ्ग, वचन तथा विभक्तियो की प्रवृत्ति (व्यत्यय-चतुर्थी को षष्ठी द्वितीया को प्रथमा आदि) दोनो भाषाओ (प्राकृत तथा वैदिक) मे उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार प्राकृत भाषाओ के द्वारा ही सस्कृत (सस्कार की गई) की उत्पत्ति स्वीकार करते है पर ये दोनो ही विचार धारायें (प्राकृत से सस्कृत की उत्पत्ति और प्राकृत भाषाओ की वेद मूलकता) सस्कृत के वैयाकरणो को मान्य नही है और वैसे भी प्राकृत को स्वभाव से सिद्ध मानना तर्क रहित है क्योकि यह स्वभाव कौन सा है और कैसा है जो मनुष्यो मे स्वभाव से रहता है फिर उस स्वभाव मे अग्रेजी फ्रेन्च या जर्मन भाषायें क्यो नही बन जाती क्योकि स्वभाव तो मनुष्य का सभी जगह होता है केवल प्राकृत भाषाओ मे ही स्वभाव क्यो तथा कैसे सीमित हो गया ?

यदि प्राकृत भाषाए ही पूर्व मे थी तो पाणिनि कात्यायन, तथा पतञ्जलि आदि वैयाकरणो ने इन पूर्ववर्ती भाषाओ पर कुछ भी प्रकाश क्यो नही डाला तथा इनका व्याकरण भी क्यो नही लिखा गया ? पाणिनीय व्याकरण की अपूर्णता भी माननी पडेगी। साथ ही जहा वैदिक भाषाओ के निघण्टु निरुक्त तथा व्याकरण वने उन्ही के साथ इन प्राकृत भापाओ का निर्वचन आदि क्यों नही किया गया ? यह भी प्रश्न है कि प्राकृत भापाए तो भिन्न प्रान्तो मे भिन्न-भिन्न हैं पर सस्कृत भाषा प्राय सर्वत्र एक ही प्रकार के नियमो से आवद्ध है फिर किस प्राकृत भाषा को लेकर इस सस्कार की गई भापा का नाम सस्कृत रखा गया ? पाणिनि ने जहा सस्कृत भापा का व्याकरण लिखा है

वहा वैदिक भाषा के व्याकरण की भी उपेक्षा नही की है और वैदिक प्रयोगो की भिन्नता का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। ऐसी दशा मे पाणिनि का प्राकृत भाषाओ से क्या वैमनस्य था ? क्यो नही इन भाषाओं का उल्लेख किया ? इन बातो से यह निश्चय है कि प्राकृत भाषायें मनुष्य की प्रकृति या स्वभाव के आधार पर निर्मित नही हुई ।

प्राकृत व्याकरण के आचार्यो, वररुचि मार्कन्डेय आदि ने स्वय स्पष्ट शब्दो मे इन प्राकृत भाषाओ की मूल प्रकृति सस्कृत को स्वीकार किया है–

स्वय वर-रुचि ने पैशाची और मागधी की मूल प्रकृति शौरसेनी को माना है और शौर सेनी की मूल प्रकृति सस्कृत है यह भी स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है फिर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप मे सभी प्राकृतो की प्रकृति सस्कृत ही है यही सिद्धान्त रूप से स्वीकृत किया गया है—

प्राकृत मन्जरीकार ने भी स्वय लिखा है कि—

"व्याकर्तुं प्राकृत त्वेन गिर· परिणति गता."

अर्थात् प्राकृत रूप में विशद विवेचन करने के कारण वाणी या सस्कृत पूर्णता को प्राप्त हुई अर्थात् भाषाओ के विकास के क्रम में देवगिरा या सस्कृत ही विकसित होकर प्राकृत भाषाओ का स्वरूप ग्रहण कर सकी। इस प्रकार इन प्राकृत भाषाओ की मूल प्रकृति सस्कृत ही स्वीकार की गई है। इसी सम्बन्ध मे गीत गोविन्दकार जयदेव की यह उक्ति भी विचारणीय है कि—

"सस्कृतात् प्राकृतम् इष्टं ततो ऽपभ्रंश भाषणम्"

अर्थात् मूल सस्कृत से प्राकृत अधिक अभिप्रेत है और उनसे भी अधिक मनोनीत अपभ्रश भाषाओं का प्रयोग होता है। प्राकृत भाषाओ के अद्यावधि जितने भी व्याकरण उपलब्ध होते हैं उनमे सब मे सस्कृत को ही प्राकृत भाषाओ की प्रकृति माना गया है और सस्कृत के तिङन्त, कृदन्त, लिङ्ग, वचन प्रत्यय नाम तथा सर्वनामो को हो आधार मान कर उनमें विकार दिखाया गया है। इस प्रकार 'प्राकृतादागतम् प्राकृतम् 'अथवा प्रकृते' भवम् प्राकृत कोई भी विवेचन किया जावे सब का आशय यही है कि इन प्राकृत भाषाओ का विकास मूल सस्कृत भाषा मे ही भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे हुआ क्योकि सभी प्रान्तो मे सस्कृत समान रूप से तथा एक रूप से प्रचलित थी। लोक ने अपनी सुविधा के अनुसार उनका विकृत अथवा विकसित रूप निर्मित किया और कालान्तर मे उनका कोई अन्य सामान्य नाम न होने मे प्राकृत नाम ही उचित समझा गया और अपने प्रान्त का नाम निर्देश कर महाराष्ट्री, शौर सेनी, मागधी और पैशाची आदि नाम दिये गये।

प्राकृत भाषाओं के भेद

व्याकरण के जटिल नियमो तथा पदो के क्लिष्ट साधनो के कारण सस्कृत भाषा जनता के सम्पर्क से दूर होती गई। यदि कोई भूल से भी किसी अशुद्ध प्रयोग का व्यवहार कर देता था तो वह पन्डितो तथा विद्वानो के मध्य निन्दा एव उपहास का पात्र होता था। यहा तक कि अर्धस्वर का भी विकृत पाठ सस्कृत के विद्वानो को क्षम्य नही था। कोई भी अन्य शूद्र जातीय सस्कृत मे धर्म ग्रन्थो का अध्ययन नही कर सकता था। साधारण जनता को सस्कृत के पढाने मे भी ब्राह्मण वर्ग कुछ उत्सुक नही था। सस्कृत के व्याकरण के नियमो के प्रतिपादन करने वाले पाणिनि के सूत्रो मे अर्ध मात्रा का लाघव भी वैयाकरण सहन नही कर सकते थे। ऐसी दशा मे भाषा को ऐसे जटिल नियमो से बाध दिया गया कि जिससे वह पूर्ण रूप से अस्पृश्य हो गई। कोई उसे छूने का भी दु साहस नही करता था न वह किसी को छूती थी और न उसे कोई छूता था। ऐसी दशा मे वह पूर्ण रूप से विशुद्ध तो बनी रही पर क्रमश उसका विस्तार तथा प्रसार अत्यन्त सीमित और परिमित हो गया उसका पठन-पाठन कुछ थोडे से जन्म जात ब्राह्मण वर्ग मे ही अवच्छिन्न रह गया।

जनता के लिये किसी भाषा का होना तो आवश्यक था। उसने ब्राह्मणो की चिन्ता नही की। उनकी वाणी सस्कृत को भी उन्होंने अछूता नही छोडा दूसरे शब्दो मे उसे भी छूत कर दिया और जो भी प्रयोग उस प्राकृत शब्द का उनको अधिक सुगम तथा सुन्दर प्रतीत हुआ उसी का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। एक ही शब्द के एक ही प्रान्त मे अनेक रूप प्रचलित हुए और वे सभी जनता मे प्रयुक्त हुए। प्रयोग के समय किन्ही विशेष नियमो का ध्यान नही रखा गया और केवल मुख-सुख ही प्रधान कारण रहा। इस प्रकार सस्कृत के स्थान पर जनता ने अपनी गढी हुई भाषा का बिना किसी सकोच के प्रयोग किया। कालान्तर मे अपने अपने प्रान्तो मे ये भाषाए जब अच्छी प्रकार से प्रयुक्त होने लगी और उनके द्वारा सामान्य भावावबोध भी होने लगा तब इन प्रयोगो के नियमो का निर्द्धारण हुआ और प्रयोगो अथवा पद रूपो को देखकर व्याकरण के ग्रन्थ रचे गये।

प्रान्त के भेद से ही प्राय उन प्राकृतो का वर्गीकरण किया गया। प्राकृत प्रकाश के कर्ता वररुचि ने जिनका दूसरा नाम कात्यायन भी था उन भाषाओ का प्रामाणिक व्याकरण लिखा। उन्होंने इन प्राकृत भाषाओं के चार भेद स्वीकार किये हैं—

१—प्राकृत

२—मागधी

३—शौरसेनी

४—पैशाची

अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ प्राकृत प्रकाश में पैशाची तथा मागधी की मूल प्रकृति शौरसेनी को स्वीकृत किया है और शौरसेनी की मूल प्रकृति संस्कृत मानी है। शौरसेनी प्राकृत के विशिष्ट कार्यों का उल्लेख उन्होंने किया है और शेष कार्य प्राकृत के अनुरूप होता है यह स्वीकार किया है।

पैशाची, मागधी तथा शौरसेनी की प्राकृत संज्ञा इसी लिये दी गयी है कि उनके सभी प्रयोग प्राकृत के अनुरूप होते हैं। महाराष्ट्र प्रान्त प्राकृत भाषाओ के काल मे सर्व प्रमुख प्रतीत होता है। महाराष्ट्र की संज्ञा मराठो से सम्बन्धित है? अथवा किसी महान् राष्ट्र की द्योतिका है? इसमे विद्वानो में मत भेद है। हो सकता है कि मराठो के उत्कर्ष के कारण उनका राज्य उत्तर भारत मे भी हो गया हो और उस राष्ट्र मे जो भाषा सामान्य रूप से प्रचलित थी उसी को प्राकृत के नाम से कहा जाने लगा हो पर प्राकृत भाषाओ के विकास के समय मराठो के इस प्रकार के राज्य विस्तार का कोई इतिहास सम्मत प्रमाण नहीं है और न उस जाति का कोई अलग राष्ट्र ही स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार प्राकृत वह भाषा थी जो शूरसेन, मगध, तथा पिशाच प्रान्त को छोड कर सामान्य रूप से सम्पूर्ण देश में बोली जाती थी उसी को प्राकृत के नाम से कहा गया है। हो सकता है कि वह प्रदेश क्षेत्र की दृष्टि से अत्यन्त विस्तृत हो अत उसे महाराष्ट्र की संज्ञा दे दी गयी हो। वररुचि ने अपने प्राकृत प्रकाश मे जिस भाषा के नियमो का निर्धारण किया है वह महाराष्ट्री ही है इसमे कोई सन्देह नहीं है क्योकि शौरसेनी प्राकृत के नियमो का निर्धारण करते हुए विशेष नियमो का संकलन तो कर दिया है और शेष के लिए लिखा है कि "शेष महाराष्ट्रीवत्" अर्थात् शौरसेनी प्राकृत के शेष अनुक्त कार्य महाराष्ट्री के समान समझने चाहिये। इस प्रकार वररुचि की प्राकृत महाराष्ट्री ही है इसमे सन्देह नहीं। इस प्रकार वररुचि ने प्राकृतो का वर्गीकरण (१) प्राकृत (महाराष्ट्री) (२) पैशाची (३) मागधी (४) शौरसेनी इन चार मे किया है।

हो सकता है कि महाराष्ट्र प्रान्त मे बोली जाने वाली प्राकृत अपने रूप तथा माधुर्य मे अत्यन्त श्रेष्ठ हो अत उसी को मौलिक मानकर उसको प्राकृत की ही सज्ञा दे दी गई हो क्योकि उसी मे मूल प्रकृति सस्कृत की विशिष्टता थी और उसी मे सस्कृत के रूपो का नियमबद्ध तथा सामान्य परिवर्तन हुआ हो। महाकवि दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श मे महाराष्ट्री के प्रति यही विचार व्यक्त किये हैं।

"महाराष्ट्राशर्मां भाषा प्रकृष्ट प्राकृतं विदु"

अर्थात् महाराष्ट्र प्रदेश मे बोली जाने वाली भाषा उत्कृष्ट प्राकृत जानी जाती है। उस प्रान्त की प्राकृत अन्य प्रान्तो के प्राकृत से अत्यन्त उत्कृष्ट थी अत वररुचि ने उसी को प्राकृत की सज्ञा दी है।

हेमचन्द्र जिन्होंने अपभ्रश भाषाओ का विस्तृत विवेचन अपने '**शब्दानुशासन**' नामक ग्रन्थ में किया है प्राकृत भाषाओ के ३ भेद और स्वीकृत किये है और वे (१) चूलिका पैशाचिका (२) आर्ष प्राकृत (३) अपभ्रश हैं। इस प्रकार उनके मत से प्राकृतो के—

१—प्राकृत
२—पैशाची
३—चूलिका पैशाची
४—मागधी
५—आर्षी
६—शौरसेनी
७—अपभ्रश

ये सात भेद हैं—यह आर्ष प्राकृत ही अर्घ मागधी है जो जैन साधुओ की सम्भावित भाषा है—

प्राकृत सर्वस्वकार श्री मार्कन्डेय ने अपने ग्रन्थ मे भाषाओ के तथा उनके अवान्तर भेदो के ४३ भेद स्वीकृत किये हैं। प्रथम भाषाओ के चार भेद हैं—

१—भाषा
२—विभाषा
३—अपभ्रश
४—पैशाची

इनमे भाषा के पाच भेद हैं—

१—महाराष्ट्री

२—शौरसेनी

३—प्राच्या

४—अवन्ती

५—मागधी

अर्ध मागधी को मागधी के अन्दर ही परिगणित किया गया है।

विभाषा के भी पाच भेद हैं—

१—शाकारी

२—चाण्डाली

३—शावरी

४—आभारिकी

५—शाक्वी (शारवी)

अपभ्रश के २७ भेद स्वीकृत किये हैं इनमे आर्द्री तथा द्राविडी नही है पर इसके साथ अपभ्रश के—

१—नागर

२—भ्राचड

३—उपनागर

ये तीन भेद और हैं। इस प्रकार अपभ्रश के ३० भेद हैं।

पैशाची भाषा के तीन भेद हैं—

१—कैकेयी

२—शौरसेनी

३—पाञ्चाली

इस प्रकार भाषा के ५ विभाषा के ५ अपभ्रश के ३० और पैशाची के ३ कुल मिलाकर ४३ भेद माने हैं।

राम तर्क वागीश ने भी मार्कण्डेय के अनुसार ही भाषाओ के भेद स्वीकृत किये हैं।

अन्य चाहे कितनी भी प्राकृत भाषाए भिन्न-भिन्न आचार्यो के द्वारा प्रतिपादित हो पर सभी ने (१) महाराष्ट्री (२) पैशाची (३) मागधी तथा (४) शौरसेनी इन चारो को अवश्य ही प्राकृत भाषाओ के रूप मे स्वीकृत किया है।

रुद्रट ने अपने काव्यालकार मे भाषाओ का वर्गीकरण (१) प्राकृत (२) सस्कृत तथा (३) अपभ्रश इन तीन रूपो मे किया है। प्राकृत तथा अपभ्रश की प्रयक् सत्ता स्वीकृत की है।

दण्डी ने काव्यादर्श मे भाषाओ का एक 'मिश्र' भेद और स्वीकृत किया है अर्थात्—

"तदेतद्वाङ् मयं भूयसस्कृतं प्राकृतं तथा। अपभ्रंश श्चमिश्रं चेत्याहु राप्ताश्चतु विध."

इन चार भाषाओ मे ही रचित ग्रन्थ पाये जाते हैं।

पुराण वाग्भट्ट ने अपने वाग्भटालकार मे **'भूत भाषित'** नाम से एक और भाषा स्वीकृत है अर्थात् सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश तथा भूत भापित ये चार भाषायें स्वीकृत की हैं। विद्वानो ने भूत भाषित से उनका तात्पर्य पैशाची भाषा से ही लिया है।

इस प्रकार सभी आचार्यों ने सस्कृत तथा प्राकृत के साथ अपभ्रश का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रश्न यह है कि अपभ्रश के सस्कृत तथा प्राकृत के समकक्ष होने पर भी वररुचि आदि जैसे विद्वानो ने इस भापा के सम्वन्ध मे क्यो विचार नही किया ? क्या उनकी दृष्टि मे अपभ्रश हेय अथवा अशिक्षित लोगो की भाषा थी या उनके समय मे इसका प्रचलन नही था ? यह मत तो कुछ अधिक तर्क सगत नही है कि उनके समय मे इसका प्रचार न हो क्योकि उनके समय मे भी प्राकृत तथा अपभ्रश दोनो का ग्रन्थो मे प्रयोग होने लगा था और साधारण जनता मे दोनो ही प्रचलित भी थी। हेय भी इस भाषा को वे कैसे समझते ? क्योकि प्राकृत तथा अपभ्रश की विस्तार-प्रक्रिया मे पर्याप्त साम्य है और दोनो मे ही सस्कृत को प्राय मूल प्रकृति माना गया है। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि वररुचि को प्राकृत से अपभ्रश की अपेक्षा अधिक आकर्षण और प्रेम था उसके रूपो पर वे मुग्ध थे। साथ ही प्राकृत भाषाओ का साहित्य उनके समय मे अपभ्रश भापाओ की अपेक्षा अधिक समुन्नत तथा व्यापक था। प्रधान रूप से साहित्य मे प्राकृतो का ही प्रयोग अधिक होता था और हो सकता है कि अपभ्रश का प्रचलन होने पर भी उसका स्वरूप निश्चित रूप से व्यवस्थित न हो सका हो ? परन्तु वररुचि द्वारा विवेचन न होने पर भी उनकी महत्ता न्यून नही हो सकती।

हो सकता है कि वररुचि का अपभ्रश विषय न हो और उन्होने अपभ्रश की ओर **"दाढादयो बहुलम्"** इस सूत्र मात्र से ही सकेत किया हो। भिन्न-भिन्न देशो मे ही अपभ्रश भापाओ का प्रचलन था और उनकी सख्या भी अधिक थी अत सम्भव है कि वररुचि उन भाषाओ की ओर अधिक आकृष्ट न हुए हो और सक्षेप से ही उनका वर्णन कर दिया हो।

वृद्ध वाग्भट्ट ने अपभ्रश भापाओ के सम्वन्ध मे—

"अपभ्रंश स्तु यच्छुद्ध तत्तद्देशेषु भाषितम्"

यही विचार प्रकट किया है कि अपभ्रश उस भाषा को कहते हैं जो उन देशो मे भाषाओ का शुद्ध प्रयोग होता है।

दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श में यही विचार प्रकट किये हैं कि आभीर आदि देशी भाषायें जब नाटको मे प्रयुक्त की जाती हैं तब वे अपभ्रश कहलाती हैं और—

"शौर सेनी च गौड़ी च लाटी चान्याच तादृशी।
याति प्राकृत मित्येवं व्यवहारेषु सन्निधिम्"

अर्थात् शौर सेनी, गौडी, लाटी तथा अन्य इसी प्रकार की भाषायें, प्राकृत रूप मे ही व्यवहार मे कहलाई जाती हैं।

इस प्रकार देशी भाषाओ ने पूर्ण रूप से साहित्यिक रूप नही प्राप्त किया था हाँ प्राकृत भाषाओ का साहित्यिक रूप अवश्य हो गया था अत अपभ्रश भाषाओ का समुचित विवेचन प्रारम्भ मे नही हो सका। यह कार्य हेमचन्द्र ने पूर्ण किया। प्रतीत होता है कि इनके समय मे ये देशी भाषाए भी पूर्ण रूप से साहित्यिक स्वरूप प्राप्त कर चुकी थी और इन भाषाओ मे भी स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ प्रणयन होने लगा था।

दण्डी ने शब्दो के तीन रूप प्रतिपादित किये हैं—(१) तत्सम (२) तद्भव (३) देशी। इससे प्रतीत होता है कि प्राकृत पद तद्भव की कोटि मे आते हैं और देशी शब्द उनसे पृथक् हैं। यद्यपि इनका प्रयोग नाटको मे भी प्रारम्भ हो गया था—क्योकि स्वय भरत मुनि ने—

"शौर सेन समाश्रित्य भाषा कार्य्रा तु नाटके।
अथवा छन्दत कार्या देश भाषा प्रयोक्तृभि"।

अर्थात् शौर सेनी को लेकर नाटको की भाषा होनी चाहिये अथवा देशी भाषाओ को बोलने वालो को अपनी इच्छानुसार ही भाषा का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार दोनो प्रकार की भाषाओ का (प्राकृत अथवा अपभ्रश) प्रयोग प्रतिपादित किया है। इस प्रकार ये देशी शब्द भी तद्भव ही हैं। हो सकता है प्राकृतो को मूल प्रकृति मान कर उनसे भी जो विगडे हुए रूप बने उनकी अपभ्रश सज्ञा दे दी गई हो और उनके अन्दर तद्भवता प्राकृतो के माध्यम से आई हो। तत्सम शब्दो का विवेचन प्राकृत अथवा अपभ्रश मे अनुपयुक्त ही था क्योकि वे तो सस्कृत के समान ही थे।

नाट्याचार्य भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र मे भाषाओ तथा

विभापाओ का विवेचन करते हुए कुछ विस्तार से इस सम्बन्ध मे विवेचन किया है। उनके विचार से भाषाओं के

१—मागधी

२—सूर सेनी

३—अवन्तिजा

४—प्राच्या

५—अर्ध मागधी

६—वाह्लीका

७—दाक्षिणात्या

सात भेद हैं। पैशाची तथा महाराष्ट्री का इनमे उल्लेख नही है। इन भाषाओ को प्राकृत नाम भी नही दिया गया है। विभाषायें भी (१) शवर (२) आभीर (३) चण्डाल (४) सचर (५) द्रविड (६) उद्रजा (७) हीना (वनेचरो की) ये ही स्वीकृत की हैं। इन विभाषाओ मे प्राय वे ही हैं जो इधर-उधर घूमने-फिरने वालो की वोलिया होती हैं।

नाटको मे जो राजा के अन्त पुर मे रहने वाले थे वे तथा स्वय राजा लोग भी मागधी का प्रयोग करते थे। श्रेष्ठी, राज पुत्र तथा चेट गण अर्ध मागधी बोलते थे (नाटको मे ही)। विदूपक आदि प्राच्य भाषा का धूर्त तथा छली व्यक्ति अवन्तिजा का प्रयोग करते थे। नायिकायें तथा उनकी सखिया सूर सेन भाषा का, योद्धागण नागरिकजन तथा जुआ खेलने वाले दाक्षिणात्या का व्यवहार करते थे। उदीच्य लोग वाह्लीक भाषा प्रयोग मे लाते थे। खस जाति के व्यक्ति अपने देश की भाषा का ही व्यवहार करें। शवर तथा शक जाति के अपने स्वभाव के अनुरूप शकार (सकार) भाषा का और पुक्कस, चाण्डाली भापा का प्रयोग करें। कोयला वनाने वाले, वहेलिये, तथा वनौकस शवर भापा का ही प्रयोग करें। पशु विक्रेता गायो, घोडो, हाथियो, वकरी तथा भेडो का व्यापार करने वाले और घोपो मे रहने वाले आभीर अथवा शावरी का व्यवहार करें। द्रविड प्रदेश के निवासी द्राविडी को वोलें। सुरग खोदने वाले, शराव वेचने वाले, रक्षक गण तथा नायक अपने दुख के समय अथवा आत्म रक्षा के समय मागधी भाषा का प्रयोग करें।

वर्बर, किरात, आन्ध्र, द्रविड आदि जातियो के लिये नाटको के प्रयोग मे भाषा का प्रयोग नही करना चाहिये। गगा, सागर के मध्य मे जो देश हैं उनमें ए कार वहुला भाषा का प्रयोग उस भाषा को जानने वाले करें।

विन्ध्याचल तथा समुद्र के बीच के निवासी नकार बहुला भाषा का प्रयोग करें। सौराष्ट्र, अवन्ती तथा वेत्रवती के उत्तर मे जो प्रदेश हैं उनमे चकार बहुला भाषा का प्रयोग करे। हिमालय, सिन्धु, सौवीर (गुर्जर) आदि देशो मे उकार बहुला भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चर्माण्वती नदी के परवर्ती भाग मे तथा जो अर्बुद देश के निवासी हैं वहा तकार बहुला भाषा का व्यवहार करना चाहिये।

प्रतीत होता है कि भरत मुनि ने उस उस देश की भाषाओ की विशेष प्रवृत्तियो को देख कर ही इस प्रकार के नियमो की व्यवस्था की थी जिसमे कि नाटको को समझने मे दर्शक वृन्द को सुविधा हो सके। इन सब भाषाओं के पदो के निर्माण के सम्बन्ध मे वररुचि के प्राकृत प्रकाश से अथवा प्राकृत मञ्जरी एव प्राकृत सर्वस्व मे विशेष सहायता प्राप्त नही होती। केवल हेम-चन्द्र का शब्दानुशासन ही भाषाओ के सम्बन्ध मे विशेष रूप से प्रकाश डालता है पर फिर भी पूर्ण रूप से व्यापक नियमो तथा प्रवृत्तियो का दर्शन कराने वाली कोई भी पुस्तक उपलब्ध नही है। स्वय भरत मुनि ने इन भाषाओ के प्रति अपने अज्ञान को प्रकट करते हुए लिखा है कि—

"एवं भाषा विधान तु कर्तव्यं नाटकाश्रयम्। अत्रनोक्तं मया यच्च लोकाद् ग्राह्यं बुधैस्तु तत्"

अर्थात् यथा सम्भव नाटको मे भाषाओ का इसी प्रकार से विधान करना चाहिये और हो सकता है कि मुझ से इन भाषाओ के प्रयोग के सम्बन्ध मे कुछ बातें शेष रह गई हो उनको बुद्धिमान व्यक्तियो को लोक के द्वारा ग्रहण करना चाहिये और उनका प्रयोग नाटको मे करना चाहिये।

इस प्रकार भिन्न आचार्यो के प्राकृतों एव अपभ्रश भाषाओ के प्रति भिन्न-भिन्न विचार हैं।

प्राकृत भाषाओं का साहित्यिक संविधान

भाषाओ का रूप विधान सामाजिक विचार धाराओ तथा भावनाओ का द्योतक होता है। समाज के बिना भाषा का अस्तित्व ही नही रहता न उसका कोई मूल्य ही होता है। अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये समाज समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपो का निर्माण करता है। समाज के नियमो का कारण नही होता उनमे तो उसकी विशेष रूप से रुचि और प्रवृत्ति ही होती है। लोक मे वधू को बहू कहा जाता है ध को ह का रूप दे दिया गया है पर साधु मे ध अब भी उसी प्रकार स्थित है। उसका साहू रूप साधु के अर्थ का प्रत्यायक नही है। समाज ने यह पक्षपात दोनो के साथ क्यो किया ? इसका कोई कारण नही है। सामाजिक रुचि चन्द्र को चन्दा कहती है और वह प्यारा तथा श्रुति मधुर भी है पर इन्द्र का रूप इन्दा न होकर इन्दर ही होता है इन्दर ही सुख-सुख को देता है। इसके पीछे समाजगत कोई नियम निर्धारित नही किया जा सकता। यही पद प्रयोग मे आते-आते साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेते हैं। ब्रजभाषा मे इनका प्रयोग मिलता है, अवधी मे भी ये ही प्रयोग साहित्यिक हो गये हैं। बैसवाडी भाषा मे वनरा, वर (दुलहा) के लिये प्रयुक्त होता है और विवाह के अवसर पर ग्रामीण क्षेत्रो मे **'वनरा'** गीत भी गाये जाते है जिन गीतो का सम्बन्ध विवाह के अवसर की प्रसन्नता सूचक वधुओ तथा वर के सौन्दर्य एव उसकी वेषभूषा से होता है। वनरा की प्रकृति वरण करना या स्वीकार करना है वर और वरण एक ही प्रकृति मूलक हैं। अपभ्रंश काल मे ण की न प्रवृत्ति तथा वर्ण व्यत्यय होने से वनरा का अर्थ वरण करने वाला ही होता है। (लोक गीतो मे अत्यन्त भावपूर्ण तथा मधुर वनरा प्राप्त होते हैं)। उन गीतो के लोक भाषा मे कहे जाने पर भी साहित्यिक मूल्य मे किसी भी प्रकार की कमी नही होती प्रत्युत प्रचलित भाषा के प्रयोग से उनके माधुर्य मे और भी वृद्धि हो जाती है। विद्युत् तथा पीत शब्द प्राकृत मे अपने अन्त मे ल का योग कर लेते हैं। देशी रूप बिजली और पीला प्रचलित है। प्राकृत रूप बिज्जुली और पीअल था। प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ मे हिन्दी के प्रचलित रूपों का स्पष्ट आभास प्राप्त होता है। **'भवति'** जिसका अर्थ

सस्कृत मे होना है प्राकृत मे 'होइ' ऐसा हो जाता है और वही रूप प्रचलित हिन्दी मे 'होता' है। इस प्रकार हिन्दी की प्राय समस्त पदावली तथा धातु प्रक्रिया प्राकृत या अपभ्रश भाषाओ पर आधारित है।

इन प्राकृत भाषाओ ने विक्रम की द्वितीय शताब्दी पूर्व से लेकर नवी या दसवी शताब्दी तक सस्कृत साहित्य को प्रभावित किया है। सस्कृत का सम्पूर्ण नाट्य साहित्य प्राकृत तथा अपभ्रश भाषाओ से परिपूर्ण है और प्राय सम्पूर्ण नाटको मे भरत मुनि द्वारा नाट्य शास्त्र मे प्रतिपादित नियमो का पालन किया गया है। शूद्रक कवि के मृच्छकटिक, भास के स्वप्नवासवदत्तम् आदि नाटको मे लेकर मुरारी कवि के अनर्घराघव नाटक तक सभी मे यथा साध्य नाट्य शास्त्र के नियमो का पालन किया गया है। यद्यपि ९वी या १०वी शताब्दी तक प्राकृत भाषाओ का प्रचलन समाप्त प्राय था और उनका स्थान अपभ्रश एव देशी भाषाओ ने ग्रहण कर लिया था तो भी नाटक के नियमो के पालन करने के कारण चाहे उन भाषाओ के जानने या समझने वाले दर्शक वृन्द मे न हो तो भी उन प्राकृत भाषाओ का प्रयोग कवि गण परम्पराओ की प्रथा के अनुरूप करते ही थे। इस प्रकार नाटको मे क्रमश कुछ अनभिनेयता अवश्य आ गई पर प्राकृत भाषाओं का सरक्षण किसी न किसी रूप मे होता ही रहा।

कर्पूर मञ्जरी, सेतुवन्ध, कुमार पाल चरित आदि ग्रन्थो का प्रणयन प्राकृत तथा अपभ्रश भाषाओ मे ही हुआ है। 'गउड वहो' जो प्राकृत भाषाओ का प्राचीन ग्रन्थ है उससे प्राकृत भाषाओ का लालित्य तथा माधुर्य स्पष्ट होता है।

भाषाओ का साहित्यिक सविधान बोलियो मे उतना स्पष्ट नही हो पाता जितना कि वहाँ की साहित्यिक भाषा मे होता है। प्राकृत भाषायें पूर्ण रूप से सम्पूर्ण भारत मे किसी भी समय एकमात्र साहित्यिक भाषा का स्थान नहीं ले सकी। पालि भाषा भी एक रूप मे प्राकृत भाषा ही है परन्तु भगवान तथागत के वचन जिस भाषा मे सगृहीत किये गये उसका प्राकृत भाषाओ से वैशिष्ट्य प्रदर्शित करने के लिये अलग नामकरण पालि भाषा से किया गया क्योकि पालि का निर्वचन भी पा रक्षणे धातु से पाति रक्षति वुद्ध वचनानि या सा पालि, अर्थात् वुद्ध के वचनो की जो रक्षा करती है उसे पालि कहते हैं।

यह पालि भाषा भी वौद्ध भारत में समादृत होने पर भी विशिष्ट धर्म के मानने वालो की ही भाषा रही। इसी प्रकार अर्ध मागधी प्राकृत को जैन समुदाय वालो ने अपनी भाषा स्वीकृत किया और अपने धर्म ग्रन्थों की

रचना इसी भाषा मे की। विशेष धर्म की भाषा होने के कारण इन दोनो भाषाओ का साहित्य अन्य प्राकृत भाषाओ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और सुन्दर है।

अशोक ने अपने राज्य के आदेश भी उन देशो मे प्रचलित भाषाओ मे ही स्तूपो तथा शिला लेखो मे खुदवाये जिनसे जनता उनसे लाभ उठा सके। इससे प्रतीत होता है कि उनके समय तक भी कोई एक प्राकृत सर्व मान्य नही थी और भाषायें अपने-अपने प्रान्तीय स्तर पर ही पनप रही थी। सस्कृत के अनुरूप सर्व मान्य कोई भाषा राष्ट्रीय स्तर पर नही थी।

अशोकी प्राकृत भी यत्र तत्र उपलब्ध होती है पर उसका साहित्यिक रूप कोई भी उपलब्ध नही है। इस प्रकार मुख्य रूप से प्राकृत भाषाओ का उपयोग सस्कृत के नाटको मे ही प्राप्त होता है। नाटको मे भी इन भाषाओ का प्रयोग उच्च वर्ण (आभिजात्य) के व्यक्ति नही करते थे। स्त्रियो मे चाहे वे नायिका अथवा चेरी हो सभी के लिये प्राकृत भाषाओ का प्रयोग अनिवार्य था। इन भाषाओ को सामान्य रूप से सस्कृत की समकक्षता कभी भी नहीं प्राप्त हुई।

निस्सन्देह रूप से प्राकृत भाषायें सरल रूपो को लेकर ही अवतरित हुई। वृश्चिक (विच्छू) शब्द के स्थान पर बिच्छुओ का प्रयोग उच्चारण की दृष्टि से अवश्य सुगम है। पद के अन्त मे ओ की ध्वनि और तिङन्त के अन्त मे इ कि ध्वनि सरलता के साथ सगीतात्मकता को भी द्योतित करती है। वधिर का 'वहिरो' रूप कुछ स्वाभाविक और सरल अवश्य है। इमी प्रकार विश्वास का विस्सासो, शृगार का सिगारो, स्नेह का सनेही, भवति का होइ, हर्षति का हरसइ, शृणोति का सुणइ आदि ऐसे रूप हैं जो निस्सन्देह साहित्य की सरलता तथा श्रुति मधुरता को द्योतित करते हैं।

इसके साथ ही प्राकृत भाषाओ मे सस्कृत की रूपो की जटिलता का भी समाधान किया गया और तिङन्त (धातु) तथा सुबन्त (नाम) दोनो मे प्रथक्-प्रथक् एक रूपता लाने से साहित्य की भाषा के माध्यम से साहित्य मे जो दुरूहता आ गई थी वह समाप्त हुई। अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त शब्दो के जो रूप भिन्न-भिन्न चलते थे उनमे भी न्यूनता आई और यह प्रयत्न किया गया कि साहित्य के अन्दर व्याकरण की जटिलताओ तथा अत्यधिक शब्द रूपो को समाप्त कर दिया जावे जिससे आसानी से एक ही नियम से सभी रूपो की सिद्धि हो सके। पुरुसस्स, अग्निस्स, वायुस्स आदि रूप इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार विभक्तियो मे चतुर्थी का काम षष्ठी से लिया जाने लगा, पचमी

तथा तृतीया भी कहीं-कही एक रूप की हुई । भूत तथा भविष्य के जो तीन भेद थे वे एक ही रह गये । इस प्रकार प्राकृत भाषाओ ने संस्कृत साहित्य को सुगम, सरल तथा सुबोध बनाने मे प्रशसनीय कार्य किया ।

प्राकृत भाषाओ तथा उसके उपरान्त अपभ्रंश भाषाओ के प्रसार से सस्कृत भाषा का प्रभाव लुप्त होने लगा । जनता मे यह भी भावना नहीं रही कि वे मूल प्रकृति, सस्कृत की सुरक्षा का ही प्रयत्न करते । किसी भी भाव को प्रकट करने के लिये जो भी प्रयोग हो गया उसी को जनता ने अपना लिया और वही लोक मे प्रचलित भी हो गया । सस्कृत मे भ्रम का अर्थ भ्रमण करना या घूमना होता है और प्राकृत काल मे भ्रमइ का भ्रमइ रूप बनता है धीरे-धीरे इस भ्रमार्थक (घूमने के) भाव के लिये (१) टिरिटिल्लइ, (२) ढुढुल्लइ, (३) चक्कम्मइ, (४) ढण्डल्लइ, (५) भम्मडइ, (६) भमडइ, (७) भमाडइ, (८) तलअण्टइ, (९) झण्टइ, (१०) झम्पइ, (११) भुमइ, (१२) गुमइ, (१३) फुमइ, (१४) फुसइ, (१५) ढुमइ, (१६) ढुमइ, (१७) परीइ, (१८) पराइ ये १८ प्रयोग होने लगे । इन प्रयोगो मे फुमइ, फुसइ, तलअण्टइ का सस्कृत की मूल प्रकृति 'भ्रम' से कोई भी अस्तित्व प्रतीत नही होता । अपभ्रंश काल मे भाषाओ के प्राकृत रूप भी इतने अधिक परिवर्तित हो गये कि उनमे परस्पर भेद या साम्य की रूप-रेखा भी विलुप्त हो गई और पूर्ण रूप से नवीन प्रयोग साहित्य मे उपलब्ध होने लगे ।

ये प्रयोग एक देशीय नही थे । हो सकता है कि एक ही प्रदेश मे कुछ अन्तर से इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न देशी बोलियो मे होने लगा हो और साहित्य का सृजन इन प्रयोगो में न सही पर लोक व्यवहार के लिये इनका उपयोग किया जाता रहा हो ।

रूप-सिद्धि

नाम

प्राकृत भाषाओ मे वररुचि के अनुसार महाराष्ट्री प्राकृत ही प्रमुख रूप से प्रचलित थी और उसी महाराष्ट्री का प्रभाव मागधी, पैशाची तथा सौरसैनी प्राकृतो पर पडा है। इन भाषाओ मे सस्कृत के शब्दों को ही आधार मानकर उनमे भिन्न-भिन्न जो परिवर्तन हुए है, उनका विचार प्राय सभी प्राकृत वैयाकरणो ने किया है। अपभ्रश भाषाओ मे भी इन प्राकृत भापाओ का पूर्ण प्रभाव है। प्राकृत भाषाओ मे वररुचि का प्राकृत प्रकाश सवसे प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है उन पर भामह ने सक्षिप्त वृत्ति भी लिखी है। प्राकृत प्रकाश मे प्रधान रूप से प्रचलित शब्दो की साधनिका का प्रकार वतलाया गया है। हेमचन्द्र जो अपभ्रश भाषाओ के प्रमुख वैयाकरण हैं उन्होने अपने 'शब्दानुशासन' नामक ग्रन्थ मे भी प्राकृत भाषाओ के सम्बन्ध मे विशेष विवेचन किया है। इन्ही दोनो मान्य आचार्यो के आधार पर प्राकृत भाषाओ का विवेचन करना अधिक प्रामाणिक और युक्ति-युक्त है।

सस्कृत के नामो मे सुप् लगकर सुबन्त पद बनते हैं। सुप् जिसके अन्त मे हो उसे सुवन्त कहते है।

सु, औ, जस्, अम् औट शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस्, ओस् आम्, ङि ओस् सुप्।

इनमे प्रारम्भ मे सु है और अन्त मे प् अक्षर है, प्रारम्भ के अक्षर सु और अन्त के अक्षर प् को लेकर 'सुप्' पद बनता है। सुप् जिसके अन्त मे हो उसे सुप् + अन्त = सुवन्त कहते हैं।

शब्दो मे जव तक कोई सुप् (सु, औ, जस् आदि) अन्त मे सयुक्त नही होते तव तक उस शब्द को पद नही कहते और उनका प्रयोग भी नही होता। प्रत्येक नाम किसी न किसी कारक मे प्रयुक्त किया जाता है और जव तक उसमे सुप् का कोई प्रत्यय नही लगता तव तक वह कारक के रूप मे प्रयुक्त होने के योग्य भी नही होता और न उसको पद की सज्ञा ही प्राप्त होती है क्योकि सस्कृत व्याकरण के अनुसार **'सुप्तिङन्तं पदम्'** अर्थात्

सुवन्त तथा तिडन्त को ही पद सज्ञा होती है और तभी इनकी विभक्ति सज्ञा भी होती है अर्थात् सस्कृत के नाम प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति मे विभक्त हो जाते हैं । इन्ही को कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्वन्ध तथा अधिकरण के नाम से भी कहा जाता है । सम्वोधन एक और विभक्ति होती है और उसे सम्वोधन कारक के नाम से कहा जाता है ।

सस्कृत व्याकरण का आधार लेकर इन शब्दो की रूप सिद्धि में प्राकृत काल मे किस प्रकार परिवर्तन हुए और किन नियमो को प्राकृत मे स्वीकृत किया गया तथा किनको छोडा गया इस पर प्राकृत वैयाकरणो ने पूर्ण विचार किया है और उस समय जनता मे जो रूप प्राप्त होते थे उनके लिये अलग-अलग नियमो को निश्चित किया है । इसके लिये एक उदाहरण प्रारम्भ मे समझ लेना आवश्यक है। सस्कृत मे वृक्ष का अर्थ पेड होता है इसका प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे '**वृक्ष.**' यह रूप होता है द्विवचन मे वृक्षौ तथा वहुवचन मे वृक्षा ये रूप वनते हैं । वृक्ष इसकी सिद्धि के लिये वृक्ष शब्द के आगे सु विभक्ति लाते हैं वृक्ष+सु इस अवस्था मे '**उपदेशेऽजनु नासिक इत्**' इस सूत्र से सु मे जो उ है उसकी इत् सज्ञा हो जाती है और '**तस्यलोपः**' इस सूत्र से उ का लोप हो जाता हैं । इस प्रकार राम+स् ऐसा रह जाता है '**ससजुषोरु**' इस सूत्र से स् को 'रु' यह हो जाता है और फिर स के उ का लोप हो जाता है राम+र् ऐसा रह जाता है फिर '**खरवसान-योर्विसर्जनीय**' इस सूत्र से र् को विसर्ग यह हो जाता है और इस प्रकार प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे वृक्ष यह रूप बनता है । इसी प्रकार वृक्षौ तथा वृक्षा आदि रूप भिन्न-भिन्न नियमो से वनते हैं और कर्ता कारक का रूप वृक्ष, वृक्षौ, वृक्षा, बनता है ।

पर प्राकृत भाषाओ मे '**वृक्ष**' का '**वच्छो**' यह रूप प्राप्त होता है । केवल '**वच्छो**' ही नही अपितु '**वत्स**' तथा '**रुक्खो**' ये रूप भी प्राप्त होते है ।

प्राकृत भाषाओ मे शब्द के आदि के ऋकार को 'अ' हो जाता है । वररुचि के अनुसार '**ऋतोऽत्**' (१–२) इस सूत्र से '**वृक्ष**' शब्द से वृ के ऋ को व हो गया तो वक्ष+सु ऐसा रूप हुआ फिर उसके उपरात '**अक्ष्यादिषुच्छ**' (३-३०) इस सूत्र से क्ष को छ ऐसा आदेश होता है इस प्रकार व+छ+सु यह रूप हुआ तव '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) इस सूत्र से छ को द्वित्व हो गया व+छ+छ+सु फिर '**वर्गेषु युजःपूर्व**' (३-५१) इस सूत्र से

प्रथम छ को च् यह हो गया तो व+च्+छ+सु ऐसा रूप बना फिर अत् ओत् सो (५—१) इस सूत्र से सु को 'ओ' हो जाता है इस प्रकार वृक्ष का प्राकृत महाराष्ट्री मे **'वच्छो'** यह रूप प्रथमा विभक्ति के एक वचन मे बनता है।

वृक्ष का वच्छो रूप उच्चारण की सुविधा से ही प्रयुक्त होता था वृ का उच्चारण फिर क्ष का उच्चारण कुछ कर्ण कटु तथा प्रयत्न साध्य था अत प्राकृत मे 'वच्छो' का प्रयोग वृक्ष के लिये होने लगा। किन्ही प्राकृतो मे वृक्ष के स्थान पर **'रुक्खो'** भी बोला जाता था। उसकी सिद्धि के लिये भी— वृक्ष+सु इस मे **वृक्षे वेन रुर्वा'** (१-३२) इस सूत्र से वृ के स्थान पर 'रु' हो गया तो रु+क्ष+सु यह रूप प्राप्त हुआ तव **'ष्वस्कक्षांखः'** (२-२९) इस सूत्र से क्ष को 'ख' यह हो गया तव रु+ख+सु यह रूप हुआ तदनन्तर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ख को द्वित्व होने पर रु+ख+ख+सु यह रूप बना तव **'वर्गेषु युजः पूर्व '** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ख के स्थान पर क् हो गया और रु+क्+ख+सु यह हुआ तव **'अत् ओत् सो '** (५-१) इस सूत्र से सु को ओ होने पर रुक्खो यह रूप सिद्ध हुआ।

प्राकृत भाषाओ मे ये परिवर्तन के नियम भाषाओ के प्रचलन के बाद ही निश्चित हुए जैसा कि अन्य भाषाओ मे होता है—पर इन की प्रकृति वररुचि मार्कण्डेय आदि ने सस्कृत को ही माना है और सस्कृत को ही प्रकृति मान कर रूपो की सिद्धि की है। इस प्रकार जब तक प्राकृत रूपो का शास्त्रीय प्रयोग विधान हमे स्पष्ट नही होता तव तक किस प्रक्रिया से प्राकृत रूप वने यह भी स्पष्ट नही हो पाता और प्राकृत भाषाओ की वैज्ञानिकता का भी उपपादन नही हो पाता अत आवश्यक है कि हम प्राकृत भाषाओ का रूप विधान अवगत करें और उनके नियम भी जानें।

प्राकृत प्रकाश कार वररुचि को प्रमाण मानकर कतिपय नामों की सिद्धि का विवेचन इस अध्याय मे किया जायगा। प्राकृत भाषा के नियमो का पूर्ण रूप से सूत्रो के सहित उल्लेख भी प्राप्त होगा। क्योकि विना सूत्रोल्लेख के तथा उसके कार्य के प्राकृत भाषाओ का व्याकरण अवगत करना कुछ कठिन ही होगा। शब्दो के प्रयोग अकारादि क्रम से ही सिद्ध किये गये है। सयुक्त, असयुक्त, सर्व नाम, लिंग तथा तिङन्त का विवेचन अलग-अलग अध्यायो मे किया जायगा।

प्राकृत भाषाओ के साथ अपभ्रंश भाषाओ का भी समन्वय है। बहुत से नियम दोनो भाषाओ मे समान भी प्राप्त होते हैं। कही-कही विशेषता भी हो जाती है पर प्राकृत भाषाओ की प्रकृति को अपभ्रंश भाषाओ से पूर्णरूप से विच्छिन्न भी नही किया जा सकता। इस दिशा मे हेमचन्द्र का 'शब्दानुशासन' ही अधिक प्रामाणिक और सर्वाङ्गीण है अत सक्षेप से उन्ही के आधार पर अपभ्रंश भाषाओ की भी रूप-सिद्धि अलग अध्यायो मे वर्णित है।

प्राकृत-शब्दो–सिद्धिः

१. अंसू तथा अंस्सू (अश्रु = आंसू)

अश्रु शब्द सस्कृत का है। प्राकृत मे इसका रूप 'अंसू' वनता है और प्रचलित हिन्दी भाषा मे इस का रूप आसू है।

अश्रु शब्द मे **'वक्रादिष'** (३-१६) वररुचि के इस सूत्र से प्रारम्भ के अक्षर के ऊपर विन्दु ( ) यह रख दिया जाता है। इस प्रकार **'अंश्रु'** यह रूप वना तत्पश्चात् **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से सयुक्त अक्षरो के ऊपर या नीचे स्थित ल, व, र, का लोप हो जाता है अत यहाँ भी अश्रु के र् का लोप होने पर अशु रूप हुआ। तदनन्तर **'शषोः स'** (२-४३) इस सूत्र से सर्वत्र श् तथा स् को ष हो जाता है अत यहाँ पर श को स होने पर असु रूप वना तत्पश्चात् **'सुभिस्सुप्सुदीर्घः'** (५-१८) अर्थात् इकारान्त तथा उकारान्त शब्दो मे सु, भिस् तथा सुप् होने पर अन्त्य को दीर्घ हो जाता है। अत इस सूत्र से **'अंसु'** के अतिम उ को दीर्घ होने पर **'अंसू'** रूप प्राकृत मे प्राप्त होता है। कही-कही पर **'अंस्सू'** रूप भी प्राप्त होता है वहाँ **'शेषावेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से स् को द्वित्व होने से **'अस्सू'** रूप वनता है।

२. असो, आसो, अस्सो—

यह तीन रूप **'अश्व'** इस शब्द के वनते हैं जिसका अर्थ घोडा होता है। **'अस्सो'** मे **'शषो सः'** (२-४३) इस सूत्र से श को स् हो जाता है तव **'असवः'** रूप वनता है। फिर **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से व् का लोप हो जाता है और **'सर्वादिषुच'** (३-५८) इस सूत्र से स् को द्वित्व होता है पर विकल्प से होता है अर्थात् एक पक्ष मे होता है और एक पक्ष मे नही होता। इस प्रकार अस्स , अस ये दो रूप वनते हैं तव **'अत् ओत् सोः'** (५-१) इस सूत्र से सु या विसर्ग को ओ हो जाता है तव अस्सो, और असो, ये दो रूप वनते हैं। **'आसमृद्धयादिषुवा'** (१-२) इस सूत्र से प्रारम्भ के अ को दीर्घ हो जाता है तब **'आसो'** रूप वनता है और जव दीर्घ नही होता तव **'असो'** यही

रूप बनता है। इस प्रकार एक ही अश्व के प्राकृत भाषाओं में **'अस्सो, असो और आसो'** ये तीन रूप प्राप्त होते हैं। हेमचन्द्र के **'नदीर्घानुस्वारात्'** इस सूत्र से द्वित्व नहीं होता।

३. अक्को—

इसकी संस्कृत की प्रकृति **'अर्क'** है। अर्क का अर्थ सूर्य या आक का वृक्ष होता है। अर्क मे प्रथम **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र का लोप हो जाता है **'अकः'** यह शेष रहता है **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से क का द्वित्व हो जाता है और अक्क यह रूप बना है तब **'अत् ओत् सोः'** (५-१) इस सूत्र से **'ओ'** हो जाता है और **'अक्को'** यह बनता है।

४. अग्गी—

इसकी संस्कृत की प्रकृति **'अग्नि'** है जिसका अर्थ **'आग'** है। **'अग्नि'** के न का लोप **'अधोमनयाम्'** (३-२) इस सूत्र से होने पर **'अगि'** यह रूप रहा तब **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ग को द्वित्व होने पर **'अग्गि'** यह रूप हुआ तब **'सुभिस्सुप्सु दीर्घः'** (५-१८) इस सूत्र से इ को दीर्घ होने से **'अग्गी'** यह रूप सिद्ध होता है। **'इकारान्त तथा उकारान्त शब्दों में सु'** का लोप हो जाता है। अन्त्य हल (४-६)।

५. अग्गिणोः—

द्वितीया विभक्ति के बहु वचन मे **'अग्गिणो'** यह रूप बनता है। संस्कृत मे **'अग्नीन्'** यह होता है। अग्गि यह सिद्ध हो जाने पर (देखो अग्गी) **'शस्'** जो द्वितीया के बहुवचन का प्रत्यय है उसके आने पर अग्गि नशस् इस अवस्था मे **'इदुतोः शसोणो'** (५-१४) इस सूत्र से शस् के स्थान पर णो यह आदेश हो जाता है और **'अग्गिणो'** यह रूप बनता है जिसका अर्थ **'आगो को'** यह होता है।

६. अग्घो—

इसकी संस्कृत की प्रकृति **'अर्घ'** है जिसका अर्थ **'पूज्य'** होता है। अर्घ बसु इस अवस्था मे **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) इससे र् का लोप होने पर अघ+सु यह शेष रहा। **'शेषा देशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से घ को द्वित्व होकर अ+घ+घ+सु यह हुआ तब **'वर्गेषु युजः पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से प्रथम घ के स्थान पर ग् होने पर अ+ग्+घ्+सु यह शेष रहा। **'अत् ओत् सो'** (५-१) इससे सु के स्थान पर **'ओ'** होने पर अग्घो यह रूप सिद्ध हुआ।

७. अच्छी—

इसकी सस्कृत प्रकृति 'अक्षि' है जिसका अर्थ आँख होता है। अक्षि+सु इस अवस्था मे 'अक्ष्यादिषुच्छ.' (३-३०) इस सूत्र से क्ष कार को छ हो जाता है तो अछि+सु यह रूप वना तव 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से छ को द्वित्व होने पर अ+छ+छ+इ+सु यह रूप हुआ फिर 'वर्गेषु युजः पूर्व.' (३-५१) इस सूत्र से प्रथम छ् को च होने पर अ+च्+छ+इ+सु यह हुआ। उपरान्त 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से इ को दीर्घ होने पर अच्छी+सु यह शेष रहा। 'अन्त्य हलः' (४-६) इस सूत्र से स का लोप होने पर तथा उ का लोप होने पर 'अच्छी' यह रूप बना।

८. अच्चरिअं, अच्छेरं—

इसकी सस्कृत की मूल प्रकृति 'आश्चर्यम्' है जिसका अर्थ अचरज विस्मय, तअज्जुव आदि होता है। शौरसेनी प्राकृत मे इसका रूप 'अच्चरिअं' वनता है। 'आश्चर्यस्याच्चरिअ' (१२-३०) इस सूत्र से 'आश्चर्य' इसके स्थान पर 'अच्चरिअ' यह आदेश हो जाता है। महाराष्ट्री प्राकृत मे इसका रूप 'अच्छेर' वनता है। प्रथम आश्चर्य के 'आ' को 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) इस सूत्र से 'अ' हो जाता है और 'अश्चर्य' यह रह जाता है। अपभ्रश भाषाओ मे 'ह्रस्व· सयोगे' (८-१-८४ हेमचन्द्र 'शब्दानुशासन') इस सूत्र से दीर्घ 'आ' को छोटा 'अ' ह्रस्व होता है। इसके वाद 'श्चत् सप्सां छ' (३-४०) इस सूत्र से 'श्च् के स्थान पर 'छ' हो जाता है और 'अछर्य' यह शेष रहता है फिर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से 'छ' को द्वित्व होकर अ+छ+छ+र्य यह स्वरूप होता है पुन 'वर्गेषु युज पूर्वः' (३-५१) से प्रथम छ को च् होकर अच्छर्य यह रूप होता है तव 'तूर्य्य, धैर्य सौन्दर्याश्चर्य पर्यन्तेषुरः' (३-१८) इस सूत्र से र्य के स्थान पर र होकर 'अच्छर' यह बनता है 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) इस सूत्र से सु विभक्ति को विन्दु ( ) यह हो जाता है और 'ए शय्यादिषु' (१-५) इस सूत्र से छ के अ को 'ए' होकर 'अच्छेर' यह रूप सिद्ध होता है।

९. अजसो—

इसकी मूल प्रकृति 'अपयश.' है। सर्व प्रथम 'कगचजतदपयवा प्रायोलोपः' (२-२) इस सूत्र से अपयश के 'प' का लोप होकर 'अयश·' यह रह जाता है। तब 'आदेर्योज.' (२-३१) इस सूत्र से य के स्थान पर 'ज' होकर 'अ+ज+शः' यह शेष रहता है फिर 'शषोस' (२-४३) से श के स्थान पर 'स' होकर

अ+ज+स यह बनता है। संस्कृत मे अपयश शब्द नपुंसकलिंग है पर प्राकृत भाषा मे 'नसान्त प्रावृट् सरदः पुंसि' (४-१८) इस सूत्र से इसको पुल्लिग होता है और 'अन्त्य हल.' (४-६) इस सूत्र से अन्त के हल् का लोप हो जाता है और 'अत ओत् सोः' (५-१) इस सूत्र से सु को 'ओ' होकर 'अजसो' रूप बन जाता है।

१०. अज्ज—

इसकी प्रकृति 'आर्य' है जिसका अर्थ श्रेष्ठ होता है। यह शब्द आमन्त्रण (पुकारने) मे प्रयुक्त होता है तब इसके स्थान पर 'अज्ज आमन्त्रणे' (९-१७) इस सूत्र से आर्य के स्थान पर 'अज्ज' यह निपात हो जाता है।

११. अज्झाओ—

इसकी मूल प्रकृति 'अध्यायः' है। सर्व प्रथम ध्य को 'ध्यह्योर्झ' (२-२८) इस सूत्र से ध्य के स्थान पर 'झ' हो जाता है तब अ+झा+य यह रूप बनता है तब 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से झ को द्वित्व होकर अ+झ+झा+य, यह रूप होता है। पुन 'वर्गेपुयुज पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से पूर्व झ को ज होकर अ+ज+झ+आ+य रूप बना तब 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र मे ओ होकर अ ज् झा ओ रूप बनता है और अन्त्य हल. (४-६) मे अन्त्य सु का लोप होकर अज्झाओ सिद्ध हो जाता है।

१२. अट्ठी—

इसकी मूल प्रकृति 'अस्थि है' जिसका अर्थ हड्डी है। सर्व प्रथम स्थ के स्थान पर 'अस्थनि' (३-११) इस सूत्र से ठ होकर अ+ठ+इ यह रूप हुआ तत्पश्चात् 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होकर अ+ठ+ठ+इ यह हुआ। पुन 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से प्रथम ठ को ट् होकर अ+ट्+ठ+इ यह रूप बना। तब 'सुभिस्सुप्सु दीर्घः' (५-१८) इस सूत्र से इ को दीर्घ होकर 'अट्ठी' यह रूप सिद्ध होता है।

१३. अण्णं—

इसकी प्रकृति 'अन्नम्' या 'अन्य' शब्द मे है—सस्कृत मे इनका अर्थ क्रम से 'अनाज' और 'दुसरा' होता है। सर्व प्रथम 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण हो जाता है और फिर 'मो विन्दुः' (४-१२) इस सूत्र से म् को विन्दु ( ) होकर अनाज के अर्थ मे 'अण्णं' बनता है। 'अन्य' शब्द से 'अण्ण' रूप बनाने मे सर्व प्रथम 'अधोमनयाम्' (३-२)

इस सूत्र से य का लोप होने पर अन्न यह शेष रहा तत्पश्चात् **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण हो गया फिर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ण को द्वित्व हो गया और **'मो विन्दु'** (४-१२) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर अण्ण यह रूप सिद्ध होता है।

१४ अप्पा, अप्पाणो—

इस दोनो की प्रकृति **'आत्मन्'** तथा **'आत्मान'** है—आत्मान प्रथमा का वहुवचन है और इसका प्राकृत मे अप्पाणो यह रूप वनता है परन्तु **'आत्मनोऽप्पाणोवा'** (५-४५) इस सूत्र से विकल्प से **'अप्पाणो'** आदेश होता है। अप्पा मे **'आत्मन्'** प्रकृति है प्रथम **'सन्धा वचा मज् लोपविशेषा बहुलम्'** (४-१) इस सूत्र से **'आ'** को छोटा **'अ'** हो जाता है और फिर **'आत्मनिपः'** (३-४२) इस सूत्र से त्म के स्थान पर प हो गया तो **'अ प न्'** रूप वना तव **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'**(३-५०) इस सूत्र से प को द्वित्व होकर अ+प्+प्+न् रूप वना तदनन्तर **'इत्वद्वित्ववर्ज राजवबना देशे'** (५-४६) इस सूत्र से अत् को **'आ'** होकर **'अप्पा'** रूप वनता है।

१५ अत्तो—

इसकी सस्कृत की प्रकृति **'आर्त'** है जिसका अर्थ पीडित या दु खित होता है। **'आर्त्त'** के र का लोप **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) इस सूत्र से होकर **'आत'** यह रूप रहा तव **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से त को द्वित्व होकर और **'सन्धा व चा म ज् लोप विशेषा बहुलम्'** (४-१) इस सूत्र से आ का ह्रस्व होकर **'अत्त'** रूप वना तव **'अत ओत् सो.'** (५-१) इससे अन्त में **'ओ'** होकर **'अत्तो'** रूप सिद्ध हुआ।

१६ अद्धा—

इसकी मूल प्रकृति **'अध्वा'** है जिसका अर्थ मार्ग या रास्ता है। **'अध्वा'** मे **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) इस सूत्र से व् का लोप होकर अ+ध्+आ यह रूप शेष रहा—तव **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ध् को द्वित्व होकर **'अ+ध्+ध्+आ'** यह रूप वना तव **'वर्गेषु युजः पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ध् को द् होकर **'अद्धा'** यह रूप वनता है।

१७ अप्पुल्लं—

इसकी मूल प्रकृति **'आत्मीय'** है जिसका अर्थ **'अपना'** होता है। सर्व प्रथम **'आत्मनिप.'** (३-४८) इस सूत्र से त्म के स्थान पर प हो गया तो

आ+प+म+य यह रहा, तव 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इम सूत्र से प को द्वित्व हो गया और 'सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) इससे आ को ह्रस्व होकर अ+प्+प+म+य यह शेष रहा—तव अन्त्यहल (४-६) से म् का लोप हो गया फिर 'इल्लोल्लावपरे प्राप्त शैषिकेषुप्रयुञ्जते' इस वार्तिक मे जो (४-२५) सूत्र पर है उल्ल' प्रत्यय हो गया और 'सोविन्दु-र्नपुंसके' (५-३०) इससे विन्दु ( ) होने पर 'अप्पुलम्' यह सिद्ध होता है।

१८ अव्वं, अम्वं—

इन दोनो शव्दो की मूल प्रकृति 'आम्र' है जिसका अर्थ आम होता है। सर्व प्रथम 'सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) इस सूत्र से 'आ' को छोटा 'अ' हो जाता है और फिर 'आम्रताम्रयोर्व' (३-५३) इस सूत्र मे म्र के स्थान पर व हो गया। व को 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से द्वित्व होकर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इम सूत्र से विन्दु ( ) होकर 'अव्व' यह रूप सिद्ध होता है। हेमचन्द्र के अनुसार 'ताम्राम्रे म्व' इस सूत्र से म्र को 'म्व' हो जाता है और वडे आ को ह्रस्व होकर (सन्धा व चा म ज् लोप विशेपावहुलम् (४-१ इस सूत्र मे) 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होकर 'अम्व' यह वनना है।

१९ अरिहो—

इसकी मूल प्रकृति 'अर्ह' है जिसका अर्थ पूज्य या योग्य होता है। प्राकृत भापाओ मे कुछ सयुक्त शव्दो का विप्रकर्प हो जाता है अर्थात् वे ध्वनिया सयुक्त न होकर अलग-अलग उच्चरित होती हैं—जैसे श्री का सिरी, क्लिष्ट का किलिष्ट, ह्री का 'हिरी' आदि।

इस प्रकार प्रथम 'इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान, स्वप्न स्पर्श हर्षा र्हं गर्हे षु (३-६२) इस सूत्र से 'इ' होकर अ+र्+इ+ह यह रूप वना तव 'अत ओत् सोंं' (५-१) इस सूत्र से ओकार होकर 'अरिहो' यह रूप सिद्ध होता है।

२० अलाहि—

इसकी सस्कृत प्रकृति 'अलम्' है जिसका अर्थ निवारण या मना करना होता है। यह अव्यय है और 'निपात्' शव्द है। प्राकृत भाषा मे 'अलाहि निवारणे' (९-११) इस सूत्र मे अलम् के अर्थ मे 'अलाहि' यह निपात् हो जाता है। निपात् शव्दो मे उनकी सिद्धि का प्रकार निर्दिप्ट नही किया जाता।

२१ अलिअं—

इसकी प्रकृति '**अलीकम्**' है जिसका अर्थ असत्य या झूठ होता है। सर्व प्रथम '**इदीत पानीयादिषु**' (१-१८), इस सूत्र से ई को छोटा इ (ह्रस्व) हो गया और फिर '**क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप**' (२-२) इस सूत्र से क का लोप होने पर और '**सोविन्दुर्नपुसके**' (५-३०) से विन्दु ( ) होने हर—'**अलिअ**' यह रूप सिद्ध होता है।

२२ अल्हादो—

इसकी प्रकृति '**आह्लाद**' है जिसका अर्थ प्रसन्नता या आनन्द है। सर्व प्रथम '**ह्न ह्ल ह्मेषु नलमा स्थिति रूर्ध्वम्**' (३-८) इस सूत्र से ह मे नीचे लगा हुआ ल ऊपर होकर आ+ल+हा+द ऐसा होता है—तव '**सन्धा वचा मज्लोप यिशेषावहुलम्**' (४-१) इस सूत्र से आ के स्थान पर अ हो गया और फिर '**अत ओत् सो**' (५-१) इस सूत्र से '**ओ**' हो कर '**अल्हादो**' यह रूप वनता है।

२३ अवरण्हो—

इसकी सस्कृत की प्रकृति '**अपराह्ण**' है जिसका अर्थ दोपहर के वाद का समय होता है सन्ध्या से पूर्व तक का। सवसे पूर्व '**पोव**' (२-१५) इस सूत्र से '**प**' का '**व**' होने पर तथा '**सन्धावचा मज्लोप विशेषाबहुलम्**' (४-१) इस सूत्र से '**रा**' को '**र**' होने पर अ+ब+र+ह्ण यह वनता है। उपरान्त '**ह्न, ह्ल ह्मेषु नलमा स्थिति रूर्ध्वम्**' (३-३८) इस सूत्र से न की ऊर्ध्व स्थिति होने पर अ+व+र+न+ह यह रूप वनता है तव '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) इस सूत्र से न् को ण् होने पर तथा '**अत ओत् सो**' (५-१) इस सूत्र से '**ओ**' होने पर '**अवरण्हो**' यह रूप सिद्ध होता है।

२४ अवत्तो—

इमकी मस्कृत की प्रकृति '**आवर्त्त**' है जिसका अर्थ '**बार वार किसी वस्तु का आना**' होता है। प्रथम '**सन्धावचामज्लोप विछेषावहुलम्**' (४-१) इस सूत्र से '**आ**' को '**अ**' हो जाता है फिर '**सर्वत्रलवराम्**' (३-२) इस सूत्र से र का लोप होने पर '**अवत**' यह शेप रहता है। पुन '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) से त को द्वित्व हुआ और '**अत ओत् सो**' (५-१) इस सूत्र से ओकार होकर '**अवत्तो**' यह रूप सिद्ध होता है। '**न घूर्ता दिषु** (२-२४) इस सूत्र से त को ट नही होता नहीं तो '**संस्यट**' (३-२) से र्त को ट होना चाहिये था।

२५ असिवं असिव्वं—

इन दोनो की मूल प्रकृति 'अशिवम्' है। प्रथम शषो स (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर तथा 'सेवादिषु च' (३-५२) इस सूत्र से विकल्प से व को द्वित्व होने पर 'असिव' तथा 'असिव्वं' ये दो रूप बनते हैं।

२६ अहिमुंको—

इसकी मूल प्रकृति 'अभिमुक्त' है जिसका अर्थ स्वतन्त्र या निर्बाध होता है। सर्वप्रथम 'ख घ थ धभा ह' (२-२७) इस सूत्र से भ के स्थान पर ह हुआ तब 'उपरिलोप क ग ड त द प षसाम' (३-१) इस सूत्र से त् का लोप हो गया और 'वक्रादिषु' (४-१५) इस सूत्र से बिन्दु ( ) होने पर तथा 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'अहिमुंकों' रूप बनता है।

२७ आइदी—

इसकी मूल प्रकृति 'आकृति' है जिसका अर्थ आकार या शक्ल होता है। सर्व प्रथम 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप हो गया और 'इवृष्यादिषु' (१-२८) इस सूत्र से ऋ के स्थान पर 'इ' होने पर 'ऋत्वादिषु तो द' (२-७) इस सूत्र से त को द हो गया और 'सुमि-स्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से अन्त की इ को दीर्घ होने पर 'आइदी' रूप सिद्ध हुआ।

२८ आउदी —

इसकी मूल प्रकृति 'आवृति' है जिसका अर्थ एक बार से अधिक उसी बात का होना है। सर्व प्रथम 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से व् का लोप होने पर 'उद् त्वादिषु' (१-२९) इस सूत्र से ऋ को 'उ' हो गया। तब ऋत्वादिषु तो द (२-७) इस सूत्र से त के द होने पर 'आउदि' यह रूप बना। तत्पश्चात् 'सुमिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से अन्त की इ को दीर्घ होने पर 'आउदी' रूप सिद्ध होता है।

२९ आणत्ती—

इसकी मूल प्रकृति 'आज्ञप्ति' है जिसका अर्थ आज्ञा या आदेश होता है। सर्व प्रथम 'उपरिलोप. क ग ड त द प षसाम्' (३-१) इस सूत्र से प का लोप होने पर 'म्न ज्ञ पञ्चशत पञ्चदशेषुण.' (३-४४) इस सूत्र से 'ज्ञ' को 'ण' हो गया। तब 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से त् को द्वित्व हो गया और 'सुमिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'अणत्ती' रूप सिद्ध होता है।

३०. आणा—

इसकी मूल प्रकृति 'आज्ञा' है। 'म्न ज्ञ पञ्चाशत् पञ्चदशेषु णः' (३-४४) इस सूत्र से ज्ञ के स्थान पर ण् होने पर 'आणा' यह रूप बनता है। इसमे 'शेषादेश यो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से द्वित्व प्राप्त था, पर 'आङोज्ञस्य' (३-५५) इस सूत्र से द्वित्व का निषेध होने पर 'आणा' यह रूप ही बनता हैं।

३१. आदरो—

इसकी मूल प्रकृति 'आदर' है। इसमे 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'आदरो' यह रूप बनता है।

३२. आपेलो, आमेलो—

इन दोनो रूपो की मूल प्रकृति 'आपीडः' है जिसका अर्थ चोटी या शेखर होता है। सर्व प्रथम 'एन्नीडापीडकोदृगीदृशेषु' (१-१९) इस सूत्र से इ के स्थान पर 'ए' यह हो जाता है और 'आपीडे मः' (२-१६) इस सूत्र से प के स्थान पर 'म' होता है। 'डस्य च' (२-२३) इस सूत्र से ड के स्थान पर ल् होकर तथा 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होकर 'आमेलो' यह शब्द सिद्ध होता है। किन्ही आचार्यों के मत से प के स्थान पर म विकल्प से होता है उस अवस्था मे 'आपेलो' यही रूप बनता है।

३३. आहिजाई, अहिजाई—

इनकी मूल प्रकृति 'अभिजातिः' है जिसका अर्थ उच्च कुल या कुलीन जाति होता है। सर्व प्रथम 'ख घ थ धभां हः' (२-२७) इस सूत्र से भ को 'ह' होने पर 'क ग च ज तद प य वां प्रायोल्लोपः' (२-२) इस सूत्र से त का लोप हो गया और 'अ हि जा इ' यह रूप बना। तब 'सुभिस्सुप्सु दीर्घे' (५-१८) इस सूत्र से इ को दीर्घ होने पर और 'आ सामृद्धयादिषुवा' (१-२) इस सूत्र से विकल्प से 'अ' को 'आ' होने पर अहिजाई और आहिजाई ये दोनो रूप सिद्ध होते हैं।

३४. इंगालो—

इसकी मूल प्रकृति 'अङ्गार' है। जिसका अर्थ 'अंगारा' होता है। सर्व प्रथम 'इदीषत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाऽङ्गारेषु' (१-३) इस सूत्र से 'अ' को इ होने पर 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) इस सूत्र से ङ् को विन्दु (ं) हुआ। फिर 'हरिद्रादीनां रोल' (२-३०) इस सूत्र से र के स्थान पर ल होने पर और 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'इंगालो' यह प्रयोग बनता है।

३५ इङ्गिअज्जो, इङ्गिअण्णो—

इन शब्दो की मूल प्रकृति 'इङ्गितज्ञः' है जिसका अर्थ संकेतों या इशारों से ही तात्पर्य को समझ जाने वाला व्यक्ति होता है' 'कुशल या चतुर अर्थ मे इसका प्रयोग होता है। सर्व प्रथम 'इङ्गि अज्जो' में 'यथितद्वर्गान्त' (४-१७) से विकल्प से ञ होने पर 'सर्व ज्ञतुल्येषुञः' (३-५) इस सूत्र से न का लोप होने पर 'क ग च ज त द पय वा प्रायो लोप' (२-२) इस सूत्र से त का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ज को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'इङ्गि अज्जो' यह रूप बनता है। इङ्गिअण्णो मे 'सर्व ज्ञेङ्गित ज्ञयोर्ण' (१२-८) इस सूत्र से 'ण्' होने पर और पूर्ववत् 'कग च ज तद पय वा प्रायोलोप (२-२७) इस सूत्र से त का लोप होने पर तथा 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ण् को द्वित्व होने पर और 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'इङ्गि अण्णो' यह रूप बनता है। 'यथितद्वर्गात्र.' (४-१७) इस सूत्र से ङ् को बिन्दु ( ) होने पर इङ्गि अज्जो या इङ्गि अण्णो ये रूप भी बनते हैं।

३६ इत्थी—

इसकी मूल प्रकृति 'स्त्री' है। शौरसेनी प्राकृत मे 'स्त्रियामित्थी' (१२-२२) इस सूत्र से स्त्री शब्द के स्थान पर 'इत्थी' यह आदेश हो जाता है। किन्ही आचार्यों के मत में इत्थी के त्थ् को ट् ठ् होने पर 'इट्ठी' यह रूप बनता है।

३७ इसी—

इसकी मूल प्रकृति 'ऋषि' है। सर्व प्रथम 'इदृष्यादिषु' (१-२८) इस सूत्र से ऋ के स्थान पर 'इ' हो जाता है इसके बाद 'शषो. स' (२-४३) इस सूत्र से ष् को स हो गया और 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ हो गया 'इसी' रूप बनता है।

३८ इस्सरो, ईसरो—

इनकी मूल प्रकृति 'ईश्वर' है। सर्वप्रथम 'शषो स' (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर 'सेवादिषु च' (३-५९) इससे स् को विकल्प से द्वित्व होने पर और 'सयोगेह्रस्व' (८-१-८४) (हेमचन्द्र) इससे ई का छोटा इ होने पर इ+स्+स्+र हुआ तब 'अत ओत् सो' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'इस्सरो' यह रूप बनता है—जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा 'शषो सः' (२-४-३) इस सूत्र से स होने पर सयोग न होने मे ई को इ नही होता और 'अत ओत् सो' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'ईसरो' यह रूप सिद्ध होता है।

३९. ईसालू—

इसकी मूल प्रकृति 'ईर्षावत्' है जिसका अर्थ 'मतुप्' प्रत्यय होने से ईर्ष्या वाला होता है। इसमें मतुप् के स्थान पर 'आल्वि ल्लोल्लाल वन्तेन्ता मतुपः' (४-२५) से आलु, इल्ल, उल्ल, ऊल, आल, वन्त, इन्त ये आदेश होते हैं- आलु होने पर 'शषो' म' (२-४३) इस सूत्र से ष को स् होने पर तथा सर्वत्र लवराम् (३-३) इस सूत्र से र का लोप होने पर तथा 'सुभिस्सुप्सु दीर्घः' (५-१८) इससे दीर्घ होने पर 'ईसालू' यह रूप बनता है।

४०. उक्केरो—

इसकी मूल प्रकृति 'उत्कर' है जिसका अर्थ **धान्य का पुञ्ज या ढेर होता है।** सर्वप्रथम 'उपरिलोप कगडतदपषसाम्' (३-१) इस सूत्र से त् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से क को द्वित्व होने पर 'ए शय्यादि षु' (१-५) इस सूत्र से ए होने पर और 'अतओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओकार होने पर 'उक्केरो' यह रूप सिद्ध होता है।

४१. उच्छा—

इसकी मूल प्रकृति 'उक्षम्' है जिसका अर्थ बैल है। सर्वप्रथम 'अक्षया-दिषुच्छ' (३-३०) इससे क्ष का छ हो गया और 'अन्त्यहल' (४-६) इससे त् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से छ को द्वित्व होने पर और 'वर्गेषुयुजः पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से प्रथम छ को च् होने पर तथा सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) इससे दीर्घ होने पर 'उच्छा' यह शब्द सिद्ध होता है।

४२. उच्छू—

इसकी मूल प्रकृति 'इक्षु' है जिसका अर्थ **ईख या गन्ना** है। सर्वप्रथम 'उदिक्षुवृश्चिकयो' (१-१५) इस सूत्र से इ के स्थान पर उ हो जाता है और 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) इस सूत्र से च्छ होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घः' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'उच्छू' यह रूप सिद्ध होता है।

४३. उज्जुओ—

इसकी मूल प्रकृति 'ऋजुक' है जिसका अर्थ कोमल वृत्ति वाला है। सर्व-प्रथम 'उदृत्वादिषु' (१-२९) इस सूत्र से ऋ के स्थान पर 'उ' हो जाता है फिर 'कगच जतद पयवा प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप होने पर 'उजुअ' यह शेष रहता है। तब 'नीडादिषुच' (३-५२) इस सूत्र से ज् को द्वित्व हो जाता है और अत् ओत सो.' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर

'उज्जुओ' यह रूप वनता है। हेमचन्द्र के अनुसार 'ऋणर्ज्वृषभत्वृ षौवा' इस सूत्र से ऋ को रि होने पर विकल्प से रिज्जू और उज्जू ये दो रूप वनते हैं। इनमे 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' इमसे दीर्घ हो जाता है और अन्त 'क' का लोप होकर ये दोनो रूप सिद्ध होते है।

४४. उत्तरीअं उत्तरिज्जं—

इन शव्दो की मूल प्रकृति 'उत्तरीयम्' है जिसका अर्थ दुपट्टा होता है। 'कग चज तद पय वां प्रायो लोप' (२-२) इस सूत्र से य का लोप होने पर और 'सोर्विन्दुर्न पुंस के' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'उत्तरी अ' यह रूप वनता है इस रूप मे य के स्थान पर 'ज्ज' नही होता। पर जव 'उत्तरीया नीययोर्ज्जोवा' (२-१७) इम सूत्र से य के स्थान पर 'ज्ज' होने से और 'ह्रस्व सयोगे' (हेमचन्द्र) इस सूत्र से री को ह्रस्व होने पर तथा 'सोर्विन्दुर्न पुंसके' (४-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'उत्तरिज्ज' यह रूप वनता है।

४५. उदू—

इसकी मूल प्रकृति 'ऋतु' है। सर्व प्रथम 'उदृत्वादिषु' (१-२९) इस सूत्र से 'ऋ' के स्थान पर 'उ' हो जाता है और 'ऋत्वादिषुतोद' (२-७) इम सूत्र से त को द होने पर और 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'उदू' यह रूप वनता है।

४६. उप्पलं—

इसकी मूल प्रकृति 'उत्पलम्' है जिसका अर्थ कमल होता है। सर्वप्रथम 'उपरिलोप. क ग ड त दप षसाम्' (३-१) इस सूत्र से त् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से प को द्वित्व होने पर तथा 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'उप्पल' यह रूप सिद्ध होता है।

४७. उम्बरं—

इसकी मूल प्रकृति 'उदुम्वरम्' है जिसका अर्थ गूलर या तामा होता है। 'उदुम्वरे दोर्लोप' (४-२) इस सूत्र से दु का लोप होने पर तथा 'सोर्विन्दुर्नपुंस' के (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'उम्वर' यह रूप वनता है।

४८. उह्मा—

इसकी मूल प्रकृति 'उष्मन्' है जिसका अर्थ 'गर्मी' होता है। 'ष्मसपक्ष्म 'विस्मयेषुम्ह' (३-३२) इस सूत्र से 'ष्म' के स्थान पर 'म्ह' आदेश होता है

और 'अन्त्यहल' (४-६) इससे न् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घः' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'उह्मा' यह रूप सिद्ध होता है।

४९. उप्पाओ

इसकी मूल प्रकृति **'उत्पात'** है। सर्व प्रथम **'कग चज तद पयवां प्रायोलोपः'** (२-२) इस सूत्र से दोनो त् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से प को द्वित्व होकर तथा **'अत ओत् सोः'** (५-१) इस सूत्र से ओकार होकर **'उप्पाओ'** यह रूप बनता है।

५०. ओखलं, उलूखलं

इनकी मूल प्रकृति **'उलूखलम्'** है। सर्व प्रथम **'उलूखलेल्वा वा'** (१-२१) इस सूत्र से उलू के स्थान पर विकल्प से **'ओ'** हो जाता है और **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर **'ओखल'** यह रूप बनता है और जब **'ओ'** नही होता है तब **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होकर **'उलूखल'** बनता है।

५१. उस्सवो

इसकी मूल प्रकृति **'उत्सव.'** है। सबसे पूर्व **'उपरिलोपः कग डतदप शसाम्'** (३-१) इस सूत्र से त् का लोप होने पर **'शेषादेशयो र्द्वित्ववनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से स् को द्वित्व होकर **'अत ओत सो'** (५-१) इससे ओकार होकर **'उस्सवो'** यह रूप बनता है। इसमे **'श्चत्सप्सांछ'** (३-४०) इस सूत्र से त्स को **'छ'** होना चाहिये था पर **'नोत्सुकोत्सवयोः'** (३-४२) इस सूत्र से निषेध होने से नही होता तथा **'कग चज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) इस सूत्र से व का लोप हो सकता था पर सूत्र मे (प्रायो)—प्राय होने से कही पर होता है और कही पर नही होता।

५२. उस्सुओ

इसकी मूल प्रकृति 'उत्सुक' है। सर्व प्रथम **'कग चज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) इस सूत्र से क् का लोप हुआ और **'उपरिलोपः कगडतदप शसाम्'** (३-१) इस सूत्र से त का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से स् को द्वित्व होने पर तथा **'अत ओत् सो'** (५-१) इस सूत्र से **'ओ'** होने पर **'उस्सुओ'** यह रूप बनता है।

५३. एआरह

यह शब्द सस्कृत के **'एकादश'** से बना है जिसका अर्थ ११ होता है। सर्व प्रथम **'संख्यायाच्च'** (२-१४) इस सूत्र से द के स्थान पर **'र'** हुआ और

'कग चज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप होने पर 'दशाविषुह.' (२-४४) इस सूत्र से श को ह हो गया और इस प्रकार 'एआरह' यह रूप वना।

५४. एरावणो

इसको मूल प्रकृति 'ऐरावतः' है जिसका अर्थ इन्द्र का हाथी है (अर्थात् इन्द्र के हाथी का नाम ऐरावत है)। सर्व प्रथम 'ऐतएत्' (१-३५) इस सूत्र से 'ऐ' के स्थान पर 'ए' हुआ और फिर 'ऐरावतेच' (२-११) इस सूत्र से त के स्थान पर ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'एरावणो' यह रूप वनता है।

५५. ओहासो, अवहासो

इन रूपो की मूल प्रकृति 'अवहास' है जिसका अर्थ हसी या उपहास होता है। 'ओहासो' मे 'ओदवापयो' (४-२१) इस सूत्र से अव के स्थान पर ओ हो जाता है और 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'ओहासो' यह रूप वनता है। जिस पक्ष मे 'अव' को 'ओ' नही होता वहाँ अवहासो' यही रूप वनता है।

५६. कइअवो

इसका प्रकृत रूप सस्कृत मे कतवः' होता है जिसका अर्थ छल या कपट है। सर्वप्रथम 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) इस सूत्र मे कै के ऐ को 'अइ' यह हो जाता है और 'कग चज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से त् का लोप होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'कइअवो' यह रूप सिद्ध होता है।

५७. कई

इसकी मूल प्रकृति 'कपि' है जिनका अर्थ वन्दर है। इसमें 'कग चज-तद पयवा प्रायोलोप.' (२-२) इस सूत्र से प् का लोप हो गया और 'सुभिस्सु-प्सुदीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'कई' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

५८. कउरवो

इसकी मूल प्रकृति 'कौरव.' है जिसका अर्थ कुरु के पुत्र होता है (दुर्योधन आदि कौरव थे) सर्व प्रथम 'पौरादिष्वउ' (१-४२) इस सूत्र से 'औ' के स्थान पर 'अउ' हो जाता है। तव 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'कउरवो' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

५९. कोसलो, कउसलो

इनकी मूल प्रकृति 'कौशलम्' है जिसका अर्थ चातुर्य या चतुरता होता है। सव प्रथम 'पौरादिष्वउ' (१-४२) इस सूत्र से 'औ' के स्थान पर 'अउ' होने से तथा 'शषो स' (२-४३) इस सूत्र से देशको स् होने पर 'अत ओत्-सो' (५-१) इससे ओकार होने पर 'कउसलो' यह रूप वनता है पर 'औ' को अउ विकल्प से होता है अत जिस पक्ष मे 'औ' का 'अउ' नही होता वहा 'औत् ओत' (१-४१) इस सूत्र से औ को 'ओ' होने पर 'कोसलो' यह रूप वनता है।

६०. कज्जं, कच्चं

इन शव्दो की मूल प्रकृति 'कार्यम्' है। जिसका अर्थ कार्य या काम है। सर्व प्रथम 'सन्धावचा मज्लोप विशेषावहुलम्' (४-१) इस सूत्र से का के 'आ' को 'अ' हो गया और 'र्यशय्या भिमन्युषुज' (३-१७) इस सूत्र से य्य के स्थान पर 'ज' होने पर 'शेषादेशयोद्वित्वमना दौ' (३-५०) इस सूत्र से ज को द्वित्व होकर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) हो कर 'कज्जं' यह रूप वनता है।

पैशाची प्राकृत मे इसका रूप 'कच्च' वनता है 'ज्ज च्च' (१०-११) इस सूत्र से 'ज्ज' के स्थान पर 'च्च' होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विम्दु ( ) होने पर 'कच्च' यह रूप वनता है।

६१. कञ्जा

इसकी मूल प्रकृति 'कन्या' है जिसका अर्थ लडकी है। प्राकृत भाषा मे इसका रूप 'कञ्जा' वनता है। इसमे 'कन्यायां न्यस्य' (१०-१०) इस सूत्र से न्य के स्थान पर 'ञ्ज' आदेश हो जाता है और 'कञ्जा' यह प्रयोग वनता है।

६२. कढोरं

इसकी मूल प्रकृति 'कठोरम्' है। इसमे 'ठोढः' (२ २४) इस सूत्र से ठ के स्थान पर ढ हो जाता है और 'कढोर' वनता है। 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु हो जाता है।

६२. (२) कणअं

इसकी मूल प्रकृति 'कनकम्' है जिस का अर्थ सोना है। सर्व प्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण हो जाता है और 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से दूसरे 'क' का लोप होने पर 'सो विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'कणअ' यह रूप वनता है।

६३. कण्णिआरो, कणिआरो

इनकी मूल प्रकृति 'कणिकार.' है जिसका अर्थ कनेर होता है। सर्व प्रथम 'सेवादिषु च' (३-५८) इस सूत्र से ण् को द्वित्व विकल्प से होकर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर तथा 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-१) इस सूत्र से क का लोप होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'कण्णिआरो' यह रूप बनता है। जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा सब कार्य पूर्ववत् होता है और 'कणिआरो' यह रूप बनता है।

६४. कण्णउरं, कण्णऊरं

इन दोनो की मूल प्रकृति 'कर्णपूरम्' है जिसका अर्थ कान का आभूषण है। इसमें 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयो-द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ण् को द्वित्व होने पर 'क ग च ज तद पयवांप्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से प का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इससे विन्दु ( ) होने पर 'कर्णऊर' यह रूप बनता है। पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषावहुलम्' (४-१) इस सूत्र से विकल्प से अच् विधि होने पर—ऊ को छोटा 'उ' होने पर 'कण्णउर' यह रूप बनता है। अन्य सर्व कार्य 'कण्णऊर' के समान है।

६५ कणेरू

इसकी मूल प्रकृति 'करेणु.' है जिसका अर्थ 'हथिनी' होता है। सर्व प्रथम 'करेण्वांरणो स्थिति परिवृत्ति' (४-२८) इस सूत्र मे र तथा ण के स्थान मे परिवर्तन हो जाता है अर्थात ण पहले हो आता है और र बाद मे और 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'कणेरू' यह रूप बनता है।

६६. कण्हो, कसणो

इन दोनो शब्दो की मूल प्रकृति 'कृष्ण' है। सर्व प्रथम 'ऋतोऽत् (१-२७) इस सूत्र से 'ऋ' को 'अ' हो गया और फिर 'कृष्णेवा' (३-६१) इस सूत्र से सयुक्त वर्ण 'ष्ण' को विप्रकर्ष हो गया अर्थात ष ण अलग-अलग हो गये 'शषो स' (२-४३) इस सूत्र से 'ष' को 'स' होने पर तथा 'अत ओत्सो.' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'कसणो' यह रूप बनता है। जिस स्थान पर 'ष्ण' का षण (विप्रकर्ष) नही होता क्योंकि 'कृष्णेवा' (३-६१) से विकल्प से होता है वहा 'ह्न स्न ष्ण ष्ण स्नांण्ह' (३-३३) इस सूत्र से 'ष्ण' को 'ण्ह'

होने पर तथा **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे **'ओ'** होने पर **'कण्हो'** यह रूप वनता है।

६७ कन्दोट्ठो

इस शब्द की मूल प्रकृति **'उत्पलम्'** है जिसका अर्थ कमल होता है। प्राकृत भाषाओ के समय मे देशी भाषाओ के प्रचलित शब्दो का प्रयोग भी जन साधारण मे होने लगा था। यद्यपि प्राकृत वैयाकरण वररुचि ने विस्तार से इन देशी भाषाओ के सम्वन्ध मे अपने **'प्राकृत प्रकाश'** मे विचार नही किया है परन्तु उन्होंने **'दाढादयो बहुलम'** (४-३३) इस सूत्र मे दाढादि शब्दो का प्रयोग प्राकृत भाषाओ मे होना स्वीकृत किया है। दाढादि मे आदि शब्द से उनका अभिप्राय उन्ही देशी शब्दो से है जो प्राकृत भाषाओ के समय मे विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगे थे। इसी आधार पर **'उत्पलम्'** से स्थान पर **'कन्दोट्ठो'** शब्द का प्रयोग भी होने लगा था। इस प्रकार की सकीर्ण विधिया प्रयुक्त होती थी।

६८ कमधो

इसकी मूल प्रकृति **'कबन्ध'** है जिसका अर्थ शरीर के सिर के नीचे का भाग जिसे **'धड़'** कहते हैं होता है। प्राकृत मे **'कबन्धे बोम'** (२-१९) इस सूत्र से **'व'** को **'म'** हो जाता है और **'ययितद्वर्गान्तः'** (४-१७) इस सूत्र से बिन्दु होकर **'अत ओत् सो.'** (५-६) इस सूत्र से **'ओ'** होने पर 'कमधो' यह रूप सिद्ध होता है।

६९ कम्मो

इसकी मूल प्रकृति **'कर्म'** हैं जिसका अर्थ काम होता। सर्व प्रथम **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से द्वित्व होने पर तथा **'नसान्त प्रावृट्सरद. पुसि** (४-१८) इस सूत्र से पुल्लिग होने से **'अत ओत् सो'** (५-३) इससे **'ओ'** हो जाने पर **'कम्मो'** यह रूप वनता है।

७० कसो, कम्सो

इनकी प्रकृति **'कस.'** है। **'नजोईलि'** (४-१४) इस सूत्र से विन्दु हो जाता है और **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे **'ओ'** होने पर **'कसो'** यह रूप वनता है—इसी सूत्र से म् भी होता है तव इसका रूप **'कम्सो'** वनता है।

७१ कय्ये

इसकी मूल प्रकृति **'कार्यम्'** है। सर्व प्रथम ह्रस्व सयोगे (हेमचन्द) इस सूत्र से आ, को अ होने पर **'र्यर्जयोय्यः'** (११-७) इस सूत्र से **'र्य'** के

स्थान पर 'ध्य' होने पर 'अत इवेतौ लुक् च' (११-१०) इस सूत्र से 'ए' होने पर 'कय्ये' यह रूप बनता है।

७२ कलंबो

इसकी मूल प्रकृति 'कदम्ब:' है जिसका अर्थ एक विशेष पेड या 'झुण्ड' भी है। 'प्रदीप्त कदम्ब दोहदेषु दो ल' (२-१२) इस सूत्र से द को ल होता है और 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) इससे विन्दु होने पर 'अत ओत् सो:' (५-१) इससे 'ओ' होने पर कल 'म्बो' यह रूप सिद्ध होता है।

७३ कलुणं

इसकी मूल प्रकृति 'करुणम्' है जिसका अर्थ करुणा या दया होता है। सर्वप्रथम 'हरिद्रादीनां रोल'' (२-३०) इस सूत्र से र को ल होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुनके' (५-३०) इस सूत्र मे विन्दु ( ) होने पर 'कलुण' यह रूप बनता है।

७४ कहावणो

इसकी मूल प्रकृति 'कर्पापन.' है जिसका अर्थ १ तोले का चादी का सिक्का (रुपया) होता है। सर्वप्रथम 'पोव' (२-१५) इस सूत्र से 'प' के स्थान पर व हो जाता है और 'कार्षापणे' (३-३९) इस सूत्र मे र्ष के स्थान पर ह होता है और 'नोण' सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न के स्थान पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'काहावणो' यह रूप सिद्ध होता है।

७५ किच्चा

इसकी मूल प्रकृति 'कृत्या' है जिसका अर्थ विनाशकारी मूर्ति है। सर्वप्रथम इदृश्यादिषु' (१-२८) इस सूत्र से ऋ के स्थान पर इ होकर 'कि' रूप बनता है तब 'त्यथ्यद्यांचछजा' (३-२७) इस सूत्र से 'त्य' के स्थान पर ण् होने पर 'च' हो जाता है और 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से च को द्वित्व होकर 'किच्चा' यह रूप बनता है।

७६ कित्ति

इसकी मूल प्रकृति 'कीर्ति.' है जिसका अर्थ यश है। सर्वप्रथम 'सर्वत्रल-वराम' (३-३) इस सूत्र मे र् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' इस सूत्र से त् को द्वित्व होकर 'ईदूतोर्ह्रस्व' (५-२९) इस सूत्र मे बडी ई को इ होकर कित्ति यह रूप बनता है। इसमे 'न धूर्तादिषु' (३-२४) इस सूत्र से त के स्थान पर 'र्तस्यट' (३-२२) इस सूत्र से प्राप्त ट् नही होता है।

७७. किलिट्ठं—

इसकी मूल प्रकृति '**क्लिष्टम्**' है जिसका अर्थ कठिन होता है। सर्वप्रथम '**क्लिष्टश्लिष्टरत्नक्रिया शाङ्गेषु तत् स्वरवत पूर्वस्य**' (३-६०) इस सूत्र से युक्त का विप्रकर्ष हो जाता है और '**क्लि**' कलि होकर पूर्व वर्ण की तत्स्वरता होती है अर्थात पूर्वस्वर के साथ पूर्व वर्ण युक्त हो जाता है इस प्रकार कि+लि+ष्ट बनता है। तब ष्टस्यठ (३-१०) इस सूत्र से ष्ट के स्थान पर ठ हो जाता है और '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) इस सूत्र से ठ् को द्वित्व होकर '**वर्गेषु-युज पूर्व**' (३-५१) इस सूत्र से ठ् को ट होकर '**सोबिन्दुर्नपु सके**' (५-३०) इस सूत्र से बिन्दु (–) होकर '**किलिट्ठ**' यह रूप बनता है।

७८. किलेसो—

इसकी मूल प्रकृति '**क्लेश**' है। सर्व प्रथम '**इ श्रीह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्हगर्हेषु**' (३-६३) इस सूत्र से सयुक्त वर्ण का विप्रकर्ष हो जाता है और पूर्व को इकार तथा तत्स्वरता होती है। '**शषो सः**' (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर तथा '**अत ओत सो**' (५-१) इस सूत्र से '**ओ**' होने पर '**किलेसो**' यह रूप सिद्ध होता है।

७९. किवा—

इसकी मूल प्रकृति '**कृपा**' है। सर्वप्रथम '**इदृष्यादिषु**' (१-२८) इस सूत्र से ऋ के स्थान पर इ होकर '**कि**' हुआ तब '**पोवः**' (२-१५) इस सूत्र से प को व होकर '**किवा**' यह रूप सिद्ध होता है।

८०. किसी—

इसकी मूल प्रकृति '**कृषि**' है जिसका अर्थ खेती है। सबसे पूर्व '**शषो स**' (२-४५) इस सूत्र से ष् को स हुआ तब '**इदृश्यादिषु**' (१-२८) इस सूत्र से ऋ को 'इ' होकर '**सुभिस्सुप्सुदीर्घं**' (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होकर '**किसी**' यह रूप सिद्ध हुआ।

८१. कुअलअं, कुवलअं—

इन दोनो की मूल प्रकृति '**कुवलय**' है जिसका अर्थ कमल है। सर्वप्रथम '**यावदादिषु वस्य**' (४-५) इस सूत्र से व् का लोप होने पर '**कगचजतदपयवा प्रायो लोप**' (२-२) इस सूत्र से य का लोप होने पर '**सोबिन्दुर्नपु सके**' (५-३०) इस सूत्र से बिन्दु ( ) होने पर '**कुअलअ**' यह शब्द सिद्ध होता है। पर '**यावदादिषु वस्य**' (४-५) इस सूत्र से व का लोप विकल्प से होता

है अत जहा व् का लोप नही होता वहाँ 'कुवलअ' यह रूप सिद्ध हो जाता है।

८२. कुक्खेअओ—

इसकी मूल प्रकृति 'कौक्षेयक' है जिसका अर्थ तलवार या खड्ग होता है। सर्वप्रथम 'उत्सौन्दर्यादिषु' (१-४४) इस सूत्र से 'औ' को उ होता है। तव 'ष्कस्कक्षा ख' (३-२९) इस सूत्र से क्ष के स्थान पर ख् होता है और फिर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र मे ख् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ख् को क होने पर कगचजतद 'पयवा प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से य् तथा क् का लोप होने पर 'अत ओत सो' (५-१) इस सूत्र मे 'ओ' होने पर कुक्खेअओ' यह रूप वनता है।

८३ कुच्छी—

इसकी मूल प्रकृति 'कुक्षि' है जिसका अर्थ 'कोख' या वगल होता है। सर्वप्रथम 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) इस सूत्र से 'क्ष' को 'छ' होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से छ् को द्वित्व हुआ और 'वर्गेषुयुज: पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से छ् को च् होने पर तथा 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१२) इस सूत्र से दीर्घ होने पर 'कुच्छी' यह रूप सिद्ध होता है।

८४ कुम्भारो, कुम्भआरो—

इन दोनो की मूल प्रकृति 'कुम्भकार' है जिसका अर्थ 'कुम्हार' या मिट्टी के वर्तन वनाने वाला है। सर्व प्रथम 'क ग च ज तदपयवा प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र से 'कार' के 'क' का लोप होने पर 'अत ओत सो' (५-१) इससे ओ होने पर 'कुम्भ आरो' यह रूप वनता है। परन्तु 'सन्धा वचामज्लोपविशेषावहुलम्' (४-१) इस सूत्र से भ के आगे 'अ' का लोप होने पर और 'भ' के 'आ' मे मिल जाने पर 'कुम्भारो' यह रूप सिद्ध होता है।

८५ केढवो—

इसकी मूल प्रकृति 'कैटभ' है। कैटभ नाम का एक राक्षस था जिसको श्रीकृष्ण ने मारा था। सर्व प्रथम 'सटाशकटकैटभेषु ढ' (२-२१) इस सूत्र से ट के स्थान पर ढ हुआ और 'ऐतएत्' (१-३५) इस सूत्र से कै के ऐ को 'ए' हो गया। तव 'कैटभेव' (२-२९) इस सूत्र से 'भ' को 'व' होने पर 'अत ओत सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'केढवो' सिद्ध होता है।

८६. केलासो—

इसकी मूल प्रकृति 'कैलास' है प्रथम 'ऐत एत्' (१-३५) इस सूत्र से

'ऐ' को 'ए' हो गया और 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर केलासो यह रूप बनता है।

८७ केवट्टओ—

इसकी मूल प्रकृति **'कैवर्तक'** है जिसका अर्थ धीवर या मछली मारने वाला है। सर्व प्रथम **'ऐत एत्'** (१-३५) इस सूत्र से ऐ को ए हो गया और फिर **'र्तस्यट'** (३-२२) इस सूत्र से त को ट हुआ। **'शेषादेशयोद्वित्व-मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ट् को **द्वित्व** होने पर **'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप'** (२-२) इससे क का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे 'ओ' होने पर **'केवट्टओ'** यह रूप बनता है।

८८ कोमुई—

इसकी मूल प्रकृति **'कौमुदी'** है जिसका अर्थ चादनी है। सर्वप्रथम **'औत ओत्'** (१-४१) इस सूत्र से औ को ओ हो जाता है और **'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप** (२-२) इस सूत्र से द् का लोप होने पर **'कोमुई'** यह रूप बनता है।

८९ कोसंबी—

इसका मूल रूप **'कौशाम्बी'** है। यह एक नगर का नाम है। सर्व प्रथम औत एत् (१-४१) इस सूत्र से औ को 'ओ' होता है और **'शषोर्सः'** (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर **'ययितद्वर्गान्त.'** (४-१७) इस सूत्र से विन्दु होने पर तथा **'सन्धावचामज्लोपविशेषाब्रहुलम्'** (४-१) इस सूत्र से ह्रस्व होने पर **'कोसवी'** यह रूप सिद्ध होता है।

९० कउसलो, कोसलो—

इसकी मूल प्रकृति **'कोशलम्'** है। सर्व प्रथम **'पौरादिष्वउ'** (१-४२) इस सूत्र से औ को **'अ उ'** हो जाता है और **'शषोर्सः'** (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर तथा **'अत ओत् सो'** (५-१) इस सूत्र से **'ओ'** होने पर **'कउसलो'** यह रूप बनता है और जिस पक्ष मे **'औ'** को **'अ उ'** नही होता वहा **'औत् एत्'** (१-४१) इस सूत्र से ओ होकर **'कोसलो'** यह रूप सिद्ध होता है।

९१ खग्गो —

इसका मूल शब्द सस्कृत का **'खड्ग.'** है जिसका अर्थ तलवार है। **'उपरिलोप क ग ड त द पषसाम्'** (३-१) इस सूत्र से ड् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ग को द्वित्व होने पर

'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'खग्गो' यह रूप सिद्ध होता है।

९२ छणं खणं—

इन शब्दो की मूल प्रकृति 'क्षणम् है। सर्व प्रथम 'क्षमा वृक्ष क्षमेषु वा' (३-३१) इस सूत्र से विकल्प से क्ष के स्थान पर छ होता है। अत छ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर छण यह रूप वनता है और जहा छ नही होता वहा 'ष्कस्कक्षा ख' (३-२९) इस सूत्र से क्ष को ख होने पर 'खण' यह रूप वनता है।

९३ खदो—

इसकी मूल प्रकृति 'क्षत' है जिसका अर्थ घाव या चोट है। सर्वप्रथम 'ष्कस्कक्षारव.' (३-२९) इस सूत्र ने क्ष को ख होने पर 'ऋत्वादिष तोद:' (२-७) इस सूत्र से त को द हुआ और 'अत ओत् सो.' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'खदो' यह रूप वनता है।

९४ खंदो—

इसकी मूल प्रकृति 'स्कन्द' है। सर्वप्रथम 'ष्कस्कक्षांख' (३-२९) इस सूत्र से स्क को ख होने पर 'ययितद् वर्गान्त' (४-१७) इस सूत्र से विन्दु होकर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होकर 'खदो' यह रूप सिद्ध होता है।

९५ खमा छमा—

इसकी मूल प्रकृति 'क्षमा' है। सर्वप्रथम 'क्षमा वृक्ष क्षणेषुवा' (३-३१) इस सूत्र से विकल्प से क्ष को छ होने पर 'छमा' यह रूप वनता है और जिस पक्ष मे छ नही होता वहा 'ष्कस्कक्षां ख' (३-२९) इस सूत्र से 'ख' होकर 'खमा' यह रूप वनता है। हेमचन्द्र के विचार से 'छमा' का अर्थ पृथ्वी होता है और खमा का अर्थ क्षमा करना या 'माफी' होता है।

९६ खंभो—

इसकी मूल प्रकृति 'स्तम्भ.' है जिसका अर्थ खभा है। सर्वप्रथम 'स्तम्भे ख' (३-१४) से स्त के स्थान पर ख हो जाता है और 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) इस सूत्र से विन्दु हो कर 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होकर 'खंभो' यह रूप वनता है।

९७ खलिअं—

इसकी मूल प्रकृति 'स्खलित' है जिसका अर्थ गिरना या फिसलना होता है। सर्वप्रथम 'उपरिलोप कगडतदपषसाम्' (३-१) इस सूत्र से स् का लोप

होने पर 'कगचज तद पयवां प्रायोलोपः' (२-२) इस सूत्र से त् का लोप होने पर सोविन्दुपु सके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'खलिअं' यह रूप सिद्ध होता है।

९८. खाणू—

इसकी मूल प्रकृति 'स्थाणु' है जिसका अर्थ खूटा या ठूठ है। सर्व प्रथम 'स्थाणावहरे' (३-१५) इस सूत्र से स्थ के स्थान पर ख होने पर सुभिस्सुप्सु-दीर्घ (५-१८) इससे दीर्घ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

९९. खुज्जो —

इसकी मूल प्रकृति 'कुब्ज' है जिसका अर्थ कुबडा होता है 'कुब्जेख.' (२-३४) इस सूत्र से ख होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से व का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ज को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे ओकार होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

१०० खोडओ—

इसकी मूल प्रकृति 'फोटक' है जिसका अर्थ फोडा है। सर्व प्रथम 'स्फोटके' (३-१६) इस सूत्र से स्फ को ख होकर 'टोड.' (२-२०) इस सूत्र से द् को ड् होने पर 'कगचजतद पयं प्रायो लोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे 'ओ' होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

१०१ गअण—

इसकी मूल प्रकृति 'गगनम्' है जिसका अर्थ आकाश है। सर्व प्रथम 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप.' (२-२) इस सूत्र से ग् का लोप होने पर 'नोणा सर्वत्र' (२-४३) इस सूत्र से न कोण होने पर 'सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'गअणं' यह रूप वनता है।

१०२ गआ—

इसकी मूल प्रकृति 'गदा' है। इसमे 'कगचजतद यवा प्रायो लोप.' (२-२) इस सूत्र से द् का लोप होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

१०३ गउखं—

इसकी मूल प्रकृति 'गौरव' है इसमे 'पौराविष्वउ' (१-४२) इस सूत्र से औ को 'अउ' होने पर तथा सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'गउख' यह रूप सिद्ध होता है।

१०४. गओ—

इसकी मूल प्रकृति 'गज' है जिसका अर्थ हाथी है। इसमें 'कगचजतदपयवां प्रायोलोप' (२-२) इस सूत्र मे ज का लोप होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) इससे ओ होने पर 'गओ' बनता है।

१०५ गग्गरो—

इसकी मूल प्रकृति 'गद्गदः' है, जिसका अर्थ प्रसन्न होना होता है। सर्व प्रथम 'उपरिलोपः कगडतदप षसाम्' (३-१) इस सूत्र से द् का लोप होने पर और 'गद्गदे रः' (२ १३) इस सूत्र से अन्तिम द् को र होने पर 'शेषादेश-योर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ग् का द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'गग्गरो' यह रूप बनता है।

१०६ गड्डहो—

इसकी मूल प्रकृति 'गर्दभः' है जिसका अर्थ गधा है। सर्व प्रथम 'गर्दभ संमर्द वितर्दि विच्छर्दि र्दस्य' (३-२६) से र्द के स्थान पर ड हो जाता है और फिर 'शेषादेशयोर्दित्व मनादौ' (५-३०) इस सूत्र से ड को द्वित्व होने पर 'खघथधभांहः' (२-२७) इस सूत्र से भ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'गड्डहो' यह रूप बनता है।

१०७ गरिहो—

इसकी मूल प्रकृति 'ग्रह' है। सर्व प्रथम 'इ' श्री ह्रीक्रीत क्लान्त क्लेशम्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु (३-६२) इस सूत्र से ग्र का विप्रकर्ष गर् हो जाता है और इ होकर गरि बनता है तब 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होकर 'गरिहो' यह रूप बनता है।

१०८ गरुअं—

इसकी मूल प्रकृति 'गुरु' है। इसमे सर्व प्रथम 'अन्मुकुटादिषु' (१-२२) इस सूत्र से उ को अ होने पर 'जातीवास्वार्थिक. कः' (४-२५) से 'क' होने पर 'कग चज तद पयवा प्रयो लोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( )होने पर 'गरुअं' यह रूप सिद्ध होता है।

१०९ गरूई—

इसकी मूल प्रकृति 'गुर्वी' है जिसका अर्थ भारी या बोझ वाली वस्तु होता है —सर्व प्रथम 'अन् मुकुटादिषु' (१-२२) इस सूत्र से गु के उ को अ हो जाता है और 'उ पङ्क्ति तन्वी समेषु' (३-६५) इस सूत्र से 'र्व' को

विप्रकर्ष होने पर र व् हो जाता है और इसी सूत्र से उ भी हो जाता है। **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) इस सूत्र मे व का लोप होने पर **'गरुई'** यह रूप बनता है। **'उपद्मतन्वी समेषु'** (३-६५) इस सूत्र मे यद्यपि गुर्वी शब्द नही है तो भी तन्वी के ममान होने से गुर्वी का भी ग्रहण होता है।

११० गहवई

इसकी मूल प्रकृति **'गृहपतिः'** है जिसका अर्थ घर का स्वामी है। सर्व प्रथम **'ऋतोऽत्'** (१-२७) इस सूत्र से ऋ को अ होता है। **'पोव.'** (२-१५) इस सूत्र से प को व होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप.'** (२-२) इस सूत्र से त् का लोप होने पर **'सुभिस्सुप्सु दीर्घः'** (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने पर **'गहवई'** यह रूप सिद्ध होता है।

१११ गहिरं

इसकी मूल प्रकृति **'गभीरम्'** है। सर्व प्रथम **'इदीतः पानीयाविषु'** (१-१८) इस सूत्र से भी को 'भि' (इ) होने पर **'ख घ थ ध भां हः'** (२-२७) इस सूत्र से भ् को ह होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर **'गहिर'** रूप बनता है।

११२ गारवं, गउरवं

इन दोनो की मूल प्रकृति **'गौरवं'** है जिस का अर्थ यश या वडाई है। सर्व प्रथम **'आ च गौरवे'** (१-४३) इस सूत्र से गौ के औ के स्थान पर विकल्प से **'आ'** होने पर 'गारवम्' यह रूप बनता है। तव **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इस सूत्र मे विन्दु ( ) होने पर गारव बनता है पर जिस पक्ष मे आ नही होता वहा **'पौराविष्व उ'** (१-४२) इस सूत्र से **'औ'** को **'अउ'** होने पर पूर्ववत् विन्दु होने पर **'गउरव'** यह रूप बनता है।

११३ गाहा

इसकी मूल प्रकृति **'गाथा'** है जिसका अर्थ कथा है। **'खघथधभा ह'** (२-२७) इस सूत्र से **'थ'** को **'ह'** होने पर **'गाहा'** यह रूप बनता है।

११४ गिट्ठी

इसकी मूल प्रकृति **'गृष्टि'** है जिसका अर्थ एक कन्द विशेप होता है। सर्व प्रथम **'इदृष्याविषु'** (१-२८) इस सूत्र से गृ के ऋ को इ होकर **'ष्टस्य ठ'** (३-१०) इस सूत्र मे ष्ट के स्थान पर ठ होकर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होकर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) इस सूत्र

से पूर्व ठ् को ट् होकर 'सुभिस्सु दीर्घः' (५-१८) इससे दीर्घ होकर 'गिट्ठी' यह रूप सिद्ध होता है।

११५ गिद्धो

इसकी मूल प्रकृति 'गृद्ध' है। सर्व प्रथम 'इगृध्रसमेषु' (१२-६) इस सूत्र से गृ के ऋ को इ होकर गि हो जाता है और फिर 'उपरिलोप. कग डतदप-षसाम्' (३-१) इससे द् का लोप होने पर और 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् को म् लोप होने पर 'गिध्' यह शेष रहा। तब 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) सूत्र से ध् को द्वित्व होने पर 'वर्गान्त्येषु युज पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से प्रथम ध् को द् होने पर अत ओत् सो.' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'गिद्धो' यह रूप सिद्ध होता है।

११६ गिम्हो

इनकी मूल प्रकृति 'ग्रीष्मः' है। सर्व प्रथम 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर 'ह्रस्व' सयोगे' (हेमचन्द्र) इससे ई को इ होने पर 'ष्म पक्ष्मविस्मयेषुम्ह.' (३-३२) इस सूत्र से 'ष्म' को 'म्ह' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'गिम्हो' यह रूप सिद्ध होता है।

११७ गुंठी

इसकी मूल प्रकृति 'गृष्टि' है जिसका अर्थ प्रथम प्रसूता गाय है सर्व प्रथम 'उदृत्वादिषु' (१-२९) इस सूत्र से 'ऋ' को 'उ' होने पर 'ष्टस्यठ' (३-१०) इस सूत्र से ष्ट को 'ठ' होने पर वक्रादिषु' (४-१५) इस सूत्र से विन्दु ( ) हो जाने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ.' (५-१८) इससे दीर्घ होने पर 'गुंठी' यह रूप सिद्ध होता है।

११८ गुज्झओ

इसकी मूल प्रकृति 'गुह्यक' है जिसका अर्थ एक विशेष देवयोनि है। सर्व प्रथम 'ध्य ह्योर्झ' (३-२८) इस सूत्र से ह्य के स्थान पर 'झ' हो जाता है और फिर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से झ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज' पूर्व.' (३-५१) इससे झ को ज् होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोपः' (२-२) इससे क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'गुज्झओ' यह रूप सिद्ध होता है।

११९ गोट्ठी

इसकी मूल प्रकृति 'गोष्ठी' है जिसका अर्थ मण्डली या झुण्ड ही सम्प्रति प्रचलित है। सर्व प्रथम 'उपरि लोप. क ग ड त द प षसाम्' (३-१) इस

सूत्र से ष् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ठ् को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज· पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से प्रथम ठ् को ट् होने पर **'गोट्ठी'** यह रूप बनता है।

१२० गोला

इसकी मूल प्रकृति **'गोदावरी'** है। एक नदी का नाम है। देशी भाषाओ मे गोदावरी के लिये गोला का प्रयोग होता था अत **'दाढादयो बहुलम्'** (४-३३) इस सूत्र में वैयाकरण वररुचि ने गोला शब्द को **'गोदावरी'** शब्द के लिए निपात रूप में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार के अन्य देशी शब्द भी निपात कोटि मे आते हैं।

१२१ घणा

इसकी मूल प्रकृति **'घृणा'** है। **'ऋतोऽत्'** (१-२७) इस सूत्र से ऋ को अ होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४१) इस सूत्र से ण होने पर **'घणा'** बनता है। किन्ही भाषाओ मे न का प्रयोग था उस न के स्थान पर प्राकृत मे ण होता है।

१२२ घरं

इसकी मूल प्रकृति **'गृहम्'** है। **'गृहेघरोऽपतौ'** (४-३२) इस सूत्र से **'घर'** होने पर **सोर्बिन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इस सूत्र से बिन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

१२३ चइत्ता

इसकी मूल प्रकृति **'चैत्र.'** है। यह एक महीने का नाम है जिसे **'चैत'** कहते है। **'दैत्यादिष्वइ'** (१-३६) इस सूत्र से **'ऐ'** के स्थान पर **'अइ'** होकर **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होकर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे ओ होकर तथा **'शेषादेशयोर्दित्वमनादौ'** (५-५०) इस सूत्र से त् को द्वित्व होकर **'चइत्तो'** यह रूप बनता है।

१२४ चउत्थी-चोत्थी-चोथी

इसकी मूल प्रकृति **'चतुर्थी'** है। **'चउत्थी'** मे सर्व प्रथम **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर तथा **'कगचजतद पयवा प्रायोलोप.'** (२-२) इस सूत्र से त् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से थ् को द्वित्व होने पर तथा **'वर्गेषुयुज पूर्व '** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व थ को त् होने पर **'चउत्थी'** यह रूप बनता है। चोत्थी मे **'चतुर्थी-चतुर्दश्योस्तुना'** (१-९) इस सूत्र से **'ओ'** होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

चोथी मे 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) इससे त् का लोप होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

१२५. चडु, चाडु

इनकी मूल प्रकृति 'चाटु' है जिसका अर्थ असत्य प्रशसा है। इनमे 'अदातोयथादिपुवा' (१-१०) इस सूत्र से आ को विकल्प से अ होने पर चटु, चाटु यह होते है और 'टोड' (२-२०) इस सूत्र से ट को ड होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

१२६ चंदिमा

इसकी मूल प्रकृति 'चन्द्रिका' है जिसका अर्थ चादनी है 'चन्द्रिकायांम' (२-६) इस सूत्र से क के स्थान पर म होता है और 'सर्वत्रलवरा' (३-३) इस सूत्र मे र् का लोप होने पर 'ययितद्वर्गान्तः' (४-१७) इस सूत्र से विन्दु (ं) होने पर 'चंदिमा' वनता है। 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से द को द्वित्व प्राप्त था पर 'न विन्दुपरे' (३-५६) इस सूत्र मे निषेध हो जाता है।

१२७ चंदो, चंद्रो

इनकी मूल प्रकृति 'चन्द्र' है। 'द्रे रोवा' (३-४) इस सूत्र से र् का लोप होने पर 'ययितद्वर्गान्त.' (४-१७) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'चंदो' रूप वनता है। जिस पक्ष मे र का लोप नही होता वहा और सव कार्य पूर्ववत् होकर 'चन्द्रो' यह रूप वनता है।

१२८ चलणो

इसकी मूल प्रकृति 'चरण' है। इसमे 'हरिद्रादीनां रोल.' (२-३०) इस सूत्र से र को ल होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण् होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इससे ओ होने पर 'चलणो' यह रूप वनता है। देशी भाषाओ मे चरन भी प्रचलित है पर प्राकृत मे ण ही होता है।

१२९ चातुलिअं

इसकी मूल प्रकृति 'चातुर्यम' है। 'दाढादयो वहुलम्' (४-३२) इस सूत्र से इस शब्द के दाढादिगण मे होने से 'चातुलिअ' शब्द निपात् के रूप मे प्रयुक्त होता है।

१३०. चेंघं चिंघं

इनकी मूल प्रकृति 'चिन्हम्' है। 'इत एत् पिण्ड समेषु' (१-१२) इस सूत्र से इ को ए विकल्प से होता है। चेंघ मे ए होने पर

तथा 'चिन्हेंन्ध' (३-३४) इस सूत्र से 'न्ह' को 'न्ध' हो जाता है और 'सोविन्दु नंपुसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'चेंध' रूप वनता है। जिस पक्ष मे ए नही होता वहा सब कार्य पूर्ववत् होकर चिंध यह रूप वनता है।

१३१. चिहुरो--

इसकी मूल प्रकृति 'चिकुर.' है जिसका अर्थ वाल है। 'स्फटिकनिकष चिकुरेषुकस्यह' (२ ४) इस सूत्र से क को ह होकर 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से ओ होकर 'चिहुरो' रूप वनता है।

१३२. चिलादो---

इसकी मूल प्रकृति 'किरात.' है जिसका अर्थ 'भील' है सर्व प्रथम 'हरिद्रादीना रो ल' (२-३०) इस सूत्र से र् के स्थान पर ल होने पर 'किरातेच:' (२-३३) इस सूत्र से क को च हुआ और 'ऋत्वादिषुतोद:' (२-७) इस सूत्र से त को द होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे ओ होने पर 'चिलादो' यह रूप वना है।

१३३. चोरिअं--

इसकी मूल प्रकृति 'चौर्यम्' है। सर्व प्रथम 'चौर्यसमेषुरिअ' (३-२०) इस सूत्रसे 'र्य' को 'रिअ' यह आदेश होकर तथा 'औत ओत्' (१-४१) इस सूत्र से औ को ओ होकर 'चोरिअं' यह रूप वनता है।

१३४. छट्ठी---

इसकी मूल प्रकृति 'षष्ठी' है। 'षट्शावक सप्तपर्णानां छ.' (२-४१) इस सूत्र से ष को छ होने पर 'ष्ठस्यठ' (३-१०) इस सूत्र से ष्ठ को ठ होने पर 'शेषादेश योर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्वं' (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ठ को ट् होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ.' (५-१८) इस सूत्र मे दीर्घ होने पर 'छट्ठी' यह रूप वनता है।

१३५. छणं, खणं---

इन दोनो की मूल प्रकृति 'क्षणम्' है। 'क्षमावृक्षक्षणेषुवा' (३-३१) इस सूत्र से विकल्प से क्ष को छ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र मे विन्दु ( ) होने पर 'छणं' रूप वनता है। जिस पक्ष मे छ नही होता वहा 'ष्कस्कक्षां ख' (३-२९) इस सूत्र से क्ष को ख होने पर तथा पूर्ववत् विन्दु होने पर 'खणं' यह रूप वनता है।

१३६ 'छत्तवण्णो'—

इसकी मूल प्रकृति 'सप्तपर्ण.' है। यह एक प्रकार की लता है। सर्व प्रथम 'षट् शावम सप्तपर्णानांछ.' (२-४१) इस सूत्र से स को छ होकर 'उपरिलोप. कगडतद पषसाम्' (३-१) इस सूत्र से प् का लोप होने पर 'शेषा-देशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से त् को द्वित्व होने पर 'पोवः' (२-१५) इस सूत्र से पर्ण के प को व होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से र का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ण् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'छत्तवण्णो' यह रूप वनता है।

१३७ छमा, खमा—

इनकी मूल प्रकृति 'छमा' है। 'क्षमा वृक्ष क्षणेपुवा' (३-३१) इस सूत्र से क्ष को छ होने पर छमा वनता है। पर जिस पक्ष मे छ नही होता वहा 'ष्क-स्कक्षां ख.' (३-२९) इस सूत्र से ख होने पर 'खमा' यह रूप बनता है।

१३८ छम्मुहो—

इसकी मूल प्रकृति 'षण्मुख' है जिसका अर्थ 'स्वामी कार्तिक' है। सर्व प्रथम 'षट्शावक सप्तपर्णानांछ' (२-४१) इस सूत्र से ष को छ होता है तब 'णोन'(१०-५) इस सूत्रसे ण को न् हुआ। यद्यपि 'णोनः' इस सूत्र से पैशाची प्राकृत मे ण् को न् होता है तौ भी व्यत्यम से महाराष्ट्री मे भी पाया जाता है अत न् होने पर 'न्मोम' (३-४३) इस सूत्र से 'न्म' को 'म' होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से म् को द्वित्व होने पर 'खघथ-धभाह' (२-२७) इस सूत्र से ख को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'छम्मुहो' यह रूप सिद्ध होता है।

१३९ छार—

इसकी मूल प्रकृति 'क्षारम्' है। 'अक्ष्यादिषुच्छ.' (३-३०) इस सूत्र से क्ष को छ होने पर 'सोविन्दुर्न पुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

१४० छावओ—

इसकी मूल प्रकृति 'शावक' है जिसका अर्थ बच्चा है सर्व प्रथम 'षट्शा-वक सप्त पर्णानांछ' (२-४१) इस सूत्र से श को छ होने पर 'कगचजतदपयवां प्रायोलोपः' (२-२) इस सूत्र से क का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इस सूत्र से 'ओ' होने पर 'छावओ' यह रूप वनता है।

१४१ छाहा, छाही

इनकी मूल प्रकृति 'छाया' है। 'छायायाह.' (२-१८) इस सूत्र से य को ह होने पर 'छाहा' यह रूप बनता है और 'आदीतो बहुलम्' (५-२४) इस सूत्र से अन्तिम 'आ' को विकल्प से ई होने पर 'छाही' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

१४२ छीरं

इसकी मूल प्रकृति 'क्षीरम्' है जिसका अर्थ दूध है। 'अक्ष्यादिषुच्छ.' (३-३०) इस सूत्र से छ होने पर 'सोर्विन्दुर्न पुसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'छीर' यह रूप बनता है।

१४३ छुअं

इसकी मूल प्रकृति 'क्षुतम्' है जिसका अर्थ 'मूख' है। सर्व प्रथम 'अक्ष्यादिषुच्छ.' (३-३०) इस सूत्र से क्ष को छ होने पर 'कगचजतदपय वा प्रायोलोपः' (२-२) इससे त् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्न पुसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'छुअ' यह रूप बनता है।

१४४ छुण्णो

इसकी मूल प्रकृति 'क्षुण्ण.' है जिसका अर्थ दु खित है। 'अक्ष्यादिषुच्छ.' (३-३०) इस सूत्र से क्ष को छ होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इससे 'ओ' होने पर 'छुण्णो' रूप बनता है।

१४५ छुरं

यह शब्द 'क्षुरम्' से बना है जिसका लौकिक अर्थ छुरा है। 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) इस से क्ष को छ होने पर 'सोर्विन्दुर्न पुसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

१४६ छेत्तं

यह शब्द 'क्षेत्रम्' से बना है जिसका अर्थ खेत है। 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) इससे क्ष को छ होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर तथा 'शेषादेश योर्द्वि त्वमनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'सोर्विन्र्नपुसके' (५-३०) इस सूत्र से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

१४७ जइ जआ जइआ जाहे

ये शब्द 'यदा' इससे बने हैं जिसका अर्थ जब होता है। सर्व प्रथम 'आदेर्योज' (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर 'इत्सदादिषु' (१-११) इस सूत्र से आ को विकल्प से इ हो जाता है। जिस पक्ष मे इ हो जाता है वहा 'जइ'

वनता है और जहाँ इ नही होता वहा **'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप'** (२-२) इस सूत्र से द् का लोप होने पर **'जआ'** यह रूप वनता है। ङ 'चतुर्थी' के प्रयोग मे **'आहे इआकाले'** (६-८) इस सूत्र से आहे और इआ आदेश हो-जाते हैं और जाहे तथा जइआ ये दो रूप वनते हैं।

१४८ जउणा

यह शब्द **'यमुना'** इससे वना है। इसमे **'यमुनायां मस्य'** (२-३) इस सूत्र से म का लोप होने पर **'आदेर्योज.'** (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर **'जउणा'** रूप वनता है।

१४९ जक्खो

इसकी मूल प्रकृति **'यक्ष'** है सर्वप्रथम **'आदेर्योज'** (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर **'ष्कस्कक्षा ख'** (३-२९) इस सूत्र से क्ष के स्थान पर ख होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ख को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज. पूर्व.'** (३-५१) इस सूत्र से प्रथम ख को क् होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर जक्खो यह रूप वनता है।

१५० जञ्जो जण्णो

इनकी मूल प्रकृति **'यज्ञ.'** है। सर्व प्रथम आदे र्योज (२-३१) इससे य को ज होने पर **'ज्ञस्यञ्ज'** (१०-९) इस सूत्र से ज्ञ को **'ञ्ज'** होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) इससे **'ओ'** होने पर **'जञ्जो'** यह रूप वनता है। पक्ष मे **'म्न ज्ञ पञ्चाशत् पञ्चदशेषुण'** (३-४४) इस सूत्र से ज्ञ को ण होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से द्वित्व होकर पूर्ववत् ओ होने पर जण्णो रूप वनता है।

१५१ जट्ठी

यह शब्द **'यष्टि'** शब्द से वना है जिसका अर्थ दण्ड (लकडी) होता है। सर्वप्रथम **'आदेर्योज'** (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर **ष्टस्यठ'** (३-१०) इस सूत्र मे ष्ट को ठ होने पर **'शेषादेशययोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ट को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व.'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ठ को ट् होने पर **'सुभिस्सुप्सु दीर्घ'** (५-१८) इस सूत्र से दीर्घ होने **'जट्ठी'** यह रूप सिद्ध होता है।

१५२ जढरं

इसका मूल रुप **'जठरम'** है जिसका अर्थ **'पेट'** है। **'ठोढ'** (२-२४) इस सूत्र से ठ को ढ होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर यह रूप वनता है।

१५३ जण्णओ

यह शब्द **'जनक'** से बना है जिसका अर्थ उत्पन्न करने वाला है। **'नोणः सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर नीडादिषु (३-५२) इस सूत्र से ण् को द्वित्व होने पर **'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप.'** (२-२) इस सूत्र से क का लोप होने पर **'अत ओत् सोः'** (५-१) इससे ओ होने पर **'जण्णओ'** रूप बनता है।

१५४ जण्हू

यह शब्द **'जन्हु'** शब्द से बना है। यह एक ऋषि थे। सर्वप्रथम **'ह्रस्नष्णक्ष्णश्नाण्ह'** (३-३३) इस सूत्र से ण्ह होने पर **'सुभिस्सुप्सु दीर्घः'** (५-१८) इससे दीर्घ होने पर **'जण्हू'** रूप बनता है।

१५५ जसो

इसकी मूल प्रकृति **'यशस्'** है। सर्वप्रथम **'आदेर्योज'** (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर **'अन्त्यहल'** (४-६) से स् का लोप होने पर **'शषो स.'** (२-४३) इससे श को स होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे ओ होने पर **'नसान्त प्रावृट् शरद· पुंसि'** (४-१८) इनसे पुल्लिग होने पर यह रूप बनता है।

१५६ जहणं

यह शब्द **'जघनम्'** से बना है। इसका अर्थ नितम्ब है। **'ख घ थ ध भा ह·'** (२-२७) इस सूत्र से घ को ह होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इससे विन्दु ( ) होने पर यह शब्द बनता है।

१५७ जहिट्ठिलो

यह शब्द **'युधिष्ठरः'** से बना है। सर्व प्रथम **'आदेर्योज'** (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर **'अन्मुकुटादिषु'** (१-२२) इस सूत्र से यू के उ को अ होने पर **'ख घ थ ध भा ह'** (२-२७) इससे ध् को ह होने पर **'उपरिलोप क ग ड त द पषसाम्'** (३-१) इससे ष् का लोप हो गया। **'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ठ् को ट होने पर **'हरिद्रादीनां रोल.'** (२-३०) इस सूत्र से र् को ल होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) इससे ओ होकर यह रूप बनता है।

१५८ जामाउओ

यह शब्द **'जामातृक.'** से बना है इसका अर्थ दामाद होता है। सर्वप्रथम **'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप.'** (२-२) इससे त् तथा क् का लोप होने पर

उदृत्वादिषु' (१-२९) इससे उ होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे ओ होने पर यह रूप बनता है।

१५९ जामाआ, जामाअरो

इनकी मूल प्रकृति **'जामातृ'** है जिसका अर्थ भी दमाद (लडकी का पति) होता है। **'आच सौ'** (५-३५) इस सूत्र से ऋ को आ होने पर तथा **'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप'** (२-२) इससे त का लोप होने पर **'जामाआ'** यह बनता है और इसी सूत्र से ऋ को **'अर'** होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) इससे ओ होने पर **'जामाअरो'** बनता है।

१६० जीअं जीविअं

इनकी मूल प्रकृति **'जीवितम्'** है। सर्वप्रथम **'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप'** (२-२) इस सूत्र से व तथा त का लोप होने पर **'सन्धावचा मज् लोप विशेषाबहुलम्'** (४-१) से इ का लोप होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'जीअ'** यह रूप बनता है—पर **'यावदादिषुवस्य'** (४-५) इस सूत्र से व् का लोप विकल्प से होने पर जिस पक्ष मे व का लोप नही होता उसमे **'जीविअ'** यही रूप बनता है।

१६१ जीहा

यह शब्द **'जिह्वा'** से बना है। **'ईत् सिंह जिह्वयोश्च'** (१-१७) इस सूत्र से छोटी इ को दीर्घ होने पर **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) इससे व का लोप होने पर **'जीहा'** यह रूप बनता है।

१६२ जुगुच्छा

इसकी मूल प्रकृति **'जुगुप्सा'** है जिसका अर्थ निन्दा या घृणा है। **'श्चत्सप्सां छ'** (३-४०) इस सूत्र से प्स के स्थान पर छ हो जाता है और **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से ध को द्वित्व होने पर **'वर्गेषुयुजः पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व छ को च् होने पर **'जुगुच्छा'** यह रूप सिद्ध होता है।

१६३ जुवा, जुवाणो

इनकी मूल प्रकृति **'युवन्'** है। सर्व प्रथम **'आदेर्योजः'** (२-३१) इस सूत्र मे य को ज होने पर **'अन्त्यहल'** (४-६) से न् का लोप होने पर **'राज्ञश्च'** (५-३६) से दीर्घ होने पर **'जुवा'** रूप बनता है। जुवाणो मे न् का लोप न होने पर **'नोण. सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर **'अत ओत् सोः'** (५-१) इससे ओ होने पर **'जुवाणो'** रूप सिद्ध होता है।

१६४ जोग्गो—

यह शब्द 'योग्य.' से बना है। सर्व प्रथम 'आदेर्योजः' (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर 'अधोमनयां' (३-२) इससे दूसरे य का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इससे ग् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर 'जोग्गो' रूप बनता है।

१६५ जोव्वणं—

इसकी मूल प्रकृति 'यौवनम्' है। सर्व प्रथम 'आदेर्योज.' (२-३१) इस सूत्र से य को ज होने पर 'औत ओत्' (१-४१) इससे औ को ओ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से व को द्वित्व होने पर नोण सर्वत्र (२-४२) से न् को ण हुआ और 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इससे विन्दु होने पर 'जोव्वणं' यह रूप बनता है।

१६६ डण्डो—

इसकी मूल प्रकृति 'दण्ड' है। 'दोलादण्ड दशनेषु ड' (२-३५) इस सूत्र से द को ड होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे ओ होने पर **डण्डो** यह रूप बनता है।

१६७. डसणो—

यह शब्द 'दशन' से बना है जिसका अर्थ रति है। सर्व प्रथम 'दोला-दण्डदशनेषु डः' (२-३५) इस सूत्र से द को ड होने पर 'शषो. सः' (२-४२) इस सूत्र से श को स होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इससे न् को ण हुआ तब 'अत ओत् सो.' (५-१) इस सूत्र से ओ होने पर 'डसणो' यह रूप सिद्ध होता है।

१६८ डोला—

यह शब्द 'दोला' से बना है जिसका अर्थ झूला है। 'दोला दण्ड दशनेषु ड.' (२-३५) इससे द को ड होने पर यह शब्द बनता है।

१६९ णअणं—

इसकी मूल प्रकृति 'नयनम्' है। सर्व प्रथम 'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप.' (२-२) इस सूत्र से य् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से दोनो न को ण् होकर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'णअण' बनता है।

१७० णअरं—

यह शब्द 'नगरम्' मे बना है। 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप.' (२-२) इस सूत्र से ग् का लोप होने पर 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

१७१ णईगामो, णइग्गामो—

यह शब्द 'नदीग्राम·' से प्राकृतो मे प्रयुक्त होते हैं। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण् हुआ और 'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप·' (२-२) इस सूत्र से द् का लोप हुआ। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इससे र् का लोप होने पर 'अत ओत्सो.' (५-१) से ओ होने पर 'णईगामो' यह रूप वनता है। इस पक्ष मे द्वित्व नही होता पर जिस पक्ष मे 'समासेवा' (३-५) से द्वित्व होता है वहा 'सन्धावचामज्लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से ई को इ होने पर और शेप कार्य पूर्ववत् होने पर 'णइग्गामो' यह रूप वनता है।

१७२ णइसोत्तो, णईसोत्तो—

इनकी मूल प्रकृति 'नदीस्रोत' है। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'क ग चज तद पयवा प्रायोलोप.' (२-२) से द का लोप होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से विकल्प से इ होने पर णई तथा णइ ये दो रूप नदी के वनते हैं। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से स्रोत के र् का लोप होने पर 'अन्त्य हल.' (४-६) से अन्त्य का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से द्वित्व होने पर 'नसान्तप्रावृट्सरद पु सि' (४-१२) से पुल्लिग होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

१७३ णउलं—

यह शब्द 'नकुलम्' से वनता है जिसका अर्थ न्योला है। 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण् होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप (२-२) इस सूत्र से क का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपु सके' इस सूत्र से विन्दु (ं) होने पर यह रूप वनता है।

१७४ णग्गो—

इसकी मूल प्रकृति 'नग्न' है। 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर 'अधोमनया' (३-२) इसमे न का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व-मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो·' (५-१) से ओ होने पर 'णग्गो' रूप वनता है।

१७५. णट्टओ—

इसकी मूल प्रकृति **'नर्तक.'** है जिसका अर्थ नाचने वाला होता है। सर्व प्रथम **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर **'र्तस्यट·'** (३-२२) इस सूत्र से र्त के स्थान पर ट होने से **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से ट को द्वित्व होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप'** (२-२) से क का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे ओ होने पर **'णट्टओ'** यह रूप वनता है।

१७६. णवर—

यह शब्द निपात है और सस्कृत के **'केवलम्'** के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इसकी रूप सिद्धि नही होती **'णवर केवले'** (९-७) इस सूत्र से केवल अर्थ मे णवर का प्रयोग होता है।

१७७. णवरि—

यह भी निपात है और सस्कृत के आनन्तर्य अर्थ मे यह प्रयुक्त होता है। **'आनन्तर्ये णवरि'** (९-८) इस सूत्र मे आनन्तर्य अर्थ मे णवरि का प्रयोग होता है।

१७८. णवि—

यह भी निपात है और सस्कृत के विपरीत अर्थ मे इसका प्रयोग होता है **'णविवैंपरीत्ये'** इस सूत्र से विपरीत अर्थ मे **'णवि'** शब्द निपतित है।

१७९. णहं—

इसकी मूल प्रकृति **'नभस्'** है जिसका अर्थ आकाश है। सर्वप्रथम **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर **'खघथधभाह.'** (२-२७) इस सूत्र से भ को ह होने पर **'सोर्विन्दुर्नपु सके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है **'नसान्त प्रावृट्सरद पु सि'** (४-१८) इस सूत्र से पुल्लिग प्राप्त होने पर **'नशिरोनमसी'** (४-१९) इस सूत्र से निषेध होने पर नपुसक लिंग ही होता है।

१८०. णक्खो णहो—

इनकी मूल प्रकृति **'नख'** है। **'णक्खो'** रूप मे सर्व प्रथम **'नोण. सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर **'सेवादिषुच'** (३-५८) इस सूत्र से विकल्प से द्वित्व होने पर जिस पक्ष मे द्वित्व होता है वहा ख को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज. पूर्व'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ख को क् होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे ओ होकर **'णक्खो'** यह रूप बनता है पर जिस पक्ष

मे द्वित्व नही होता वहा पूर्ववत् ण् होने पर 'खघथधभां ह' (२-२७) इससे ख को ह होने पर 'अत ओत् सो (५-१) इससे ओ होने पर 'णहो' रूप वनता है।

१८१. णिच्चं—

इसकी मूल प्रकृति 'नित्यम्' है। मर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इससे न को ण होने पर 'त्यथ्यद्या चछ जा (३-२७) इस मूत्र से त्य को च होने पर 'शषादेशयोर्द्वित्व मनादौ (३-५०) इस सूत्र से द्वित्व होने पर 'सोर्विन्दुर्नपु सके' (५-३०) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने पर 'णिच्चं' यह रूप वनता है।

१८२. णिज्झरो—

इसकी मूल प्रकृति 'निर्झर' है। मर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) इस मूत्र से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) इस सूत्र से झ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) इस सूत्र से पूर्व झ को ज होने पर 'अत ओत्सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

१८३. णिट्ठुरो

इसको मूल प्रकृति 'निष्ठुरः' है जिसका अर्थ कठोर या निर्दय है। सर्व-प्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर 'उपरिलोप. क ग ड तद प षसाम्' (३-१) इस सूत्र से ष् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज' पूर्वः' (३-५१) इस सूत्र से प्रथम ठ् को ट् होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) इससे ओ होने पर 'णिट्ठुरो' रूप वनता है।

१८४. णिडालं—

इसकी मूल प्रकृति 'ललाटम्' है जिसका अर्थ माथा है। 'दाढादयोबहुलम्' (४-३३) इस सूत्र से ललाटम् के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

१८५. णिद्दा—

इसकी मूल प्रकृति 'निद्रा' है। सर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) इस सूत्र मे र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से द् को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

१८६ णिद्दालू—

यह शब्द **'निद्रावान'** के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। पूर्व प्रकार से णिद्दा सिद्ध हो जाने पर **'आल्विल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुपः'** (४-२५) इस सूत्र से **'आलु'** होने पर **'सुभिस्सुस्सुदीर्घः'** (५-१८) इससे दीर्घ होने पर यह शब्द सिद्ध होता है।

१८७ णिप्फाओ—

इसकी मूल प्रकृति **'निष्पाप.'** है। सर्वप्रथम **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र से न को ण होने पर **'कगचजतद पयवा प्रायोलोप.'** (२-२) इससे अन्तिम प् का लोप होने पर **'स्पस्य फ.'** (३-३५) इस सूत्र से **'स्प'** के स्थान पर **'फ'** होने पर **'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से फ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व फ् को प् होने पर **'अत ओत् सोः'** (५-१) से ओ होने पर **'णिप्फाओ'** यह रूप बनता है।

१८८ णिवत्तओ—

इसकी मूल प्रकृति **'निवर्तक'** है। सर्वप्रथम **'नोणः सर्वत्र'** (२-४२) से न को ण होने पर **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'शेषादेशयो-द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से त् को द्वित्व होने पर **'कगचजतदपयवा प्रायोलोप'** (२-२) इससे क् का लोप होने पर **'अत ओत् सोः'** (५-१) इससे ओ होने पर यह रूप बनता है।

१८९ णिविडो—

इसकी मूल प्रकृति **'निविड'** है। **'नोण.सर्वत्र'** (२-४२) से न को ण होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। इसमे ड को ल नही होता है क्योकि **'डस्यच'** (२-२३) इस सूत्र से ल प्राय होता है सब जगह नही होता।

१९० णिव्वुदं—

इसकी मूल प्रकृति **'निर्वृत'** है। सर्वप्रथम **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) इस सूत्र ने न को ण होता है। **'उदृत्वादिषु'** (१-२९) से ऋ को उ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्र से व को द्वित्व होने पर **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर **'ऋत्वादिषुतोद'** (२-७) इस सूत्र से त् को द् होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-६०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

१९१. णिव्वुदी—

इसकी मूल प्रकृति 'निर्वृति.' है इसमें सब कार्य णिव्वुद के समान होने पर छोटी इ को 'सुभिसुत्सुदीर्घ' (५-१८) इससे दीर्घ होने पर 'णिव्वुदी' रूप बनता है।

१९२ णिसढो—

इसकी मूल प्रकृति 'निषध' है। सर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर 'शषोस' (२-४३) इस सूत्र मे ष् को स होने पर 'प्रथमशिथिल निषधेषुढ' (२-२८) इस सूत्र से ध को ढ होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) इससे ओ होने पर यह रूप बनता है।

१९३ णिसा—

यह शब्द 'निशा' से बनता है जिसका अर्थ रात है। सर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'शषो स.' (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर यह रूप बनता है।

१९४ णिस्सासो, णीसासो—

इसकी मूल प्रकृति निश्वास' है। सर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से व का लोप होने पर 'शषो स' (२-४३) से श् को स होने पर 'सेवादिषुच' (३-५८) से स को विकल्प से द्वित्व होता है जिस पक्ष मे द्वित्व होता है वहाँ 'णिस्सासो' यह रूप बनता है। इसमे 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ हो जाता है 'ईत् सिंह जिह्वायोश्च' (१-१७) से च का पाठ होने से (अर्थात् सिंह और जिह्वा के अतिरिक्त शब्दो को भी) ई हो जाता है इस सूत्र से ई हो जाने पर दोनो मे ई हो जाता है पर 'ह्रस्व. सयोगे' (हेमचन्द्र) से जहाँ द्वित्व होता है वहाँ णी को णि होता है और जहाँ द्वित्व नही होता वहाँ 'णीसासो' यह रूप बनता है।

१९५ णिहासो—

इसकी मूल प्रकृति 'निकष' है जिसका अर्थ कसौटी है। सर्वप्रथम 'नोणःसर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'स्फटिकनिकषचिकुरेषु कस्यह' (२-४) इस सूत्र से क को ह होने पर 'शषो स' (२-४३) से ष को स होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर 'णिहसो' यह रूप बनता है।

१९६ णूणं, णूण—

ये दोनो प्रयोग 'नूनम्' से बने हैं जिसका अर्थं 'निश्चय' है यह अव्यय है। इनमे 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से दोनो न को ण होने पर 'मासादिषुवा' (४-१६) इस सूत्र से विकल्प से बिन्दु ( ) होने पर ये रूप बनते हैं।

१९७ णेउरं

इसकी मूल प्रकृति 'नूपुरम्' है। यह एक आभूषण है जो पैरो मे पहना जाता है। सर्वप्रथम 'एन्नूपुरे' (१-२६) से 'नू' को 'ने' होने पर 'नोण.सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से प् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

१९८ णेडं, णेड्ड

इनकी मूल प्रकृति 'नीडम्' है जिसका अर्थ घोसला है। 'एन्नीडापीडकीदृगीदृशेषु' (१-१९) इस सूत्र से 'नी' की 'ई' को 'ए' होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'णेड' रूप बनता है। पक्ष मे 'सेवादिषु च' (३-५८) से द्वित्व होने पर 'णेड्ड' रूप बनता है।

१९९ णेद्दा, णिद्दा

इनकी मूल प्रकृति, 'निद्रा' है। इसका अर्थ नीद है। सर्वप्रथम 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'इत एत् पिण्डसमेषु' (१-१२) इस सूत्र से विकल्प से इ को ए होता है जिम पक्ष मे ए होता है वहा 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर 'णेद्दा' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे ए नही होता वहा 'णिद्दा' यही रूप रहता है।

२०० णेहो

इसकी मूल प्रकृति 'स्नेह' है जिसका अर्थ प्रेम है। 'उपरिलोप. कगडतदपषसाम्' (३-१) से स् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२०१ णोमल्लिआ

इसकी मूल प्रकृति "नवमल्लिका' है जिसका अर्थ एक विशेष प्रकार की सुगन्धित लता है। सर्वप्रथम 'लवण नवमल्लिकयोर्वेन' (१-७) इस सूत्र से नव के न के अ तथा व को मिलाकर ओ होने पर नो बनता है। तव 'नोण.सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से क का लोप होने पर यह रूप बनता है।

२०२ ण्हाणं

इसकी मूल प्रकृति 'स्नानम्' है। सर्वप्रथम 'ह्रस्नष्णक्ष्णश्नांण्हः' (३-३३) इस सूत्र से स्न के स्थान पर 'ण्ह' होकर 'नोणःसर्वत्र' (२-४२) से न को ण

होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु (ं) होने पर 'ण्हाणं' रूप वनता है।

२०३ तइ तआ

इनकी मूल प्रकृति 'तदा' है जिसका अर्थ तव होता है यह सर्वनाम है। 'कगचजतद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'इस्सदादिवु' (१-११) इस सूत्र मे विकल्प से आ को इ होने पर 'तइ' तथा 'तआ' ये दो रूप वनते हैं।

२०४ तणं

इसका मूल रूप 'तृणम्' है जिसका अर्थ तिनका या घास है। 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२०५ तणुई

इसकी मूल प्रकृति 'तन्वी' है जिसका अर्थ दुवली या पतली होता है। यह शब्द प्राय स्त्रियो के लिये प्रयुक्त होता है। सर्वप्रथम 'उ पद्मतन्वी समेषु' (३-६५) से सयुक्त 'वर्णों' का विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) हो जाता है और पूर्व को उ होता है तव 'तनुवी' यह रूप वनता है। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर और 'कगचजतव पयवा प्रायो लोप' (२-२) से व का लोप होने पर 'तणुई' वनता है।

२०६ तंवं

इसकी मूल प्रकृति 'ताम्र' है। 'आम्र ताम्रयोर्वः' (३-५३) इस सूत्र से दो वकार होते हैं और ह्रस्व सयोगे (हेमचन्द्र) से आ को छोटा अ हो जाता है 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२०७ तंवो

इसकी मूल प्रकृति 'स्तम्व' है जिसका अर्थ समूह या झुण्ड है। 'उपरिलोप. कगडतदपषसाम्' (३-१) इस सूत्र से स् का लोप होने पर 'यथितद् वर्गान्त.' (४-१७) मे म् को विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' से ओ होने पर 'तवो' रूप वनता है।

२०८. तलाअं

इसकी मूल प्रकृति 'तडागम्' है जिका अर्थ तालाव है। 'डस्यच' (२-२३) इस सूत्र से ड को ल होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप.' (२-२) इस सूत्र

से ग् का लोप होने पर 'सोविन्दुर्नपुंके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२०९. तलवेण्टअं, तालवेण्टअं

इनकी मूल प्रकृति **'तालवृन्तकम्'** है जिसका अर्थ पखा होता है। **अदा-तोययादिषुवा'** (१-१०) इस सूत्र से **'आ'** को विकल्प से अ होता है। वृ के ऋ को **'इदृष्यादिषु'** (१-२८) इस सूत्र से इ होकर **'इतएत् पिण्डसमेषु'** (१-१२) से ए हो जाता है। **'तालवृन्तेण्ट'** (३-४५) इस सूत्र से न्त को ण्ट होकर **'कगचजतद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) से क का लोप होने पर **'सोविन्दु-र्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर **'तलवण्टअ'** वनता है। जिस पक्ष मे अ नही होता वहा **'तालवेण्टअ'** वतता है।

२१०. तिण्हं

यह शब्द **'तीक्ष्णम्'** से वना है जिसका अर्थ तेज है। सर्वप्रथम **'ह्नस्नष्ण-क्ष्णश्नांण्ह'** (३-३३) से क्ष्ण की ण्ह होने पर **'ह्रस्व सयोगे'** (हेमचन्द्र) इससे ती को ति होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२११. तुण्हिक्को, तुण्हिओ

ये दोनो शब्द **'तूष्णीक'** से वने है जिसका अर्थ शान्त या चुपचाप है। **'ह्नस्नष्णक्ष्णश्नाण्ह'** (३-३३) इस सूत्र से ष्ण को **'ण्ह'** होने पर ह्रस्व सयोगें (हेमचन्द्र) के अनुसार ई को इ होने पर **'सन्धावचा मज्लोप विशेषा वहुलम्'** (४-१) इस सूत्र से ऊ को उ होने पर **'सेवादिषुच'** (३-५८) से क् को द्वित्व होने पर तथा **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर **'तुण्हिक्को'** रूप वनता है पर जिस पक्ष में द्वित्व नही होता वहा **'कगचजतद पयवां प्रायो लोप'** (२-२) से क का लोप होने पर **'तुण्हिओ'** यह रूप बनता है।

२१२. तुरिअं

इसकी मूल प्रकृति **'त्वरितम्'** है जिसका अर्थ जल्दी या शीघ्रता है। सर्वप्रथम **'क्तेतुर'** (८-५) से त्व को तुर आदेश हो जाता है और क्ते (७-२२) से इ होकर तुरि वनता है तव **'कगचजतद पयवां प्रायो लोप'** (२-२) से त् का लोप होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२१३. तेल्लोक्कं, तेलोक्कं, तेलोअं

ये तीनो प्रयोग प्राकृत भाषाओ मे **'त्रैलोक्यम्'** के होते हैं। सर्वप्रथम **'ऐतएत्'** (१-३५) इस सूत्र से ऐ के स्थान पर ए हो जाता है और फिर

'सर्वत्र लवराम्' (३-३) इस सूत्र से र का लोप होने पर ते बनता है। 'सेवा-दिपुच' (३-५८) इस सूत्र से ल को द्वित्व होता है और 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र मे क को द्वित्व होने पर 'मोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'तेल्लोक्कं' यह रूप बनता है। 'सेवादिपुच' (३-५८) से द्वित्व विकल्प से होता है। अत द्वित्व न होने पर 'तेलोक्कं' यह रूप बनता है। द्वित्व न होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से क का लोप होने पर 'तेलोअ' यह रूप बनता है।

२१४. तोण्डं

इसकी मूल प्रकृति 'तुण्डम्' है जिसका अर्थ नाक है। 'उत ओत् तुण्ड-रूपेषु' (१-२०) इस सूत्र से उ को ओ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने यह रूप बनता है।

२१५ थवओ

इसकी मूल प्रकृति स्तवक' है जिसका अर्थ गुच्छा है। सर्वप्रथम 'स्तस्यथ' (३-१२) इस सूत्र मे स्त के स्थान पर थ होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप' (२-२) इस सूत्र से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर पर यह रूप बनता है। इस सूत्र मे (कग चजतद मे) प्रायो ग्रहण करने से व् का लोप नही होता।

२१६. थाणू

इसकी मूल प्रकृति 'स्थाणु' है जिसका अर्थ खम्भा है। 'स्थाणावहरे' (३-१५) इस सूत्र से स्था का खा होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'थाणू' यह रूप बनता है।

२१७. थुई

इसकी मूल प्रकृति 'स्तुति' है। 'स्तस्य थ' (३-१२) से स्त को थ होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायो लोप.' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु-दीर्घ.' (५-१८) से दीर्घ होने पर थुई यह रूप बनता है।

२१८. दइच्चो

इसकी मूल प्रकृति 'दैत्य.' है। सर्वप्रथम 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) इस सूत्र मे ऐ को 'अइ' होने पर 'त्यथ्यद्या चछजा' (३-२७) से त्य को च होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र मे च को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'दइच्चो' यह रूप बनता है।

२१९. दइवं देव्व---

इनकी मूल प्रकृति **'दैवम्'** है। सर्वप्रथम **'दैवेवा'** (१-३७) इस सूत्र से ऐ को 'अइ' आदेश विकल्प से होता है अइ होने पर **'सोर्विन्दुर्न पुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'दइव'** यह रूप वनता है। जिस पक्ष मे अइ नही होता वहा नीडादिषुच (३-५२) इस सूत्र से व को द्वित्व होने पर **ऐतएत्'** (१-३५) से ऐ को ए होने पर **सोर्विन्दुर्न पुंसके** (५-३०)से विन्दु होने पर **'देव्व'** यह रूप वनता है।

२२०. दसणं---

इसकी मूल प्रकृति **'दर्शनम्'** है। सर्वप्रथम **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र का लोप होने पर **'शषोस'** (२-४३) मे श को स हुआ तथा **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) से न को ण होने पर **'वक्रादिषुच'** (४-१५) से द के ऊपर विन्दु होने से **'दंसण'** यह रूप सिद्ध होता है।

२२१. दच्छो----

इसकी मूल प्रकृति **'दक्ष'** है जिसका अर्थ चतुर है। सर्व प्रथम **'अक्ष्यादिषुच्छ'** (३-३०) इस सूत्र से क्ष को **'छ'** होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) इस सूत्रसे छ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युजः पूर्वः'** (३-५१) इस सूत्र से पूर्व छ को च होने पर **'नसान्त प्रावृट् शरदः पुंसि'** (४-१८) से पुल्लिग होने पर तथा **'अन्त्यहल.'** (४-६) से दक्षन् के न् का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२२२. दड्ढं---

यह प्रयोग **'दग्धम्'** जले हुए के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। **'क्तेन दिण्णादय.'** (८-६२) से क्त प्रत्यय के योग मे दह् धातु से **'दड्ढं'** यह प्रयोग निपात शब्द के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

२२३ दट्ठ---

इसकी मूल प्रकृति **'दृष्टम्'** है। सर्व प्रथम **'ऋतोऽत्'** (१-२७) से ऋ को अ होने पर **'ष्टस्य ठ'** (३-१०) से ष्ट को ठ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ठ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) से प्रथम ठ को ट् होने पर **'मो विन्दुः'** (४-१२) से म् को विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२२४. दवग्गी दावग्गी---

इनकी मूल प्रकृति **'दावाग्नि'** है जिसका अर्थ जगल की आग है। सर्व प्रथम **'अदातोयथादिषवा'** (१-१०) से आ को विकल्प से अ होता है।

अधोमनयाम्' (३-२) से न् का लोप होने पर वा के आ को 'ह्रस्व. संयोगे' (हेमचन्द्र) से ह्रस्व होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ग को द्वित्व होने पर 'समिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१२) से दीर्घ होने पर ये रूप वनते हैं।

२२५ दहमुहो, दसमुहो—

इनकी मूल प्रकृति 'दशमुख' है। सर्व प्रथम 'संज्ञायावा' (२-४५) इस सूत्र से विकल्प से श को ह होने पर 'ख घ थ ध भां हः' (२-२७) इस सूत्र से ख को ह होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर 'दहमुहो' यह रूप वनता है पर जिस पक्ष मे श को ह नही होता वहा 'शषो. स.' (२-४३) से श को स होने पर पूर्ववत् 'दसमुहो' यह रूप वनता है।

२२६ दहरहो, दसरहो—

इनकी मूल प्रकृति 'दशरथ.' है। सर्व प्रथम 'सज्ञाया वा' (२-४५) इस सूत्र से विकल्प से श को ह होने पर 'ख घ थ ध भां ह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ -ोने पर 'वहरहो' यह रूप वनता है और जिस पक्ष मे श को ह नही होता वहा 'शषो. स.' (२-४३) से श को स होने पर पूर्ववत् दहरहो यह रूप घनता है।

२२७. दहवलो दसबलो—

इनकी मूल प्रकृति 'दशयल' है। ये दोनो रूप भी पूर्ववत् होते हैं अर्थात् सज्ञाया वा (२-४५) इस सूत्र से विकल्प से श को ह होने पर 'ख घ थ व भा ह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'दहवलो' यह रूप वनता है और जिस पक्ष मे श को ह नही होता वहा 'शषो स.' (२-४३) से श को स होने पर पूर्ववत् 'वहवलो दसवलो यह रूप वनता है।

२२८. दहिं—

यह शब्द 'दधि' से वना है। 'ख घ थ ध भा ह.' (२-२) इस सूत्र से ध को ह होने पर सोर्विन्दुर्न पुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'दहिं' यह रूप वनता है।

२२९. दस्के—

इसकी प्रकृति भी 'दक्ष' है। दस्के रूप मागधी भाषा मे वनता है। 'क्षस्य स्क' (११-८) मे क्ष को स्क होने पर 'अतएत् सौ पुंसि मागध्याम्' (हेमचन्द्र) इस सूत्र से 'ए' होने पर 'दस्के' रूप वनता है।

२३०. दाढा—

इनकी मूल प्रकृति **'दण्ट्रा'** है जिसका अर्थ दाढ होता है। **'दाढादयो बहुलम्'** (४-३३) इस सूत्र से दाढा शब्द **'दंष्ट्रा'** के लिये प्रयुक्त होता है। यह शब्द निपात है।

२३१. दालिमं—

यह शब्द **'दाडिम'** से बना है जिसका अर्थ अनार है। **'डस्य च'** (२-२३) इस सूत्र से ड को ल होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) इससे विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२३२ दिअरो, देअरो—

इनकी मूल प्रकृति **'देवरः'** है। **'ऐ त इ द् वेदनादेवरयोः'** (१-३४) इस सूत्र से ए को इ होने पर **'क ग छ ज तद पयवां प्रायो लोपः'** (२-२) इस सूत्र से व् का लोप होने पर **'अत ओत् सो** (५-१) से ओ होने पर **'दिअरो'** रूप बनता है। कही-कही **'दे अरो'** यह रूप भी बनता है।

२३३ दिअहो, दिअसो—

इसकी मूल प्रकृति **'दिवसः'** है। **'दिवसेसस्य'** इस सूत्र से स को विकल्प से ह होने पर तथा **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोपः'** (२-२) इस सूत्र से व् का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) इससे **'ओ'** होकर **'दिअहो'** यह रूप बनता है। जिस पक्ष मे ह नही बनता वहा **'दिअसो'** यह रूप होता है।

२३४. दिग्घं, दीहं—

इनकी मूल प्रकृति **'दीर्घम्'** है। **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर **'सेवादिषुच'** (३-५८) से घ को द्वित्व विकल्प से होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व.'** (३ ५१) से पूर्व घ को ग होने पर ह्रस्व संयोगे (हेमचन्द्र) से ई को इ होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है। जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा सयोग न होने पर ह्रस्व नही होता पर र् का लोप पूर्ववत् होने पर **'ख घ थ ध भां ह'** (२-२७) से घ को ह होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'दीहं'** रूप बनता है।

२३५. दिट्ठी—

इसकी मूल प्रकृति **'दृष्टि.'** है। सर्व प्रथम **'इ दृष्यादिषु'** (१-२८) इस सूत्र से ऋ को इ होने पर **'ष्टस्य ठ'** (३-१०) इस सूत्र से ष्ठ को ठ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (५-५०) से ठ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज.**

पूर्व' (३-५१) से पूर्व ठ को ट् होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'विट्ठी' यह सिद्ध होता है।

२३६ दिसा—

यह शब्द 'दिशा' से वना है। 'दिग्प्रावृषो स' (४-११) इस सूत्र से स होने पर यह रूप वनता है।

२३७. दुअल्लं, दुऊलं —

इनकी मूल प्रकृति 'दुकूलम्' है जिसका अर्थ कपडा है। सर्व प्रथम 'अद् दुकूले वा लस्य द्वित्वम्' (१-२५) इस सूत्र से ऊ को अ होने पर तथा ल को द्वित्व होने पर 'सौविन्दुर्नपु सके' (५-३०) मे विन्दु होने पर 'दुअल्ल' रूप वनता है पर जिस पक्ष मे 'अ' नही होता और ल को द्वित्व भी नहीं होता वहा 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर तथा पूर्ववत् विन्दु होने पर 'दुऊलं' रूप वनता है।

२३८ दुक्खिओ, दुहिओ—

इनकी मूल प्रकृति 'दु खित.' है। सर्व प्रथम 'सेवादिषुच' (३-५८) से ख को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व (३-५१) से प्रथम ख को क होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'अत ओत् सो·' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। जहा द्वित्व नही होता वहा 'ख घ थ ध भां ह·' (२-२७) से ख को ह होने पर तथा 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से त का लोप होने पर 'अत ओत् सो:' (५-१) से ओ होने पर 'दुहिओ' वनता है।

२३९. दुय्यणे—

इसकी मूल प्रकृति 'दुर्जन' है। मागधी प्राकृत मे 'र्य र्ज यो य्यं.' (११-७) इस सूत्र से र्ज के स्थान पर 'य्य' हो जाता है और नोण सर्वत्र (२-४२) से न को ण होने पर 'अत इदेतौलुक्च' (११-१०) से ए होकर अथवा 'अत एत्-सौ पु सि मागध्याम्' (हेम चन्द्र) इस सूत्र से ए होने पर 'दुय्यणे' यह रूप वनता है अन्य प्राकृतो मे 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'दुय्यणो' यह रूप वनता है।

२४०. दुव्वारिओ—

इसकी मूल प्रकृति 'दौवारिक' है जिसका अर्थ द्वारपाल है। सर्व प्रथम 'उत्सौन्दर्यादिषु' (१-४४) सूत्र से औ को 'उ' होने पर 'नीडा' दिषुच' (३-५२) इस सूत्र से व को द्वित्व होने पर 'क ग च ज तद पयवा

प्रायोलोप' (२-२) से क का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

२४१. दिअरो, देअरो---

इनकी मूल प्रकृति 'द्वेवर' है 'ऐतइद् वेदनादेवरयो' (१-३४) इस सूत्र से ए को इ होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से व् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होने पर 'दिअरो' रूप बनता है। ए को इ न होने पर 'देअरो' यह भी प्रयुक्त होता है।

२४२. देवत्थुई देवथुई---

ये दोनो शब्द 'देव स्तुति' से बने हैं। सर्वप्रथम 'स्तस्यथ' (३-१२) इस सूत्र से स्त को थ होने पर 'समासेवा' (१-५७) से विकल्प से थ को द्वित्व होने पर पूर्व थ् को 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से त् होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'देवत्थुई' यह रूप बनता है पर जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा 'देवथुई' यही रूप होता है।

२४३. दइव, देव्व----

इन दोनो की मूल प्रकृति 'दैवम्' है। सर्वप्रथम 'दइव मे 'दैवेवा' (१-२७) इस सूत्र से ऐ को 'अइ' विकल्प से होता है जिस पक्ष मे 'अइ' हो जाता है वहा सोविन्दुर्न पुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'दइव' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे 'अइ' नही होता वहा 'ऐत-एत्' (१-३५) से 'ऐ' को 'ए' होने पर 'सेवादिषुच' इस सूत्र से व् को विकल्प से द्वित्व होता है और सोविदुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'देव्व' रूप बनता है।

२४४. दो. हलो--

इसकी मूल प्रकृति दोहद' है जिसका अर्थ 'गर्भ' की पीडा है। सर्वप्रथम प्रदीप्तकदम्ब दोहदेषुल' (२-१२) इस सूत्र से अन्त के द को ल होने पर 'अत् ओत सो' (५-१) से ओ होने पर 'दोहलो' यह रूप बनता है।

२४५. दोहो द्रोहो

इनकी मूल प्रकृति 'द्रोह' है। सर्वप्रथम 'द्रेरोवा' (३-४) इस सूत्र से विकल्प से द् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर दोनो रूप बनते हैं।

२४६. घणं

यह शब्द 'घन' से बना है। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर 'मो बिन्दु' (४-१२) से विन्दु होने पर 'घण' बनता है।

२४७ घणालो—

संस्कृत के 'धनवत्' या 'धनवान्' के अर्थ मे प्राकृत भाषाओ मे यह रूप बनता है। 'आल्विलोल्लाल वन्तेन्ता मतुप' (४-२५) इस सूत्र से 'मतुप्' अर्थ मे वत् या वान् को 'आल' हो जाता है और 'नोंण सर्वत्र' (२-४२) इस सूत्र से न् को ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'घणालो' यह शब्द बनता है। जिस पक्ष मे 'आल' नहीं होता वहां 'घणवन्तो' यही रूप होता है।

२४८. धम्मेल, धम्मिलं

इनकी मूल प्रकृति 'धम्मिल्ल' है जिसका अर्थ 'बंधे हुए या सुन्दर बाल' है। 'इतएत् पिन्ड समेषु' (१-१२) इस सूत्र से विकल्प से इ को ए होने पर 'सोर्विन्दुर्न पुंसके' (५-३०) इस सूत्र से बिन्दु होने पर ये रूप बनते हैं।

२४९ धीआ धूदा, धिया धूआ

इनकी मूल प्रकृति 'दुहिता' है जिसका अर्थ लडकी है। 'दाढादयो बहुलम्' इस सूत्र से दुहिता के अर्थ मे 'धीआ' का प्रयोग होता है। कही कही धूदा धिया, धूआ आदि रूप भी प्रयुक्त होते हैं।

२५० धीरं

इसकी मूल प्रकृति 'धैर्यम्' है। सर्वप्रथम 'ईद्धैर्ये' (१-३९) इस सूत्र से ऐ को ई होने पर धी बनता है तब 'तूर्य धैर्य सौन्दर्याश्चर्य पर्यन्तेषुर' (३-१८) इस सूत्र से र्य को र होने पर सोर्विन्दुर्न पुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२५१ धुत्तो

इसकी मूल प्रकृति 'धूर्त' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) इस सूत्र से र् का लोप होने पर शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से त को द्वित्व होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से ऊ को उ होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। इसमे 'र्तस्यट.' (३-२२) इस सूत्र से र्त को ट होना चाहिये था पर 'नधूर्तादिषु' (३-२४) मे ट् का निषेध हो जाता है।

२५२. धुरा

इसकी मूल प्रकृति 'धुर्' है जिसका अर्थ केन्द्र या धुरी' होता है। 'रोरा' (४-८) इस सूत्र से अन्तिम 'र्' को 'रा' होने पर यह रूप बनता है।

२५३   पअडं, पाअडं—

इनकी मूल प्रकृति 'प्रकटम्' है जिसका अर्थ प्रकट होना है। 'आ समृद्ध्यादिषुवा' (१-२) इस सूत्र से विकल्प से आ होता है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप हो जाता है। 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'टोड' (२-२०) से ट को ड होने पर 'सोर्विन्दु र्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दो रूप बनते हैं।

२५४. पउअं पाउअं—

इनकी मूल प्रकृति 'प्राकृतम्' है। 'अदातोयथादिषुवा' (१-१०) इस सूत्र से आ को विकल्प से अ होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) इस सूत्र से 'प्रा' र् का लोप होने पर 'उदृत्वादिषु' (१-२९) मे ऋ को उ होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायोलोपः' (२-२) से क् तथा त् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो रूप सिद्ध होते हैं।

२५५. पउत्ती—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रवृत्ति' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर तथा व् का भी इसी सूत्र से लोप होने पर 'उदृत्वादिषु' (१-२९) से ऋ को उ होने पर 'उपरिलोप. कगडतदपष साम्' (३-१) से 'त्ति' के एक त् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१२) से दीर्घ होने पर यह रूप बनता है।

२५६. पउम—

इसकी मूल प्रकृति 'पद्मम्' है जिसका अर्थ कमल है। 'उ पद्मतन्वीसमेषु' (३-६५) इस सूत्र से सयुक्त वर्ण 'द्म' का विप्रकर्ष (स्वरभिक्त) हो जाने पर तथा उ होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप.' (२-२) से द् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'पउमं' रूप बनता है।

२५७. पउरो—

इसकी मूल प्रकृति 'पौर.' है जिसका अर्थ नगर निवासी है। 'पौरादिष्व-उ' इस सूत्र से 'औ' को 'अउ' होता है और 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होकर यह रूप बनता है।

२५८. पउरिसो—

इसकी मूल प्रकृति 'पौरुष' है। 'पौरादिष्वउ' (१-४२) इस सूत्र से औ को 'अउ' होने पर 'इत्पुरुषेरो.' (१-२३) इस सूत्र से रू के उ को इ होने पर

'शषो स' (२-४३) मे ष को स होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर 'पउरिसो' यह रूप बनता है। इत्पुरुषेरो (१-२३) इस सूत्र में पुरुष मे पौरुष भी ग्रहण होता है।

२५९. पुरिसा—

इसकी मूल प्रकृति 'पुरुष' है। इसमे 'इत्पुरुषेरो' (१-२३) में रु के उ को इ होने पर 'शषो स' (२-४३) से ष को स होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होने पर यह रूप बनता है।

२६०. पवट्ठो, पओट्ठो—

इनकी मूल प्रकृति 'प्रकोष्ठ' है जिसका अर्थ घर का एक कोठा होता है। सर्वप्रथम 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'ओतोद्वा प्रकोष्ठे कस्यवा' (१-४०) इस सूत्र से को के ओ को अ होता है और क को व होता है पर ये दोनो कार्य विकल्प से होते हैं। अत. एक पक्ष मे 'प्रको' के स्थान पर प व होने पर 'ष्टस्यठ' (३-१०) इस मे 'ष्ट' के स्थान पर ठ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से ठ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व·' (३-५१) इस सूत्र से पूर्व ठ को ट् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'पवट्ठो' यह रूप बनता है पर जिस पक्ष मे क को व नहीं होता और अ नही होता वहा 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से क् का लोप होने पर तथा शेष कार्य पूर्ववत् होने पर 'पओट्ठो' यह रूप बनता है।

२६१. पच्चच्छं—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रत्यक्षम्' है। सर्वप्रथम "सर्वत्रलवराम्' इस सूत्र से प्र के र् का लोप होने पर 'त्यथ्य द्यां चछजा' (३-२७) इस सूत्र से त्य को च होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) इस सूत्र से च को द्वित्व होने पर 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) से क्ष को छ होने पर 'शेषादेशायोर्दित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्वः' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'सोर्बिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२६२. पच्छं—

इसकी मूल प्रकृति 'पथ्यम्' है। 'त्यथ्यद्यांचछजा.' (३-२७) इस सूत्र से त्य को छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से छ को दित्व होने पर 'वर्गेषु युज· पूर्वं' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'सोर्बिन्दुर्नपुंसके, (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२६३. पच्छिमं—

यह शब्द 'पश्चिमम्' से बना है। सर्वप्रथम 'श्चत्सप्सा छ' (३-४०) से श्च को छ होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'मोविन्दु' (४-१२) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप वनता है।

२६४. पज्जत्तो—

इसकी मूल प्रकृति 'पर्याप्त' है। सर्वप्रथम 'र्यशय्या भिमन्युषुज' (३-१७) इस सूत्र से र्य को ज होने पर ह्रस्व संयोगे' (हेमचन्द्र) इससे आ को अ होने पर तथा 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप' (२-२) मे प् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ज् तथा त् दोनो को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'पज्जत्तो' यह रूप वनता है।

२६५. पज्जुण्णो—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रद्युम्न' है। सर्वप्रथम 'म्न ज्ञ पञ्चाशत् पञ्चदशेषुण्ण' (३-४४) इस सूत्र से म्न के स्थान पर ण् होने पर त्य थ्य द्यां च छ जा' (३-२७) से द्य को ज होने पर 'शेषादेशयोर्दित्व मनादौ (३-५०) इस सूत्र से ज् तथा ण् दोनो को द्वित्व होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२६६ पट्टणं—

इसकी मूल प्रकृति 'पत्तनम्' है। सर्वप्रथम 'पत्तने' (३-२३) इस सूत्र से त्त के स्थान पर ट हो जाता है तथा 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ट् को द्वित्व होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण् होने पर 'सो विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

२६७. पडाआ—

इसकी मूल प्रकृति 'पताका' है जिसका अर्थ ध्वजा या झन्डा है। 'प्रतिसर वेतस पताकास ड' (२-८) इस सूत्र से त को ड होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'पडाआ' यह रूप वनता है।

२६८. पडिसुदं—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रतिश्रुतम्' है जिसका अर्थ प्रतिज्ञा करना है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'प्रतिसर वेतस पताकासु ड'

(२-८) से त् को ड होने पर 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से श्रु के र का लोप होने पर श्रुतम् के त को 'अनादा वयुजो स्तथयोर्दधौ' (१२-३) से द होने पर 'वक्रादिषु व' (४-१५) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२६९ पडिवआ, पाडिवआ—

इनकी मूल प्रकृति 'प्रतिपदा' है जिसका अर्थ पहली तिथि या परेवा है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-२) से द् का लोप होने पर 'आ समृध्यादिषु वा' (१-२) से विकल्प से प को आ होने पर 'प्रत्यादौ ड' (हेमचन्द्र के इस सूत्र द्वारा) अथवा 'प्रतिसर वेतस पताकासु ड' (२-२) इस सूत्र से त को ड होने पर 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द् का लोप होने पर दोनो रूप बनते हैं।

२७०. पडिवद्दी—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रतिपत्ति' है जिसका अर्थ ज्ञान अथवा विश्वास है। सर्वप्रथम प्र के र का 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से लोप होने पर 'प्रतिसर वेतस पताकासु ड' (२-८) से प्रति के त को ड होने पर 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'उपरि लोप कगडत दप पमाम्' (३-१) से 'त्ति' के एक त का लोप होने पर 'ऋत्वादिषु तो द' (२-७) से त को द् होने पर 'शेषा-देशायोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से द को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ' से दीर्घ होने पर यह रूप बनता है।

२७१. पडिसरो—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रतिसर' है जिसका अर्थ सेना का पिछला भाग अथवा हाथ की माला होता है। 'प्रतिसर वेतस पताकासु ड' (२-८) से त को ड होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२७२. पडिसिद्धी, पाडिसिद्धी—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रतिषिद्धि' (निषेध) अथवा प्रतिस्पर्धिन (प्रतिद्वन्दी) है। सर्वप्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के र का लोप होने पर 'प्रतिसर वेतस पताकासु ड' (२-२) से त को ड होने पर तथा 'आसमृद्ध्यादिषुवा' (१-२) से अ को विकल्प से आ होने पर प्रतिसिद्ध के प को 'शषो स' (२-४३) से स होने पर 'उपरिलोप क ग ड त द प ष साम् (३-१) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व ध को द् होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ.'

(५-१२) से दीर्घ होने पर ये रूप बनते है। 'प्रतिस्पर्द्धि' मे 'सिच' (३-३७) से स्प को सि होने पर पूर्ववत् रूप बनते हैं इस पक्ष मे 'शषो म' (२-४३) यह सूत्र नही लगता।

२७३ पण्हो—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रश्न' 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'ह्न स्नष्ण क्ष्णश्नांह' (३-३३) इस सूत्र से श्न को 'ण्ह' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२७४ पण्हुदं—

इसकी प्रकृति 'प्रस्तुतम्' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'ह्न स्न ष्ण श्ना ण्ह' (३-३३) से स्त को भी ण्ह होने से 'अनादा वयु जोस्त थयोर्दधौ' (१२-३) से त को द होने पर 'सो विन्दु नंपुसंके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२७५ पत्थरो, पत्थारो—

इनकी मूल प्रकृति 'प्रस्तर' है। सर्व प्रथम 'सर्वत्रलवरां' (३-३) से र् का लोप होने पर 'अदातो यथा दिषुवा' (१-१०) से विकल्प से आ होने पर 'स्तस्य थ' (३-११) से स्त को थ होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से थ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व'(३-५१) से पूर्व थ को त होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२७६ पम्हो—

इसकी मूल प्रकृति 'पक्ष्मन्' है जिसका अर्थ नेत्र के पलकों के वाल है। 'ष्म पक्ष्म विस्मयेषुम्ह' (३-३२) से 'क्ष्म' को 'म्ह' होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से न् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२७७ परहुआ—

इसकी मूल प्रकृति परभृत है जिसका अर्थ कोयल है। 'उदृत्वादिषु' (१-९) इस सूत्र से भृ के ऋ को उ होने पर 'ख घ थ धभां ह' (२-२७) से भ को ह होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से त का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२७८ पलंघो—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रलम्घन' है जिसका अर्थ उलाघना है। सर्वप्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के द् का लोप होने पर 'यथि तद्वर्गान्त'

(४-१७) से लम के भ् को विन्दु होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) मे न कोण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

२७९ पलित्तं—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रदीप्तम्' है। सर्व प्रथम 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से द् का लोप होने पर 'प्रदीप्त कदम्ब दोहदेषु दो ल' (२-१२) इस सूत्र से द को ल होने पर 'सन्धावचामज् लोपविशेपा वहुलम्' (४-१) इस सूत्र से ई को इ होने पर 'उपरि लोप क ग डत दपपसाम्' (३-१) से प का लोप होने पर 'शेपादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त को द्वित्व होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२८० पल्लत्थ—

इसकी मूल प्रकृत 'पर्यस्तम्' है जिसका अर्थ चारो ओर है। सर्वप्रथम 'पयस्त पर्याण सौकुमार्येषुल' (३-२१) से र्य को ल होने पर 'शेपादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ल को द्वित्व होने पर 'स्तस्य थ' (३-१२) मे स्त को थ होने पर 'शेपादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे थ को भी द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व थ को त होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२८१ पल्लाणं—

इसकी मूल प्रकृति 'पयाणं' है। सर्वप्रथम 'पर्यस्तपर्याण सौकुमार्येषुल' (३-२१) मे र्य को ल होने पर 'शेपादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) मे ल को द्वित्व होने पर 'सोर्विन्दुर्न पुंसके' (५-३०) मे विन्दु होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

२८२ पसुत्तं, पासुत्तं—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रसुप्तम्' है जिसका अर्थ सोया हुआ है। सर्व प्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'आसमृद्धया दिषुवा' (१-२) से अ को विकल्प से आ होने पर प तथा पा हुआ फिर 'उपरिलोप कग ड त दप षसाम्' (३-१) से प का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे त् को द्वित्व होने पर, 'सो विन्दु र्न पुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२८३ पहरो, पहारो—

इनकी मूल प्रकृति 'प्रहर' है। सर्वप्रथम 'सर्वत्रलवराम्' (२-२) से र् का लोप होने पर 'अदातो यथा दिषुवा' (१-५०) से ह को विकल्प से हा होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

२८४ पहो—

इसकी मूल प्रकृति '**पथिन्**' है। सर्वप्रथम '**अन्त्य हलः**' (४-६) से अन्तिम न् का लोप होने पर '**अत् पथि हरिद्रा पृथिवीषु**' (१-१३) से इ को अ होने पर '**खघ थ घ भां हः**' (२-२७) से थ को ह होने पर '**अत ओत् सोः**'(५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

२८५ वावडणं, वाअवडणं—

इनकी मूल प्रकृति '**पाद पतनम्**' है जिसका अर्थ पैरो पर **गिरना है।** पाद+पतनम् इस रूप मे सर्वप्रथम '**पोव.**' (२-१५) इस सूत्र से पाद के **प को व** होने पर '**कग च ज तद पयवां प्रायो लोप**' (२-२) इस सूत्र से द् का लोप होने पर 'सन्धाव **चाम ज् लोप विशेषा बहुलम्**' (४-१) से अ का लोप होने पर '**वा**' रह जाता है। पतनम् के प को '**पोवः**' (२-१५) से व होने पर '**शव् लृ पत्योर्डः**' (२-५१) से त को ड हो गया और '**नोणः सर्वत्र**' (२-४२) से न को ण होने पर '**सोर्विन्दुर्न पुंसके**' (५-३०) से विन्दु होने पर '**वावडणं**' यह रूप वनता है। जिस पक्ष मे अ का लोप नही होता है वहा '**वाअवडण**' यह रूप वनता है।

२८६ पाउसो—

इसकी मूल प्रकृति '**प्रावृषः**' है जिसका अर्थ वर्षा है। सर्वप्रथम '**सर्वत्र-लवराम्**' (३-३) इस सूत्र से '**प्रा**' के र् तथा '**वृ**' के '**वृ**' का लोप होने पर '**उवृत्वादिषु**' (१-२९) से ऋ को उ होने पर '**विक् प्रावृषोः स.**' (४-११) **से ष्** को स् होने पर '**नसान्त प्रावृटशरदः पुंसि**' (४-१२) से इस को पुल्लिग होने पर '**अत ओत् सोः**' (५-१) से '**ओ**' होने पर यह रूप वनता है।

२८७ पाणाइन्तो—

इसकी मूल प्रकृति '**प्राणवत्**' है। सर्वप्रथम '**सर्वत्रलवराम्**' (३-३) से **र** का लोप होने पर '**सन्धाव चा मज् लोप विशेषा वहुलम्**' (४-१) से अच् कार्य (दीर्घ होने पर) '**आल्विल्लोल्लाल वन्तेता मतुप**' (४-२५) से वत् के स्थान पर '**इन्त**' होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से 'ओ' होने पर यह रूप वनता है।

२८८ पाणिअं—

इसकी मूल प्रकृति '**पानीयम्**' है जिसका अर्थ पीने के योग्य होता है। सर्व प्रथम '**इवीत पानीयादिषु** (१-१२) इस सूत्र से ई को इ होने पर '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न को ण् होने पर '**क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप**' (२-२) से य् का लोप होने पर '**सोर्विन्दुर्नपुंसके**' (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप वनता है।

२८९ पाराओ पारावओ—

इनकी मूल प्रकृति 'पारावत' है जिसका अर्थ कबूतर है। **'यावदादिषु वस्य'** (४-५) इस सूत्र से व का लोप विकल्प से होने पर **'पाराओ'** रूप वनता है इसमे व का लोप होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोपः'** (२-२) मे त् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर **'पाराओ'** रूप वनता है—पर जिस पक्ष मे व का लोप नहीं होता वहाँ **'पारावओ'** रूप वनता है।

२९० पिआ पिअरो—

इनकी मूल प्रकृति 'पितृ' है। सर्वप्रथम **'आच सौ'** (५-३५) इस सूत्र मे 'तृ' को 'आ' होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोपः'** इस सूत्र मे त् का लोप होने पर **'पिआ'** यह रूप वनता है। जहाँ 'आचसौ' (५-३५) मे **'अर'** हो जाता है वहा सव कार्य पूर्ववत् होते से **'पिअरो'** यह प्रयोग सिद्ध होता है।

२९१ पिक्कं—

इसकी मूल प्रकृति **'पक्वम्'** है जिसका अर्थ **'पका हुआ है।'** सर्वप्रथम **'इदीषत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाऽङ्गारेषु'** (१-३) इस सूत्र से इ होने पर **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) इस सूत्र से व् का लोप होने पर **'शेषादेशयो-द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से क् को द्वित्व होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप वनता है।

२९२ पुट्ठी—

इसकी मूल प्रकृति **'पृष्ठम्'** है जिसका अर्थ पीठ है। **सर्वप्रथम 'उदृत्वादिषु'** (१-२९) से ऋ को उ होने पर **'ष्टस्य ठ'** (३-१०) से ष्ट को ठ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ठ् को द्वित्व होने पर पूर्व ठ् को **'वर्गेषु युज पूर्वः'** (३-५१) से ट् होने पर **'पृष्ठाक्षि प्रश्ना स्त्रियां वा'** (४-२०) से स्त्रीलिंग होने पर **'स्त्रीत्वे ई'** इस नियम से ई होने पर पुट्ठी रूप वनता है।

२९३ पुडो, पुत्तो—

इनकी मूल प्रकृति **'पुत्र'** है। **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'पुत्रेऽपिक्वचित्'** (१२-५) से त को विकल्प से ड होने पर जिस पक्ष में ड होता है वहा **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर **'पुडो'** रूप वनता है और जिस पक्ष मे ड नही होता वहाँ **'सर्वत्रलवराम्'** (३-३)

से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर तथा 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर पुत्तो रूप बनता है।

२९४ पुप्फं—

इसकी मूल प्रकृति **पुष्पम्**' है। सर्वप्रथम '**ष्पस्य फ**' (३-३५) से ष्प को फ होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ**' (३-५०) से फ को द्वित्व होने पर '**वर्गेषुयुज पूर्व**' (३-५१) से पूर्व के फ् को प् होने पर '**सोर्विन्दुर्नपुसके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२९५ पुरिल्लं—

सस्कृत मे '**पौरस्त्य**' का जो अर्थ होता है वही अर्थ प्राकृत भाषाओ मे '**पुरिल्ल**' का होता है। पुरोभव = पुरिल्ल। इनमे पुरस् शब्द है। '**अन्त्यहल**' (४-६) से स् का लोप होने पर '**आल्विल्लो ल्लालवन्तेन्तामतुप**' (४-२५) से '**इल्ल**' आदेश होने पर तथा '**सोर्विन्दुर्नपुसके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२९६. पुव्वण्हो—

इसकी मूल प्रकृति '**पूर्वाह्न**' है। इसका अर्थ दिन का पूर्व भाग है। सर्वप्रथम '**सन्धा वचा म ज् लोप विशेषा वहुलम्**' (४-१) से पू को पु होकर '**सर्वत्रलवराम्**' (३-३) से र् का लोप होने पर तथा '**ह्न ह्ल ह्णेषु नलमां स्थिति रूर्ध्वम्** (३-८) से न् की स्थिति ह से पूर्व ऊपर हो करके '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न् को ण् होने पर '**ह्रस्व संयोगे**' (हेमचन्द्र) से वा को व होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ**' (३-५०) से व को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

२९७ पुहवी—

इसकी मूल प्रकृति '**पृथिवी**' है। सर्वप्रथम '**उदत्वादिषु**' (१-२९) से पृ को पु होने पर '**अत् पथि हरिद्रा पृथिवीषु**' (१-१३) से थि की इ को अ होने पर '**खघथधभां ह**' (२-२७) से ध को ह होने पर यह रूप बनता है।

२९८ पेट्ठं, पिट्ठं—

इनकी मूल प्रकृति '**पिष्टम्**' है। सर्वप्रथम '**इत् ऐत् पिण्ड समेषु**' (१-१२) से पि को पे होने पर '**ष्टस्यठ**' (३-१०) से ष्ट को ठ होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ**' (३-५०) से ठ को द्वित्व होने पर '**वर्गेषु युज पूर्व**' (३-५१) से पूर्व ठ् को ट् होने पर '**सोर्विन्दुर्नपुंसके**' (५-३०) से विन्दु होने पर पेट्ठ रूप बनता है पर जिस पक्ष में 'ए' नही होता वहा पिट्ठ रूप बनता है।

२९९ पेण्डं, पिण्डं—

ये दोनो रूप 'पिण्डम्' के होते हैं। 'इतएत् पिण्ड समेषु' (१-१२) से इ को ए होने पर यह रूप वनते हैं (विकल्प से इ को ए होता है)

३०० पेम्मं—

इसकी मूल प्रकृति 'प्रेमम्' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से म् को द्वित्व होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) विन्दु से( ) होने पर यह रूप वनता है।

३०१. पेरन्तं—

इसकी मूल प्रकृति पर्यन्तम्' है। सर्वप्रथम 'एशय्यादिषु' (१-५) से प के अ को ए होने पर 'तूर्य्य धैर्य सौन्दर्याश्चर्य 'पर्यन्तेषर'' (३-१८) से र्य को र होने पर 'सोर्बिन्दु र्नपुसके'(५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप वनता है।

३०२. पोक्खरो—

इसकी मूल प्रकृति 'पुष्कर है जिसका अर्थ तालाव है। सर्व प्रथम 'उत ओत् तुण्डरूपेषु'(१-२०)से 'प' को ओ होने पर 'ष्क स्कक्षां ख, (३-२९) से ष्क को ख होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'(३-५)से ख को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व ' (३-५१) से पूर्व ख को क् होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

३०३. पोत्थओ—

इसकी मूल प्रकृति 'पुस्तकम्' है। सर्वप्रथम 'अत ओत् तुण्ड रूपेषु' (१-२०) से पु को पो होने पर 'स्तस्यथ' (३-१२) से स्त को थ होने पर 'शेषा-देशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से थ् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व थ् को त् होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

३०४. फसो—

इसकी मूल प्रकृति 'स्पर्श ' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य' (३-३६) से स्प को फ होने 'वक्रादिषु' (४-१५) इस सूत्र से विन्दु ( ) होने हर 'शषोस ' (२-४३) से श को स होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

३०५. फणसो—

इसकी मूल प्रकृति 'पनस.' है जिसका अर्थ कटहल है। 'पनसेऽपि' (२-३७) से प को फ होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर 'फणसो' यह रूप होता है।

३०६. फंदणं—

इसकी मूल प्रकृति 'स्पन्दनम्' है जिसका अर्थ 'कुछ कुछ चलना' है। सर्व प्रथम 'स्पस्यसर्वत्र स्थितस्य' (३-३६) से स्प को फ होने पर 'नोणः सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३०७. फरिसो—

इसकी मूल प्रकृति 'स्पर्श' है सर्वप्रथम 'इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से युक्त वर्ण का विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होने पर तथा इ होने पर 'स्परिश' यह रूप होता है तब स्पस्य फ' (३-३५) से स्प को फ होने 'शषोः स.' (२-४३) से श को स होने पर 'अत ओत् सोः (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३०८. फलिअं—

सस्कृत में पट गतौ इस धातु से पटितम् यह रूप बनता है जिसका अर्थ चलना है। प्राकृत भाषा मे उसका रूप 'फलिअ' बनता है। सर्वप्रथम 'पटे फलः' (८-९) से पट के स्थान पर फल होने पर 'क्ते' (७-३२) से इ होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर सोर्विन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३०९. फलिहा—

इसकी मूल प्रकृति 'परिखा' है जिसका अर्थ परकोटा है। सर्वप्रथम हरिद्रादीनां रोल' (२-३०) से र को ल होने पर 'परुष परिघ परिखासु फ' (२-३६) से प को फ होने पर खघथधभा ह' (२-२७) से ख को ह होने पर 'फलिहा' सिद्ध होता है।

३१०. फरुसो—

इसकी मूल प्रकृति 'परुष' है जिसका अर्थ कठोर है। सर्वप्रथम 'परुष परिघ परिखासुः फ' (२-३६) से प को फ होने पर 'शषो' स' (२-५२) से ष् को स् होने पर 'अत् ओत सो.' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३११. फलिहो—

इसकी मूल प्रकृति 'परिघ' है जिसका अर्थ एक विशेष अस्त्र है। सर्व प्रथम 'परुष परिघ परिखासुफ' (२-३६) से प को फ होने पर हरिद्रादीनां रोल' (२-३०) से र को ल होने पर 'खघथधभां ह' (२-२७) से घ को ह होने पर 'अत ओत् सो (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३१२. फलिहो—

यह रूप 'स्फटिक' का भी बनता है जिसका अर्थ फिटकरी है। सर्वप्रथम उपरिलोप. कग डतदपषसाम्' (३-१) मे स् का लोप होने पर 'स्फटिकेल' (२-२२) से ट को ल होने पर 'स्फटिक निकषचिकुरेषु कस्य ह' (२-४) से क को ह होने पर 'अत ओत सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३१३. मअप्फई—

इमकी मूल प्रकृति 'वृहस्पति' है। मर्वप्रथम वृहस्पतौ वहोर्भ ओ' (४-३०) से 'व' तथा 'ह' को क्रमश भ अ होने पर ऋतोऽत्' (२-२७) इस सूत्र मे ऋ को अ होने पर स्पस्य फ (३-३५) से स्प को फ होने पर शेषादेशयो-द्वित्वमनादौ (३-५०) से फ को द्वित्व होने पर वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व फ को प् होने पर कगचज तद पयवां प्रायोलोप. (२-२) से त को लोप होने पर सुभिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'भअप्फई' यह रूप सिद्ध होता है।

३१४. भइरवो—

इसकी मूल प्रकृति 'भैरव' है जिसका अर्थ भयानक है। सर्वप्रथम 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अ इ होने पर अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'भइरवो' यह रूप बनता है।

३१५. भत्तं

इसकी मूल प्रकृति 'भक्तम्' है मर्व प्रथम 'उपरिलोप कगडतदप षसाम्' (३-१) से क् का लोप होने पर शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त को द्वित्व होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु (ं) होने पर 'भत्तं' बनता है।

३१६. भत्तारो

सस्कृत मे भर्तृ मे 'भर्ता' रूप बनता है जिसका अर्थ स्वामी या पालक होता है उमी भर्ता का प्राकृत मे 'भत्तारो' प्रयोग होता है। 'ऋतआर सुपि' (५-३१) से 'आर्' होने पर 'सर्वत्रलवराम्' से (३-३) से र् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर यह रूप बनता है। इसमे शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व भी होता है।

३१७. भद्दं

इसकी मूल प्रकृति 'भद्रम्' है। सर्वप्रथम 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर 'मोबिन्दु.' (४-१२) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३१८ भमिरो—

सस्कृत मे शील या स्वभाव अर्थ मे तृ न् प्रत्यय लगता है उसी अर्थ मे 'भ्रमणशील' सस्कृत मे प्रयुक्त होता है पर प्राकृत भाषा मे घुमक्कड या घूमने वाले को 'भमिरो' कहते है। इसमे 'तृण इर शीले' (४-२४) से इर हो जाता है और 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। कुछ लोगो के मत मे 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'भमिरो' रूप भी बनता है।

३१९ भरणिज्जं भरणीअं—

इनकी मूल प्रकृति 'भरणीयम्' है जिसका अर्थ भरण-पोषण करने योग्य होता है। इसमे 'उत्तरीयानीययो र्ज्जोवा' (२-१७) से य के स्थान पर विकल्प से ज्ज होता है। जिस पक्ष मे ज्ज होता है वहा ह्रस्व संयोगे (हेमचन्द्र) के अनुसार ई का इ हो जाता है और 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'भरणिज्ज' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे ज्ज नहीं होता वहा कगचज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'भरणीअ' रूप बनता है।

३२० भरहो—

इसकी मूल प्रकृति 'भरत' है। 'वसतिभरतयोर्हः' (२-९) इस सूत्र से त को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३२१ भाणं, भाअणं—

इनकी मूल प्रकृति 'भाजनम्' है जिसका अर्थ पात्र है। भाणं मे 'भाजनेजस्य' (४-४) से स्वर सहित ज का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण् होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'भाण' बनता है। जिस पक्ष मे ज का स्वर सहित उपर्युक्त सूत्र से लोप नही होता वहाँ 'क ग च ज तद पयवा प्रायालोप' (२-२) इस सूत्र मे ज् का लोप होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होने पर 'भाअण' यह रूप होता है।

३२२ भाआ, भाअरो—

ये दोनो रूप 'भ्राता' से बनते हैं। मूल शब्द भ्रातृ है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से 'भ्रा' के र् का लोप होने पर 'आच सौ' (५-३५) से तृ को ता होने पर 'कगचज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'भाआ' यह रूप बनता है। 'आच सौ' (५-३५) इस सूत्र से आ भी होता

है और अर भी होता है। 'भामरो' मे और सव काम पूर्ववत् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३२३ मारिआ—

इसकी मूल प्रकृति 'मार्या' है जिसका अर्थ स्त्री है। 'यंस्यरिअ' (१०-८) इस सूत्र से र्य को रि अ होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर यह प्रयोग वनता है।

३२४ मिगारो—

इसकी मूल प्रकृति 'भुङ्गार' है जिसका अर्थ 'सोने का बरतन' है। 'इ वृष्यादिषु' (१-३८) इस सूत्र से 'भृ' को 'इ' होने पर 'ययि तद्वर्गान्त' (४-१७) से वर्गान्त विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) 'ओ' होने पर यह रूप वनता है।

३२५ मिगो—

इसकी मूल प्रकृति 'भङ्ग' है जिसका अर्थ 'भौंरा' है। 'इ वृष्यादिषु' (१-२८) इस सूत्र से 'भृ' के ऋ को इ होने पर 'ययितद्वर्गान्तः' (४१७) इस सूत्र से विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होने पर यह रूप वनता है।

३२६ मिन्डिवालो—

इसकी मूल प्रकृति 'भिन्दिपाल' है जिसका अर्थ पत्थर का बना अस्त्र विशेष है। सर्वप्रथम 'भिन्दिपालेण्ड' (३-४६) से 'न्द' के स्थान पर 'ण्ड' होने पर 'पोव' (२-१५) से प् को व् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होने पर यह रूप वनता है।

३२७ विब्भलो, विहलो, भिब्भलो—

इन की मूल प्रकृति 'विह्वल' है जिसका अर्थ व्याकुल है। सर्वप्रथम 'विह्वले' भ ह्रौ वा' (३-४७) से 'ह्व' को विकल्प से भ तथा ह होते हैं। जिस पक्ष मे भ हुआ वहाँ भ को 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-१५) से द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से भ को व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'विब्भलो' यह रूप वनता है पर जिस पक्ष में ह होता है वहा 'विहलो' वनता है। 'नरहो' (३-५४) से ह को द्वित्व नहीं होता। हेमचन्द्र के अनुसार 'भिब्भलो' भी रूप वनता है। 'वा विह्वले वौ वश्च' (हेमचन्द्र) इस सूत्र से ह्व को विकल्प से भ होता है और जहाँ भ होता है वहा प्रथम व को भी भ हो जाता है।

३२८. भिसिणी—

इसकी मूल प्रकृति **'विसिनी'** है । सर्वप्रथम **'विसिन्यां भ.'** (२-३८) इस सूत्र से व को भ होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) से न् को ण होने पर यह रूप बनता है । इसका अर्थ कमलिनी है ।

३२९. भुत्तं—

इसकी मूल प्रकृति **'भुक्तम्'** है जिसका अर्थ खा लिया है । सर्वप्रथम **'उपरिलोप क ग ड तदपषाम्'** (३-१) से क् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्दित्व मनादौ'** (३-५०) से त् को द्वित्वे होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है ।

३३०. मअं—

इसकी मूल प्रकृति **'मृतम्'** है । ऋतोऽत् (१-२०) से मृ को म होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) से त् का लोप होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह प्रयोग बनता है ।

३३१. मइलं मलिणं—

इसकी मूल प्रकृति **'मलिन'** है । सर्वप्रथम **'मलिनेलिनोरिलोवा'** (४-३१) से लि को इ तथा न को ल होते हैं पर विकल्प से होते हैं । जिस पक्ष मे ये दोनो आदेश हो जाते हैं वहाँ **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'मइल'** रूप बनता है और जिस पक्ष मे ये दोनो आदेश नहीं होते वहां **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) ने न को ण होने पर पूर्ववत् विन्दु होने पर **'मलिण'** यह रूप बनता है ।

३३२. मउडं—

इसकी मूल प्रकृति **'मुकुटम्'** है । **'अन्मुकुटादिषु'** (१-२२) से मु को म होकर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) से क् का लोप होने पर **'टोड'** (२-२०) से ट् को ड होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है ।

३३३. मउल—

इसकी मूल प्रकृति **'मुकुल'** है जिसका अर्थ कली है । **'सर्वप्रथम'** **'अन्मुकुटादिषु'** (१-२२) से मु को म होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप'** (२-२) से क का लोप होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है ।

३३४ मोरो, मऊरो—

इनकी मूल प्रकृति 'मयूर' है। सर्वप्रथम 'मयूर मयूखयोर्व्वा वा' (१-८) से मयूर के यू के साथ अ को विकल्प से ओ होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'मोरो' रूप बनता है। जिस पक्ष मे ओ नहीं होता वहाँ 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'मऊरो' यह रूप सिद्ध होता है।

३३५. मोहो, म ऊ हो—

इनकी मूल प्रकृति 'मयूख' है जिसका अर्थ किरण है। सर्वप्रथम 'मयूर मयूखयोर्व्वावा' (१-८) से यू के साथ म के अ को ओ होने पर 'खघथधभां ह' (२-२७) से ख को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर मोहो रूप बनता है। जिस पक्ष मे ओ नही होता वहा 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप' (२-२) से य का लोप होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होने पर यह रूप बनता है।

३३६ म ओ—

इसकी मूल प्रकृति 'मद' है। सर्वप्रथम 'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द का लोप होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३३७. मंसं मासं—

इसकी मूल प्रकृति 'मासम्' है। 'मासाविषवा' (४-१६) से विकल्प से विन्दु होने पर सन्धाव चा मज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से छोटा अ विकल्प से होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

३३८ मंसू—

इसकी मूल प्रकृति 'श्मश्रू' है जिसका अर्थ 'दाढी' है। सर्वप्रथम श्मश्रू-श्मशानयोरादे' (३-६) से श् का लोप होने पर 'शषोस' (२-४३) से श् को स होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) मे र् का लोप होने पर 'वक्रादिषु' (४-१५) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३३९. मग्गो—

इसकी मूल प्रकृति 'मार्ग' है जिसका अर्थ रास्ता है। सर्वप्रथम 'सन्धाव-चामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से मा को म होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ग को द्वित्व होने पर "अत ओत् सो '(५-१)से ओ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३४०. मच्छिआ

इसकी मूल प्रकृति ''**मक्षिका**' है। सर्वप्रथम '**अक्ष्यादिषुच्छः**' (३-३०) से क्ष को छ होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर '**वर्गेषु युज पूर्वं.**' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर '**कगचजतद पयवा प्रायो लोपः**' (२-२) से क का लोप होने पर यह रूप बनता है।

३४१ मज्झण्णो

इसकी मूल प्रकृति '**मध्यान्ह**' है जिसका अर्थ दोपहर है सर्वप्रथम '**मध्यान्हे हृस्य**' (३-७) से ह् का लोप होने पर '**ध्यह्योर्झः**' (३-२८) से ध्य को झ होने पर '**शेषा देशयो द्वित्व मनादौ**' (३-५०) से झ को द्वित्व होने पर '**वर्गेषु युज· पूर्वं**' (३-५१) से पूर्व झ को ज् होने पर '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न् को ण होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) से ण को द्वित्व होने पर '**अत ओत् सो·**' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३४२ मज्झं

इसकी मूल प्रकृति '**मध्यम्**' है जिसका अर्थ '**बीच**' होता है। सर्वप्रथम '**ध्यह्योर्झ**' (३-२८) से ध्य को झ होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) से झ को द्वित्व होने पर **वर्गेषु युज पूर्वं**' (३-५१) पूर्व झ को ज् होने पर '**सोर्विन्दुर्नपु सके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३४३ मअं

इसकी मूल प्रकृति '**मृतम्**' है। सर्वप्रथम मृ के ऋ को '**ऋतोऽत**' (१-२७) से 'अ' होने पर **कगचजतद पयवां प्रायो लोप.**' (२-२) से त् का लोप होने पर '**सोर्विन्दुर्नपु सके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३४४ मढं

इसकी मूल प्रकृति '**मठ**' है। '**ठोढ**' (२-२४) से ठ को ढ होने पर '**सोर्विन्दुर्नपु सके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३४५ मणसिणी, माणसिणी

इनकी प्रकृति '**मनस्विनी**' है। '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से दोनो 'न' को ण होने पर '**सर्वत्रलवराम्**' (३-३) से व का लोप होने पर '**वक्रादिषु**' (४-१५) से विन्दु ( ) होने पर '**आ समृध्यादिषु**' (१-२) से विकल्प से '**आ**' होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

३४६ मणोज्जा

इसकी मूल प्रकृति 'मनोज्ञा' है। 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) मे न को ण होने पर 'सर्वज्ञतुल्येषुञ' (३-५) से ञ की ध्वनि का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ज को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

३४७ मन्डूरो

सस्कृत मे 'मण्डूक' मेढक को कहते हैं। प्राकृतिक भाषाओं मे उनी अर्थ मे 'मण्डूरो' प्रयुक्त होता है। 'शाढादयो बहुलम्' (४-३३) के अनुसार यह शब्द निपात के रूप मे प्रयुक्त होता है।

३४८ मंथं

इसकी सस्कृत की प्रकृति 'मुस्तम्' है सर्वप्रथम 'अन्मुकुटादिषु' (१-२२) से मु को म होता है और 'स्तस्यथ' (३-१२) से स्त को थ होने पर 'वक्रादिषु' (४-१५) से म के ऊपर विन्दु होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से अन्त मे विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३४९ वम्महो

इसकी मूल प्रकृति 'मन्मथ' है जिसका अर्थ कामदेव है। सर्वप्रथम 'मन्मथे व' (२-३९) से प्रथम म को व होने पर 'न्मोमः' (३-४३) से न्म को म होने पर 'शेषादेशयो' द्वित्वमनादौ' (३-५०) से म को द्वित्व होने पर 'खघथधभांह.' (२-२७) से ख को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

३५० मसाणं

इसकी मूल प्रकृति 'श्मशानम्' है। सर्वप्रथम 'श्मश्रुश्मशानयोरादे' (३-६) से आदि श् का लोप होने पर 'शषो स' (२-४३) से श को स् होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

३५१ महुअं

इसकी मूल प्रकृति 'मधूकम्' है सर्वप्रथम 'उदूतो मधूके' (१-२४) से ऊ को उ होने पर 'खघथधभा ह' (२-२७) से ध को ह होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप (२-२) से क् का लोप होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३५२ महुं

इसकी प्रकृति 'मधु' है। 'खघथधभां ह' (२-२७) से ध को ह होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है। 'सुभिस्सुप्सु-

दीर्घ' (५-१८) से हु को दीर्घ प्राप्त था पर 'न नपुंसके' (५-२५) से दीर्घ नही होता है।

३५३. माअन्दो, मइन्दो—

इसकी मूल प्रकृति '**माकन्द**' है। '**क ग च ज तद पयवां प्रायलोप**' (२-२) से क का लोप होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। मइन्दो यह रूप निपात् होता है।

३५४ माआ—

इसकी मूल प्रकृति '**मातृ**' है। '**मातुरात्**' (५-३२) से तृ की ऋ को आ होने पर '**क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप**' (२-२) से त् का लोप होने पर '**माआ**' बनता है।

३५५ माणुसो—

इसकी प्रकृति '**मनुष्य**' है। सर्वप्रथम '**सन्धावचाम ण् लोप विशेषा बहुलम्**' (४-१) से दीर्घ होने पर '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न को ण होने पर '**शषोस**' (२-४३) से ष् को स होने पर '**क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप**' (२-२) से य का लोप होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से '**ओ**' हो कर यह रूप बनता है।

३५६. मिअंको—

इसकी मूल प्रकृति '**मृगाङ्क**' है जिसका अर्थ चन्द्रमा है। सर्वप्रथम '**इदृष्यादिषु**' (१-२८) से ऋ को इ होने पर मि हुआ तब '**सन्धावचामज्लोप विशेषाबहुलम**' (४-१) से आ को छोटा अ होने पर '**क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप**' (२-२) से ग् का लोप होने पर '**ययितद्वर्गान्त** (४-१७) से ङ् को बिन्दु होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) मे ओ होने पर यह रूप बनता है।

३५७. मित्तो, मिओ—

इनकी मूल प्रकृति '**मित्रम्**' है। '**सर्वत्रलवराम्**' (३-३) से र का लोप होने पर '**सेवादिषु च**' (३-५८) से त् को द्वित्व होने पर '**अत ओत् सो** (५-१) से ओ होने पर '**मित्तो**' बनता है पर जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा पूर्ववत् र का लोप होने पर '**उपरिलोप क ग ड त द पर्षसाम्**' (३-१) से त् का लोप होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से ओ होने पर '**मिओ**' यह रूप बनता है।

३५८. मिच्छा—

इसकी मूल प्रकृति 'मिथ्या' है। 'त्य थ्य ध्य च छ जा' (३-२७) से थ्य को छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर, 'वर्गेषु युज- पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ को च होने पर 'मिच्छा' बनता है।

३५९. मिलाणं—

इसकी मूल प्रकृति 'म्लानम्' है। सर्वप्रथम 'इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न-स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से संयुक्त म्ल का विप्रकर्ष हो जाता है (स्वरभक्ति) और इकार होने पर तत्स्वरता भी होती है अत 'मिलानम्' बनता है तब 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सो बिन्दुर्नपुंसके' (५-३) से बिन्दु पर यह रूप बनता है।

३६०. मिइंगो—

इसकी मूल प्रकृति 'मृदङ्ग' है। इसका अर्थ एक विशेष प्रकार का बाजा है। सर्व प्रथम 'इदीषत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गा ङ्गारेषु' (१-३) से द के अ को इ होने पर 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से मृ की ऋ को इ होने पर यथि तद् वर्गान्त' (४-१७) से ङ् को बिन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होकर यह प्रयोग बनता है।

३६१. मुक्खं—

इसकी मूल प्रकृति 'मुष्कः' है जिसका अर्थ 'वृषण' या 'अन्डकोष' है सर्व प्रथम 'ष्क स्कक्षां ख' (३-२९) से ष्क के स्थान पर ख होने पर 'शेषा देशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ख को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व ख को क् होने पर 'सो बिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३६२ मुग्गा—

इसकी मूल प्रकृति 'मुष्क' है जिसका अर्थ मूग की दाल है। सर्व प्रथम 'उपरि लोप क ग ड त द प षसाम्' (३-१) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ग को द्वित्व होने 'जश् शस् ङस्यां सुदीर्घ' (५-११) से दीर्घ होने पर 'जस् शसोर्लोप' (५-२) से जस् का लोप होने पर यह रूप बनता है।

३६३ मुग्गरो—

इसकी मूल प्रकृति 'मुद्गरः' है। सर्व प्रथम 'उपरि लोपः क ग ड त द पषसाम' (३-१) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ग् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

३६४ मुच्छा—

इसकी मूल प्रकृति 'मूर्छा' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप पर 'सन्धावचामज् लोपविशेषा बहुलम्' (४-१) से 'मू' को ह्रस्व होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३०-५०) से छ को द्वित्व होने 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ् को च् होने पर यह रूप बनता है।

३६५ मुञ्जाअणो—

इसकी मूल प्रकृति 'मौञ्जायनः' है सर्वप्रथम 'उत्सौन्दर्यादिषु' (१-४३) से औ को उ होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'नोणः सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होकर यह रूप बना है।

३६६ मुणालो—

इसकी मूल प्रकृति 'मृनाल' है। सर्व प्रथम 'उदृत्वादिषु' (१-२९) से मृ को मु होने हर नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ हो जाने पर यह रूप बनता है।

३६७ मुत्ती—

इसकी मूल प्रकृति मूर्त्तिः' है। मर्व प्रथम सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) मे ऊ को उ होने पर 'मुत्ति' ऐसा रूप बना, तब 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१२) से दीर्घ होने पर यह रूप बनता है।

३६८ मुद्धो—

इनकी मूल प्रकृति 'मुग्घ' है। सर्व प्रथम 'उपरि लोप क ग ड त द पषसाम्' (३-१) से ग् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से घ् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व घ् को द् होने पर 'अत ओत् सो' (५-५) से ओ होकर यह रूप बनता है।

३६९. मुहं—

इसकी मूल प्रकृति 'मुखम्' है। 'खघथध मा ह' (२-२७) से ख को ह होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३७० मुहलो—

इसकी मूल प्रकृति 'मुखर.' है जिसका अर्थ वाचाल या वहुत वोलने वाला है। सर्व प्रथम 'खघथधनां ह' (२-२७) से ख को ह होने पर 'हरिद्रादीनां रोल' (२-३०) से र को ल होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर वह रूप वनता है।

३७१ मूढत्तणं—

इमकी मूल प्रकृति 'मूढत्वम्' है। 'तल् त्वयोर्दात्तणौ' (४-२२) से त्व के स्थान पर 'त्तण' होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'मूढत्तण' यह वनता है। हेमचन्द्र के अनुसार अपभ्रंश मे 'मूढप्पण' यह वनता है क्योकि 'त्वतलो प्पण' इस सूत्र से 'प्पण.' वह आदेश होता है।

३७२ मूढदा—

इसकी मूल प्रकृति 'मूढता' है। मूढता मे भी तल् प्रत्यय है प्राकृत मे तल्त्वयोर्दात्तणौ' (४-२२) से तल् के स्थान पर दा हो जाने पर यह रूप वनता है।

३७३ मेहला—

इसकी मूल प्रकृति 'मेखला' है जिसका अर्थ करधनी या मौञ्जी है। 'खघथधमा ह' (२-२७) से ख को ह होने पर यह रूप वनता है।

३७४ मेहो, मेखो—

इनकी मूल प्रकृति मेघ है। प्राकृत भाषाओ मे पैशाची को छोडकर इसका रूप मेहो वनता है। 'खघथध मां ह' (२-२७) से घ को ह होने पर 'अतओत्सो' (५-१) से ओ होता है। पर पैशाची मे मेखो वनता है। वहा 'वर्गाणां तृतीय चतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ' (१०-२) से वर्गो के तीसरे और चौथे के स्थान पर पहले तथा दूसरे वर्ण होते हैं अत चौथे घ के स्थान पर दूसरा ख होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वना।

३७५. मोत्ता—

इसकी मूल प्रकृति 'मुक्ता' है। 'उत ओत् तुण्ड रूपेषु' (१-२०) से मु के उ को ओ होने पर मो वना तव 'कगचजतदपयवा प्रायोलोप' (२-२) से

क् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर मोत्ता रूप सिद्ध होता है।

३७६. रअणं—

इसकी मूल प्रकृति **'रटनम्'** है। **'क्लिष्टश्लिष्टरत्नक्रियाशार्ङ्गेषु तत्स्वर वत्पूर्वस्य'** (३-६०) से ट को त विप्रकर्ष हो जाता है और **'उपरिलोप कगडत दपषसाम्'** (३-१) से त का लोप होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) से न् को ण होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३७७. रअद—

इसकी मूल प्रकृति **'रजतम्'** है। जिसका अर्थ चादी है। सर्वप्रथम **'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप'** (२-२) से ज् का लोप होने पर **'ऋत्वादिषु तोद'** (२-७) से त को द होने पर **'सोर्विन्दुर्नपु सके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'रअद'** वनता है।

३७८ रच्छा—

इसकी मूल प्रकृति **'रथ्या'** है। जिसका अर्थ सडक या मार्ग है। सर्वप्रथम **'त्यथ्यद्यांचछजा'** (३-२७) से थ्य को छ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) से पूर्व छ को द्वित्व होने से च् होने पर यह प्रयोग वनता है।

३७९ रण्णं —

इसकी मूल प्रकृति **'अरण्यम्'** है जिसका अर्थ जङ्गल है। **'लोपोऽरण्ये'** (१-४) से अ का लोप होने पर **''अधो मनयाम्'** (३-२) से य का भी लोप हो जाता है और **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ण को द्वित्व होने पर **'सोर्विन्दुर्नपु सके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३८० रण्णो—

इसकी मूल प्रकृति **'राज्ञ'** है। राजन् शब्द की षष्ठी के एक वचन मे यह रूप वनता है। **'जश्शस्ङसाणो'** (५-३८) से ङस् के स्थान पर ण हो जाता है। **'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप'** (२-२) से ज् का लोप होता है य का लोप भी इसी सूत्र से होता है **'ङसश्चद्वित्ववान्त्यलोपश्च'** (५-४२) से ण को द्वित्व होता है और अन्त्य अ का लोप भी होता है रा के आ को छोटा अ **'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्'** (४-१) से होता है और ह्रस्व सयोगे (हेमचन्द्र) से ह्रस्व हो जाता है।

३८१ रत्तं—

इसकी प्रकृति 'रक्तम्' है जिसका अर्थ खून है। 'क्तेन दिण्णादय' (८-६२) से यह शब्द 'रञ्जि' धातु से निपात के रूप मे प्रयुक्त होता है।

३८२. रत्ती, राई—

इनकी मूल प्रकृति 'रात्रि' है। 'सन्धावचामज् लोपविशेषा बहुलम्' (४-१) से रा को ह्रस्व होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से त्रि के र् का लोप होने पर 'सेवादिषुच' (३-५८) से त् को विकल्प से द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ (५-१८) मे दीर्घ होने पर 'रत्ती' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा ह्रस्व भी नही होता उस पक्ष मे 'सर्वत्र लवराम' (३-३) से र् का लोप होने पर 'उपरिलोप. क ग ड त द प षसाम्' (३-१) से त् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ.' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'राई' प्रयोग बनता है।

३८३ रमणिज्जं, रमणीअं

इनकी मूल प्रकृति 'रमणीयम्' है। सर्वप्रथम 'उत्तरीया -नीययोर्ज्जोवा' (२-१७) से विकल्प मे य को ज्ज होने पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषा' 'बहुलम' (४-१) से ह्रस्व सयोगे के अनुसार ह्रास्व होने पर रमणिज्ज रूप बनता है 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु भी होता है। पर जिस पक्ष मे ज्ज नही होता वहाँ सयोग न होने से ह्रस्व भी नही होता और 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप. (२-२) से य् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' से विन्दु होने पर 'रमणीअ' रूप बनता है।

३८४. रस्सी—

इसकी मूल प्रकृति 'रश्मि' है जिसका अर्थ किरण है। सर्वप्रथम 'अधोमनयाम्' (३-२) से म का लोप होने पर 'शषो स' (२-४३) से श् का स् होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे स् को द्वित्व होने पर 'सुभिम्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) मे दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३८५ राउलं, राअउलं—

इन दोनो की मूल प्रकृति 'राजकुलम्' है सर्वप्रथम 'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से क का लोप होने पर और इसी से ज् का भी लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) मे विकल्प से अ का भी लोप होने पर राउलं तथा राअउलं ये दो रूप बनते हैं।

३८६. राआ—

इसकी प्रकृति 'राजन्' है। 'राज्ञश्च' (५-३६) से 'जन्' के स्थान पर आ होने पर यह रूप बनता है।

३८७ राआणो—

राजन् शब्द से प्रथमा के बहुवचन मे जस् प्रत्यय मे यह रूप बनता है। राजन्+जस् इस अवस्था मे जस् के स्थान पर 'जस्शङसांणो' (५-३८) से णो होने पर 'अन्त्यहल॰' (४-६) से न् का लोप होने पर **क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप॰'** (२-२) से ज् का लोप पोने पर 'आ णो णमोरङसि' (५-४४) से आ होने पर राआणो यह रूप बनता है।

३८८. राचिना, रञ्जा—

पैशाची प्राकृत मे राजन् शब्द की तृतीया के एक वचन मे टा प्रत्यय के परे ये दो रूप बनते हैं। राजन्+टा इस अवस्था मे **'राज्ञोराचिटाङसिङस्ङिषुवा'** (१०-१२) से 'राचि' विकल्प से होने पर 'टाणा' (५-४१) से टा को णा होने पर 'णोन' (१०-५) से ण को न होने पर 'अन्त्य हलः' (४-६) से न् का लोप होने पर 'राचिना' प्रयोग बनता है। जिस पक्ष मे राचि नही होता वहा 'राज्ञा' इस प्रयोग मे 'ज्ञस्यञ्ज' (१०-९) से ञ्ज होने पर 'ह्रस्वः सयोगे' (हेमचन्द्र) से ह्रस्व होने पर 'रञ्जा' रूप बनता है।

३८९ रासहो—

इसकी मूल प्रकृति 'रासभ' है जिसका अर्थ 'गधा' है। 'खघथधभा' ह' (२-२७) से भ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३९०. राहा—

यह शब्द 'राधा' से बना है इसमे भी 'खघथधभां ह' (२-२७) से ध को ह होने पर 'राहा' बनता है।

३९१ रिणं—

यह प्रयोग 'ऋणम्' से बना है। 'ऋरीति' (१-३०) से ऋ को रि होने पर 'सोर्बिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) मे बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

३९२ रिद्धो—

इसकी मूल प्रकृति 'ऋद्ध' है जिसका अर्थ धन सम्पन्न है। इसमे भी 'ऋरीति' (१-३०) से ऋ को रि होने पर 'उपरिलोप' क ग ड तद प षसाम्' (३-१) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ध को

द्वित्व होने पर वर्गेषुयुज पूर्वं' (३-५१) से पूर्वं घ को द् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'रिद्धो' यह प्रयोग वनता है।

३९३ रिच्छो—

इसकी मूल प्रकृति 'ऋक्ष' है जिसका अर्थ रीछ या भालू है। सर्वप्रथम 'ऋरीति' (१-३०) से ऋ को रि होने पर 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) से क्ष के स्थान पर छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर वर्गेषु युज पूर्वं' (३-५१) से पूर्वं छ को च् होने पर अत अत् सो' (५-१) से ओ होकर यह रूप वना है।

३९४ रुक्खो—

इसकी मूल प्रकृति 'वृक्ष' है जिसका अर्थ पेड है। 'वृक्षे वेन रूर्वा' (१-३२) से वृ को रु होने पर 'ष्कस्कक्षा ख' (३-३९) मे क्ष को ख होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ख को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज' पूर्वं (३-५०) से पूर्वं ख को क् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर वह प्रयोग वनता है।

३९५ रूण्णं—

यह प्रयोग सस्कृत के 'रुदितम्' के रूप मे नि पतित है 'क्तेन दिण्णादय (८-६२) से यह क्त प्रत्यय के योग मे निपात् रूप मे प्रयुक्त है।

३९६ रूद्दो—

इसकी मूल प्रकृति 'रुद्र' है। 'द्रे रो वा' (३-४) से द्र के र् का विकल्प से लोप होता है। लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से द को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

३९७ रूप्पं—

इसकी मूल प्रकृति 'रूक्म' है इसका अर्थ सोना भी है और एक राजा का नाम भी था। 'क्मस्य' (३-४९) से कम के स्थान पर प हो जाता है और 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से प को द्वित्व होने पर सोर्विन्दुर्न पुंसके (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

३९८ रूप्पिणी—

इसकी मूल प्रकृति 'रुक्मिणी' है। इसमे भी 'क्मस्य' (३-४९) से क्म के स्थान पर प होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से प को द्वित्व होने पर यह प्रयोग वना है।

३९९. लच्छी—

इसकी मूल प्रकृति **'लक्ष्मी'** है। **'अक्ष्यादिषुच्छ'** (३-३०) से क्ष के स्थान पर छ होने पर **'अधोमनयाम्'** (३-२) से म् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषुयुज पूर्वं'** (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर यह प्रयोग वनता।

४००. लट्ठी—

इसकी मूल प्रकृति **'यष्टि'** है जिसका अर्थ लाठी है। **'यष्ट्या लः'**(२-३२) से य को ल होने पर **'ष्टस्यठ'** (३-१०) से **'ष्ट'** के स्थान पर **'ठ'** होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ठ को द्विन्व हुआ और **'वर्गेषुयुज पूर्वं'** (३-५१) से पूर्व ठ को ट् होने पर **'सुभिस्सुप्सु दीर्घं'** (५-१८) से दीर्घ होने पर लट्ठी प्रयोग बनता है।

४०१. लस्कशे—

इसकी मूल प्रकृति **'राक्षस'** है। **'क्षस्य स्क'** (११-८) से क्ष के स्थान पर स्क होता है और **'रसोर्लशौ'** (हेमचन्द्र) के अनुसार र का ल हो जाता है। **ह्रस्व संयोगे'** (हेमचन्द्र) से रा को ह्रस्व भी होता है। **'षसोश'** (११-३) से स को श होने पर **'अ त इ दे तौ लुक्च्'** (११-१०) से ए होने पर लस्कशे प्रयोग वनता है।

४०२. लहुई—

इसकी मूल प्रकृति **'लद्र्वी'** है जिसका अर्थ छोटी है। सर्वप्रथम **'उपद्मतन्वी समेषु'** (३-६५) से सयुक्त घ् को विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होकर उ भी इसी सूत्र से होता है। **'खघथधभा ह'** (२-२७) से घ का ह होने पर **'क ग च ज त द प य वां प्रायो लोप'** (२-२) से व् का लोप होने पर **'लहुई'** यह प्रयोग वना है।

४०३. लाआ—

हेमचन्द्र के अनुसार राजा का रूप लाआ वनता है। इसमे **'रसोर्लशौ'** (हेमचन्द्र) से र को ल होने पर **'क ग च ज त द प य वां प्रायो लोप'** (२-२) से ज का लोप होने पर **'लाओ'** वनता है।

४०४. लिच्छा—

इसकी मूल प्रकृति **'लिप्सा'** है जिसका अर्थ चाह या अभिलापा है। सर्व प्रथम **'श्चत्मप्सांछ'** (३-४०) से प्स को छ होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व**

मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व ' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर यह प्रयोग बनता है।

४०५ लुद्धओ, लोद्धओ—

इनकी मूल प्रकृति 'लुब्धक ' है जिसका अर्थ लालची है। सर्वप्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (२-३) से व् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व ' (३-५१) से पूर्व घ् को द् होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप ' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है। 'उतओत् तुण्ड रूपेषु' (१-२०) से विकल्प से ओ होने पर लोद्धओ बनता है।

४०६. लोणं—

इसकी मूल प्रकृति 'लवणम्' है। 'लवणनव मल्लिकयोर्वेन' (१-७) से व को ओ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

४०७. वअणं—

यह 'वचनम्' से बना है। 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप ' (२-२) से च् का लोप होने पर नोण सर्वत्र (२-४२) से न को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

४०८. विउलं—

इसकी प्रकृति 'विपुल' है। 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप " (२-२) से प् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

४०९. वइदेसो—

इसकी मूल प्रकृति 'वैदेश ' है। इसमें भी 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'शषो स ' (२-४३) से श को स होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४१०. वइदेहो—

इसकी मूल प्रकृति 'वैदेहः' है। इसमे भी 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४११. वइरं—

इसकी प्रकृति 'वैरम्' है। 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

४१२. वइसाहो—

इसकी मूल प्रकृति 'वैशाखः' है। सर्वप्रथम 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'खघथधभां ह' (२-२७) ख को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४१३. वइसिओ—

इसकी मूल प्रकृति 'वैशिक' है जिसका अर्थ वेश धारण करने वाला है। 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायोलोप' (२-२) मे क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

४१४ वइसंपाइणो—

इसकी मूल प्रकृति 'वैशम्पायन' है। सर्वप्रथम 'वैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अइ होने पर 'शषो स' (२-४३) से श् को स होने पर 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) से शम् के म् को विन्दु होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४१५ वक्कलं –

इसकी मूल प्रकृति 'वल्कलम्' है जिसका अर्थ छाल है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से ल का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से क को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

४१६ विक्कवो—

इसकी मूल प्रकृति 'विक्लव' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से ल का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से क को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

४१७ वग्गी—

इसकी मूल प्रकृति 'वाग्मी' है। जिसका अर्थ विद्वान् या बोलने मे चतुर है। सर्वप्रथम 'अधोमनयाम्' (३-२) से म् का लोप होने पर 'सन्धा वचामज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) के वा के आ को अ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व-मनादौ' (३-५०) मे ग् को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

४१८. वकं—

इसकी मूल प्रकृति 'वक्रम्' है जिसका अर्थ टेढा है। सर्वप्रथम 'सर्वत्र-लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'वक्रादिषु' (४-१५) से व के ऊपर

विन्दु होने पर 'सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु ( ) होने पर यह प्रयोग वना है।

४१९. वच्छा—

सस्कृत मे वृक्ष शब्द का कर्ताकारक वहुवचन मे (वृक्ष+जस्) मे वृक्षा रूप वनता है। प्राकृत मे उसी का वच्छा रूप होता है। सर्वप्रथम 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर व हुआ तव 'क्षमावृक्ष क्षणेषुवा' (३-३१) से क्ष को विकल्प से छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युजः पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'जस् शस् ङस्यांसु दीर्घ' (५-११) से छ को दीर्घ होने पर वच्छा प्रयोग वना 'जश्शषो-र्लोप' (५-२) से जस् का लोप भी होता है।

४२०. वच्छो—

इसकी मूल प्रकृति वृक्ष है। 'ऋतोऽत्' (१।२७) से ऋ को अ होने पर 'क्षमावृक्षा क्षणेषुवा' (३-३१) से क्ष को छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ को च होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ हो जाने पर यह रूप वनता है।

४२१. वच्छाणं—

सस्कृत के 'वृक्षाणाम्' से यह रूप वनता है यह षष्ठी का वहुवचन है। 'टामोर्ण' (५-४) से न के स्थान पर ण होता है और 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होता है शेष कार्य (४-१९) के प्रयोग के अनुसार होते हैं।

४२२. वच्छरो—

इसकी मूल प्रकृति 'वत्सर' है जिसका अर्थ वर्ष या माल है। 'श्चत्सप्सा छ' (३-४०) से 'त्स' के स्थान पर छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज. पूर्व.' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ हो जाने पर यह प्रयोग वनता है।

४२३. वज्झओ—

इसकी मूल प्रकृति 'वाह्यक' है। 'ध्यह्योर्झ' (३-२२) से ह्य को झ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से झ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज. पूर्व' (३-५१) से पूर्व झ को ज् होने हर 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होकर यह प्रयोग वना है।

४२४. वंचणीअं, वम्चणीअं—

इनकी मूल प्रकृति 'वञ्चनीयम्'। 'नञोर्हलि' (४-१४) से ञ के स्थान पर विकल्प से विन्दु ( ) होता है। और म् भी होता है। वचणीअ मे ञ को विन्दु होने पर 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर वचणीअ रूप वनता है पर जिस पक्ष मे विन्दु नही होता वहा म् होने पर 'वम्वणीअ' यह रूप बनता है।

४२५. वलही—

इसकी मूल प्रकृति, 'वलभी' है जिसका अर्थ छत को छाने के लिए जो टेढी लकडियाँ डाली जाती हैं उनको वलभी या गोपानसी कहते है। सर्व प्रथम 'डस्यच' (२-२३) से ड को ल होने पर 'खघथधभा हः' (२-२७) से भ को ह होने पर यह प्रयोग वनता है।

४२६ वडिसं—

इसकी मूल प्रकृति 'वडिश' है जिसका अर्थ एक प्रकार का काटा है। 'शषो स' (२-४३) से श् को स् होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४२७ वणं—

यह शब्द 'वनम्' से वना है। 'नोण सर्वत्र' (२-४३) से न् को ण होने पर 'मो विन्दु' (४-१२) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बना है।

४२८. वंण्णो—

इसकी मूल प्रकृति 'वर्ण' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'वक्रादिषु' (४-१५) से विन्दु होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ (३-५०) से ण् को द्वित्व होने पर 'अतओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४२९ वण्ही—

इनकी मूल प्रकृति 'वह्नि' है। इसका अर्थ आग है। सर्वप्रथम ह्नस्नष्ण-क्ष्णश्नाण्ह (३-३३)' से ह्न को ण्ह होने पर 'सुभिस्सुप्सु' दीर्घ' (५-१२) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४३०. वत्तमाणं—

इसको मूल प्रकृति 'वर्तमानम्' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके'

(५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है। 'तस्यटः' (३-२२) से त को ट प्राप्त था पर 'नधूर्त्तादिषु' (३-२४) से नही होता।

४३१ वत्ता—

इसकी मूल प्रकृति 'वार्त्ता' है जिसका अर्थ वात है। सर्व प्रथम **सर्वत्र-लवराम्'** (३-३) में र् का लोप होने पर **'सघावचामज्लोप विशेषा 'वहुलम्'** (४-१) से वा को व होने पर यह रूप वन जाता है। इसमे **'तस्य टः'** (३-२२) से त को ट प्राप्त था पर **'नवूर्तादिषु'** (३-२४) से निपेध होने पर नही होता।

४३२ वत्तिआ—

इसकी मूल प्रकृति **'र्वातका'** है जिसका अर्थ वत्ती है। सर्व प्रथम **सर्वत्र लवराम्'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर **'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप'** (२-२) से क का लोप होने पर यह रूप वनता है।

४३३ वद्धो—

इसकी मूल प्रकृति **'वृद्ध.'** है। सर्व प्रथम **'ऋतोऽन्** (१-२७) से ऋ को अ होने पर वु का व हुआ तव **'उपरिलोप' कग डत दप षसाम्'** (३-१) से द का लोप होने पर **'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर **'वर्गेषुयुज. पूर्वः'** (३-५१) से पूर्व ध् को द् होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४३४ व्रंद वंदं—

इनकी मूल प्रकृति **'वृन्दम्'** है जिसका अर्थ झुण्ड या समूह है। सर्वप्रथम **'ऋतोऽत्'** (१-२७) से ऋ को अ होने पर **"वृन्देवोर'** (४-२७) से व के परे विकल्प से र् होने पर जिस पक्ष मे र् हुआ वहा **व्र** रूप हुआ। **यथितद् वर्गान्त'** (४-११) से न् को विन्दु होने पर **'सोविन्दुर्नपु सके'** (५-३०) से अन्त मे विन्दु होने पर व्रद रूप वनता है पर जिस पक्ष मे र् नही होता वहाँ ऋतोऽत् (१-२७) से अ होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होने पर वद यह प्रयोग सिद्ध होता है।

४३५ वाहो, वप्फो—

इनकी मूल प्रकृति **'वाष्प'** है। वाष्प का अर्थ भाफ भी होता है और आसू भी होता है। आसू के अर्थ मे जव इसका प्रयोग होता है तव **'बाष्पे 'अश्रुणि ह'** (३-३८) से ष्प को ह होने पर **'अत ओत् सो.'** (५-१) से

ओ होने पर 'वाहो' रूप बनता है। इसमे 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ह को द्वित्व प्राप्त था पर 'न र हो:' (३-५४) से नही होता। जहा पर वाष्प का अर्थ भाफ होता है वहा 'ष्पस्य फः' (३-३५) से ष्प को फ होने पर 'सघावचामज्लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से वा को व होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से फ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुजः पूर्वः' (३-५१) से पूर्व फ् को प् होने पर 'अत ओत् सो·' (४-१) से ओ होने पर 'वप्फो' प्रयोग बनता है।

४३६ वम्महो—

इसकी मूल प्रकृति 'मन्मथ·' है जिसका अर्थ कामदेव है। सर्वप्रथम 'मन्मथे व' (२-३९) से प्रथम म को व होने पर ''न्मो म.' (३-४३) से 'न्म' को म् होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से म् को द्वित्व होने पर 'खघथधभांह' (२-२) से थ को ह होने पर 'अत ओत् सो·' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४३७ वम्मो—

इसकी मूल प्रकृति 'वर्मन्' है जिसका अर्थ रक्षा करने वाला है। सर्व प्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से म को द्वित्व होने पर 'अन्त्य हल.' (४-६) से न् का लोप होने पर 'नसान्त प्रा वृ ट् सरदः पुसि' (४-१८) से पुँल्लिग होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से 'ओ' होने पर रूप बनता है।

४३८ बम्हञ्जो, वह्मण्णो—

इनकी मूल प्रकृति 'ब्रह्मण्य' है। सर्व प्रथम 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'ह्न ह्ल ह्मेषु नलमां स्थिति रूर्ध्वम्' (३-८) से ह्म का रूप म्ह हो जाता है अर्थात् म् की स्थिति ह् से पूर्व हो जाती है 'वम्ह' ऐसा रूप बनता है तव 'ब्रह्मण्य विज्ञयज्ञन्यकाना ण्य ज्ञन्यानां ञ्जो वा' (१२-७) से विकल्प से अर्थात् शौरसेनी मे ञ्ज होता हैं विकल्प से पर पैशाची मे नित्य ही होता है। इस प्रकार ण्य का 'ञ्ज' होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर 'वम्हञ्जो' यह रूप बनता है पर जिस पक्ष मे ञ्ज नही होता वहा सव कार्य पूर्ववत् होने पर अर्थात् र् का लोप 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से होने पर 'कगचजतदपयवां प्रायोलोपः' (२-२) से य् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ण् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर 'वम्हण्णो' रूप बनता है।

४३९ वम्हणो—

इमकी मूल प्रकृति 'ब्राम्हण' है। 'सर्वत्रलवराम्' (२-३) से र् का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) मे आ को अ होने पर ह्न ह्ल ह्य पु नलमां स्थित रुर्ध्वम्' (३-८) से ह्म को 'म्ह' होने पर 'अत् ओत सोः (५-१) से ओ होने पर 'वम्हणो' रूप वनता है।

४४० वह्मा—

इसकी मूल प्रकृति 'ब्रह्मन्' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३ से र् का लोप होने पर 'अन्त्य हल' (८-६) से न् का लोप हुआ और 'ब्रह्माद्या आत्मवत्' (५-४) से आत्मा के समान ही ब्रह्मा की भी सिद्धि होने पर 'राज्ञश्च' (५-३६) से आ होने पर 'वह्मा' वनता है।

४४१ वलिअं—

इसकी मूल प्रकृति 'व्यलीकम्' है। जिसका अर्थ उलटा या विपरीत होता है। सर्वप्रथम 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'इदीत पानी या दिषु' (१-१८) से ई को इ होने पर 'कगचजत दपयवा प्रायो लोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४४२ वसही—

इसकी मूल प्रकृति 'वसति' है जिसका अर्थ निवास स्थान है। सर्व प्रथम 'वसतिभरतयोर्ह' (२-९) से त को ह होने पर सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४४३ वसहो—

इसकी मूल प्रकृति 'वृषभ.' है जिसका अर्थ वैल है। सर्व प्रथम 'ऋतोऽत्' (१-२७) से वृ को व होने पर 'शषो सो' (२-४३) से ष को स होने पर 'खघथधभाहः' (२-२७) से भ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'वसहो' रूप वनता है।

४४४ वहिरो—

इसकी मूल प्रकृति 'वधिर' है जिसका अर्थ वहरा है। सर्व प्रथम 'खघथधभांह' (२-२७) से ध को ह होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) मे ओ होने पर यह रूप वनता है।

४४५ वहुमुहं, वहूमुहं—

ये शब्द 'वहुमुख' मे वने हैं। सर्व प्रथम 'खघथधभां ह' (२-२७) से ख को ह होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषावहुलम्' (४-३) से विकल्प से

ह्रस्व होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) मे विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

४४६ बहू

यह 'वधू' से वना है 'खघथधभा ह्' (२-२७) से घ को ह् होने पर यह प्रयोग वनता है। द्वितीया के वहु वचन मे शस् प्रत्यय के लगने पर वधू+शस् ऐसा होने पर पूर्ववत् घ को ह् होने पर 'जस्शसोर्लोप' (५-८) से शस् का लोप होने पर 'स्त्रियाशस उदोतौ' (५-१९) से उत् तथा ओत् होने पर 'वहुउ' तथा 'वहूओ' रूप वनते हैं। द्वितीया के एक वचन मे वधू+अम् होने पर पूर्ववत् घ को ह् होने पर 'अमिह्रस्व' (५-२१) से ह्रस्व होने पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषावहुलम्' (४-१) से अम् के अ का लोप होने पर 'मो विन्दु' (४-१२) से म् को विन्दु होने पर 'वहुं' रूप वनता है। तृतीया के वहुवचन मे वधू+भिस् मे वधू का पूर्ववत् वहू वनने पर 'शेषोऽदन्नवद्' (६-६०) से भिस् को हिं होने पर 'वहूहिं' रूप वनता है।

४४७ वाचा

इसकी मूल प्रकृति 'वाक्' है। 'स्त्रियामात्' (४-७) से च् को आ होने पर यह रूप वनता है।

४४८ वावडणं, वाअवडणं

इनकी मूल प्रकृति 'पादपतनम्' है। सर्व प्रथम 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से अ का भी विकल्प से लोप होने पर 'पाद' मे केवल वा' शेष रहा तव पतनम् के प को भी 'पोव' (२-१५) से व होने पर 'शदलृपत्योर्ड' (८-५१) से त को ड होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'वावडण' रूप वनता है पर जिस पक्ष मे अ का लोप नही होता वहा 'वाअवडण' यह रूप वनता है।

४४९ वाऊ

इसकी मूल प्रकृति 'वायु' है। 'कगचजतदपयवां प्रायो लोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) से उ को दीर्घ होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से सु का लोप होने पर 'वाऊ' यह रूप वनता है। इसके अन्य कारकों के रूप कारक प्रकरण मे देखने चाहिये।

४५० बारह

यह शब्द 'द्वादश' से बना है जिसका अर्थ १२ है। प्रथम द् का 'उपरिलोप' क ग ड त द प षसाम्' (३-१) से लोप होने पर 'संख्यायाञ्च' (२-१४) मे र होने पर 'दशादिपुह.' (२-४४) से श को ह होने पर यह प्रयोग बनता है।

४५१ बावडो

इसकी मूल प्रकृति 'व्यापृत' है। सर्व प्रथम 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'पृ' के ऋ को 'ऋतोऽत्' (१-२) से अ होने पर 'पोव' (२-१५) मे प को व होने पर 'व्यापृतेड.' (१२-४) मे त को ड होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४५२ विअड्डी

इसकी मूल प्रकृति 'वितर्दि' है जिसका अर्थ 'वेदी' है। 'कगचजतदपयवां प्रायो लोप.' (२-२) मे त का लोप होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का भी लोप हुआ। 'गर्दभसमर्द वितर्दि विच्छर्दिषुर्दस्य' (३-२६) मे त को ड होने पर 'शेषादेशयोर्दित्वमनादौ' (३-५०) मे ड को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४५३ विछड्डी

इसकी मूल प्रकृति 'विच्छर्दि' है। 'कगचजतदपयवां प्रायो लोप' (२-२) से च् का लोप होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'गर्दभ संमर्द वितर्दि विच्छर्दिषु र्दस्य' (३-२६) से त को ड होने पर शेषा-देशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ड को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह रूप बनता है।

४५४ विअणा, वेअणा

इन दोनो की मूल प्रकृति 'वेदना' है। सर्वप्रथम 'एतइद्वेदनादेवरयो' (१-३४) से ए को 'इ' होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप (२-२) से द् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से त् को ण होने पर 'विअणा' रूप बनता है पर ए को इ विकल्प से होता है अत पक्ष मे ए ही रहने पर और सब कार्य पूर्ववत् होने पर 'वेअणा' यह रूप भी होता है।

४५५ विअणो

यह शब्द 'व्यजनम्' से बना है जिसका अर्थ पखा है। सर्व प्रथम 'इदीषत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाऽङ्गारेषु' (१-३) से आदि के अ

के स्थान पर इ होने पर तथा 'अधोमनयाम्' (१-२) से य् का लोप होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोपः' (२-२) से ज् का भी लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होकर 'अत ओत् सो.' (५-१) से 'अ' हुआ और यह प्रयोग वना।

४५६ विआणं——

इसकी मूल प्रकृति 'वितानम्' है जिसका अर्थ चदवा या चादनी (जो ऊपर तानी जाती है) है। 'कगचजतदवा प्रायो लोप॰' (२-४२) से न् का लोप होने पर 'नोण. सर्वत्र' (३-४२) से न् को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

४५७ विआरल्लो——

इसकी मूल प्रकृति 'विकार वत्' है। सर्व प्रथम 'आल्विल्लोल्लाल-वन्तेन्तामतुप'(४-२५) से वत् के अर्थ मे 'इल्ल' आदेश होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (३-३) से क का लोप होने पर 'अत ओत् सो." (५-१) से 'ओ' होने पर यह रूप वनता है।

४५८ विइण्हो——

इसकी मूल प्रकृति 'वितृष्ण' है। 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से तृ की ऋ को इ होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-३) से त् का लोप होने पर 'ह्रस्नष्णक्षणश्नाण्ह' (३-३६) से 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४५९ विउद——

इसकी मूल प्रकृति 'विवृत.' है। सर्व प्रथम 'उवृत्वादिषु' (१-२९) से वृ के ऋ को उ होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-२) से व का लोप होने पर 'ऋत्वादिषुतोद' (१-७) से त को द होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४६० विउलं——

इसकी मूल प्रकृति 'विपुलम्' है जिसका अर्थ बहुत है। 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप' (२-२) से प का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

४६१ विंहिअ——

इसकी मूल प्रकृति 'वृंहितम्' है जिसका अर्थ वढाना या विस्तार करना है। सर्व प्रथम 'इदृष्यादिषु' (१-२०) से वृ की ऋ को इ होने पर 'क ग च ज

श्च के स्थान पर छ होने पर 'शेषादेशयोर्दित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुजः पूर्वः' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोपः' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर 'विच्छुओ' यह बनता है। 'वृश्चिकेञ्छः' (३-४१) इस सूत्र से 'श्च' को 'ञ्छ' होने पर और शेष कार्य पूर्ववत् होने पर 'विञ्छुओ' रूप भी बनता है।

४६७ विञ्जो विण्णो—

इनकी मूल प्रकृति 'विज्ञः' है जिसका अर्थ चतुर या बुद्धिमान है। सर्व प्रथम 'ब्रह्मण्य' विज्ञ यज्ञन्य कन्यकाना ण्य ज्ञन्यानांञ्जोवा' (१२-७) से ज्ञ के स्थान पर 'ञ्ज' होने पर अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'विञ्जो' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे ञ्ज नही होता वहा 'म्नज्ञ पञ्चाशत् पञ्चद शेषुण' (३-४४) से ज्ञ को ण् होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ण् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४६८ विञ्जातो—

यह शब्द 'विज्ञात' से वना है 'ज्ञस्यञ्ज' (१०-९) से ज्ञ के स्थान पर 'ञ्ज' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बना है।

४६९. विंझो विम्झो—

इन दोनो की मूल प्रकृति 'विन्ध्य' है। सर्वप्रथम 'ध्यह्योर्झः' (३-२८) से ध्य को झ होने पर 'नञोर्हलि'(४-१४) से विकल्प से विन्दु ( ) होता है और जहाँ विन्दु नही होता वहा म् हो जाता है। दोनो मे 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर दोनो रूप बनते हैं।

४७० विडवो—

इसकी मूल प्रकृति 'विटपः' है जिसका अर्थ पेड है सर्वप्रथम 'टोडः' (२-२०) से ट को ड होने पर 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'अत-ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४७१ विण्णाणं

इसकी मूल प्रकृति 'विज्ञानम्' है। सर्वप्रथम 'म्नज्ञपञ्चाशत्पञ्चदशेषुणः' (३-४४) से ज्ञ' को 'ण' होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ण् को द्वित्व होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को भी ण होने पर सोर्बिन्दुर्न-पुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

४७२ वेण्हू विण्हू

इनकी मूल प्रकृति 'विष्णु' है। सर्वप्रथम 'ह्रस्नष्णक्ष्णश्नाण्ह' (३-३३) से 'ष्ण' के स्थान पर 'ण्ह' होने पर 'इत् एत् पिण्ड समेषु' (१-१२) से विकल्प से इ को ए होने पर दोनो मे 'सुभिस्सुप्सुदीर्घः' (५-१२) से दीर्घ होने पर दोनो रूप वनते हैं।

४७३ विप्फरिसो

इसकी मूल प्रकृति 'विस्पर्श' है। सर्वप्रथम 'स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य' (३-३६) इस सूत्र से 'स्प' को फ होने पर ''शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे फ को द्वित्व होने पर वर्गेषु युज पूर्वः' (३-५१) से पूर्व फ को प् होने पर 'इ श्री ही क्रीत क्लान्त क्लेशम्लान स्वप्नस्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से युक्त वण र्श को विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होता है और 'इ' भी होता है अत र् को रि होने पर 'शषो स' (२-४३) मे श् को स् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४७४ विब्भलो, विहलो, भिब्भलो

इनकी मूल प्रकृति 'विह्वल' है जिसका अर्थ व्याकुल है। सर्वप्रथम विह्वलेभहौवा' (३-४७) से 'ह्व' के स्थान पर भ तथा ह होते हैं। जिस पक्ष मे भ होता है वहाँ भ को 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) मे पूर्व भ को व् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'विब्भलो' रूप वनना है पर जिस पक्ष मे ह होता है वहाँ 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'विहलो' यह रूप होता है। हेमचन्द्र के अनुसार 'भिब्भलो' रूप वनता है। 'वा विह्वले वौवश्च' (हेमचन्द्र) से ह्व को भ होने पर शेप कार्य पूर्ववत् होने पर वि को भी भ हो जाता है और यह प्रयोग वनता है।

४७५ विलाशे

इसकी मूल प्रकृति 'विलास' है। 'षसश' (११-३) से स् के स्थान पर श् होता है और 'अत इदेतौलुक् च' (११-१०) मे ए होने पर 'सु' का लोप भी हो जाता है।

४७६ विसं

इसकी मूल प्रकृति 'विषम' है। 'शषो स' (२-४३) से ष को स होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) मे विन्दु ( ) होने पर यह प्रयोग वनता है।

४७७ भिसिणी

इसकी मूल प्रकृति **'विसिनी'** है जिसका अर्थ कमल का पत्ता है। **'विसिन्याभ'** (२-३८) से व को भ होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) से **न्** को **ण्** होने पर यह प्रयोग बनता है।

४७८. विसी

इसकी मूल प्रकृति **'वृषी'** है जिसका अर्थ व्रती लोगो के बैठने का आसन है। सर्वप्रथम **'इदृष्यादिषु'** (१-२२) से ऋ को इ होने पर **'वि'** हुआ तब **'शषो स'** (२-४३) से ष् को स् होने पर यह प्रयोग बना।

४७९ विस्सासो, वीसासो

इसकी मूल प्रकृति **'विश्वासः'** है। **'कगचजतद पयवा प्रायोलोप'** (२-२) से व् का लोप होने पर **'शषो स'** (२-४३) से श् को स होने पर **'सेवाविषुच'** (३-५८) से स को विकल्प से द्वित्व होने पर **'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्'** (४-१) अथवा **'ह्रस्व सयोगे'** हेमचन्द्र के अनुसार ह्रस्व होने पर विस्सासो रूप बनता है वैसे **'इदीत पानीयादिषु'** (१-१८) से दीर्घ होता है।

४८० वोरिअ

इसकी मूल प्रकृति **'वीर्यम्'** है। **'चौर्यसमेषुरिअं'** (३-२०) से र्य को रिअ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४८१ वीसत्थो

इसकी मूल प्रकृति **'विश्वस्त'** है। **'ईत् सिंह जिह्वयोश्च'** (१-१७) से वि को वी होने पर **'कगचजतद पयवा प्रायोलोप'** (२-२) से व् का लोप होने पर **'शषो स'** (२-४३) से श् को स होने पर **'स्तस्यथ'** (३-१२) से स्त को थ होने पर **'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से थ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) से पूर्व थ को त् होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४८२ वीसंभो

इसकी मूल प्रकृति **'विश्रम्भ'** है जिसका अर्थ विश्वास है। सर्वप्रथम **'ईत् सिंह जिह्वयोश्च'** (१-१७) से वि को वी होने पर **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'शषो स'** (२-४३) से श् को स् होने पर **'यथि तद्वर्गान्त'** (४-१७) से म् को बिन्दु होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

४८३. विम्हओ—

इमकी मूल प्रकृति 'विस्मय' है जिसका अर्थ आश्चर्य है। सर्वप्रथम 'श्मपक्ष्मविस्मयेषुम्ह' (३-३२) से 'स्म' को 'म्ह' होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४८४ वुत्तंतो—

इसकी मूल प्रकृति 'वृत्तान्तः' है जिमका अर्थ हाल या समाचार है। सर्वप्रथम 'उदृत्वादिषु' (१-२९) से वृ के ऋ को उ होने पर 'उपरिलोप. कगडतदप षमाम्' (३-१) से त् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से शेष त को द्वित्व होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) मे आ को अ होने पर 'यियितद् वर्गान्त' (४-१७) मे न् को विन्दु होने पर 'अत ओत् सो·' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४८५. वुन्दावणं

यह शब्द 'वृन्दावनम्' से वना है। 'उदृत्वादिषु' (१-२९) से वृ की ऋ को उ होने पर 'यियितद् वर्गान्त' (४-१७) से न् को विन्दु होने पर नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४८६. वेडिसो

इसकी मूल प्रकृति 'वेतस' है। सर्वप्रथम इदीषत् पक्कस्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाङ्गारेषु' (१-३) से त् के अ को इ होने पर 'प्रतिसत्वेतस पताकासुड' (२-८) से त को ड होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

४८७ वेलुरिअं

सस्कृत मे 'वैडूर्य' एक प्रकार का रत्न है उसको ही प्राकृत मे 'वेलुरिअ' कहते हैं। 'दाढादयो बहुलम्' (४-३३) से यह शब्द निपात है।

४८८ वेल्ली

इमकी मूल प्रकृति 'वल्लि' है जिमका अर्थ वेल या लता है। सर्वप्रथम 'एशय्यादिषु' (१-५) से अ को ए होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से ल का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (-५०) से ल को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४८९ बोरं

इसकी प्रकृति 'वदरम्' है जिसका अर्थ वेर है। 'ओबदरे देन' (१-६) से द् तथा अ को ओ होने पर 'सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

४९० व्रदं, व्रंदं

इनकी मूल प्रकृति 'वृन्दम्' है जिसका अर्थ झुण्ड या समूह है। सर्वप्रथम 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ के स्थान पर अ होने पर 'व' यह रूप हुआ तव-'वृन्दे वोर.' (४-२७) से व के आगे विकल्प से र् होने पर व्र हुआ 'ययितद् वर्गान्त·' (४-१७) से न् को विन्दु होने पर 'सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर व्र द वनता है और जिस पक्ष मे र् नही होता वहा 'वद वनता है।

४९१ शिआला, शिआलका

इनकी मूल प्रकृति 'श्रृगाल' है जिसका अर्थ गीदड है। 'श्रृगाल शब्द-स्याशिआला शिआलिका' (११-१७) से शिआला तथा शिआलका आदेश होने से दोनो रूप वनते है।

४९२ सढा

इसकी मूल प्रकृति 'सटा' है जिसका अर्थ जटा होता है। 'सटाशकट कैठेभषुढ' (२-२१) से ट के स्थान पर ढ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९३ सअढो

यह शब्द 'शकट.' से बना है जिसका अर्थ गाडी है। 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप:' (२-२) से क् का लोप होने पर 'सटा शकट कैठेभषुढ.' (२-२१) से ट को ढ होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'सअढो' रूप वनता है।

४९४ सअहुत्तं

इसकी मूल प्रकृति 'शत कृत्व.' है। सर्वप्रथम 'शषो· स' (२-४३) से श् को स होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'कृत्वसो हुत्तमित्यन्ये देशी शब्द स इष्यते' (४-२५) इस प्रक्रिया से कृत्व के स्थान पर 'हुत्तम्' यह प्रत्यय हो जाता है और 'सोविन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९५ सहस्सहुत्त

इसकी मूल प्रकृति 'सहस्त्र कृत्व' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायो लोप' (२-२) से त् का लोप

होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से स् को द्वित्व होने पर 'कृत्वसो हुत्तमित्यन्ये देशी शब्द सइष्यते' (४-२५) से 'कृत्व' के स्थान पर 'हुत्तम्' यह प्रत्यय होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९६ सइ, सआ

ये दोनो प्रयोग 'सदा' से वने है। 'इत्‌सदादिषु (१-११) से आ को इ विकल्प से होता है जिस पक्ष मे इ होता है वहा 'कगचजतदपयवा प्रायोलोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'सइ' यह वनता है और जहा इ नही होता वहा पूर्ववत् द् का लोप होने पर 'सआ' यही प्रयोग वनता है।

४९७ सइरं

इसकी मूल प्रकृति 'स्वैर' है जिसका अर्थ इच्छानुसार कार्य करना है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से व् का लोप होने पर 'दैत्यादिष्वइ' (१-३६) से ऐ को अ इ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९८ संवत्तओ

इसकी मूल प्रकृति 'संवर्तक' है। सर्वप्रथम सर्वत्रलवराम्'(३-३)से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) मे त् को द्वित्व होने पर 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९९ संवुदी

इसकी मूल प्रकृति 'संवृति' है। 'उदृत्यादिषु' (१-२९) से वृ के ऋ को उ होने पर 'ऋत्वादिषुतोद' (२-७) से त् को द् होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५०० सुइदी

इसकी मूल प्रकृति 'सुकृति' है जिसका अर्थ पुण्यात्मा है। 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप.' (२-२) से क् का लोप होने पर 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से वृ की ऋ को इ होने पर 'ऋत्वादिषुतोद (२-७) से त् को द् होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१२) मे दीर्घ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५०१ संकन्तो

इसकी मूल प्रकृति 'सक्रान्त' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषा वहुलम्' (४-१) से आ को अ होने पर

'यथितद्वर्गान्त ' (४-१७) से सम् के म् को विन्दु होने पर अत ओत् सो '
(५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५०२. संझा—

इसकी प्रकृति 'सध्या' है। 'ध्यह्योर्झ ' (३-२२) से ध्य के स्थान पर 'झ'
होने पर सम् के म् को 'यथितद्वर्गान्त.' (४-१) से बिन्दु ( ) होने पर यह
प्रयोग बनता है।

५०३ सका, सङ्का—

यह शब्द 'शङ्का' से बना है। 'शषो स ' (२-४३) मे श को स् होने पर
'यथितद्वर्गान्त ' (४-१७) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बना है। विन्दु विकल्प
से होने पर ये दोनो प्रयोग बनते हैं।

५०४ संखो, सङ्खो—

इनकी प्रकृति 'शङ्ख ' है। 'शषो स ' (२-३) से श् को स् होने पर
'यथितद्वर्गान्त ' (४-१, से विकल्प से विन्दु होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१)
से ओ होने पर ये प्रयोग बनते हैं।

५०५ सण्ढो, संढो—

इनकी मूल प्रकृति 'षण्ढ ' है जिसका अर्थ नपुसक है। 'शषो स '
(२-४३) से ष् को स् होने पर 'यथितद्वर्गान्त ' (४-१) से विकल्प से विन्दु
होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर ये प्रयोग बनते हैं।

५०६ सपत्ती—

इसकी मूल प्रकृति 'सम्पत्ति ' है। 'यथितद्वर्गान्त ' (४-१७) से विन्दु होने
पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ ' (५-१२) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५०७ सक्को—

इसकी मूल प्रकृति 'शक्र ' है जिसका अर्थ इन्द्र है 'शषो स ' (२-४३) से
श् को स् होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से द् का लोप होने पर 'शेषादेश
यो द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे क को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१)
से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५०८ सगामो—

इसकी मूल प्रकृति 'स ग्राम ' है जिसका अर्थ युद्ध है। 'सर्वत्र लवराम्'
(३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ग् को
द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो ' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग
बनता है।

५०९. सरफसं—

इसकी मूल प्रकृति 'सरभस' है। जिमका अर्थ 'जल्दी' या 'शीघ्रता से' है। **'वर्गाणां तृतीय चतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ'** (१०-३) से वर्ग के चौथे भ को उसी वर्ग का दूमरा फ होने से **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-५०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५१०. सलफो—

इसकी मूल प्रकृति **'शलभ'** है जिसका अर्थ पतङ्गा या कीडा है। **'शषो स'** (२-४३) से श् को स् होने पर **'वर्गाणा तृतीय चतुर्थयोरयुजोरनाद्यो राद्यौ'** (१०-३) से भ को ह होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग होता है।

५११. सचावं—

इसकी मूल प्रकृति **'सचापम्'** है जिसका अर्थ धनुष के सहित है। **'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप.'** (२-२) से प का लोप होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) विन्दु से होने पर यह प्रयोग बनता है।

५१२ सज्जो—

इसकी मूल प्रकृति **'षड्ज'** है यह एक स्वर का नाम है। **'शषोः स'** (२-४३) से ष को स होने पर **'उपरि लोप. क ग ड त द पषसाम्'** (३-१) से ड् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से ज् को द्वित्व होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से आ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५१३. सित्थओ—

इमकी मूल प्रकृति **'सिक्थकम्'** है जिसका अर्थ मोम या मधुच्छिष्ट है। सर्वप्रथम पहले क् का **'उपरि लोप क ग ड त द श साम्'** (३-१) से लोप होने पर **'शेपादेशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से थ् को द्वित्व होने पर **'वर्गेषुयुज. पूर्व'** (३-५१) से पूर्व थ को त् होने पर दूसरे क् का **'क ग च ज त द पयवा प्रायोलेप'** (२-२) से लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५१४. सिणिद्धो—

इसकी मूल प्रकृति **'स्निग्ध'** है जिसका अर्थ चिकना है। **नोण सर्वत्र'** (२-४३) से न को ण् होने पर **विप्रकर्ष'** (३-५९) से **'स्नि'** को जो युक्त वर्ण है विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होती है और पूर्व स्वरता होने से **'सिणि'** यह रूप बनता है। **'उपरिलोप कगडतदपषसाम्'** (३-१) से ग् का लोप होने पर

'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्वः' (३-५१) मे पूर्व ध् को द् होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

५१५ सुत्तो

इसकी मूल प्रकृति 'सुप्त' है जिसका अर्थ सोया हुआ है। 'उपरि लोप कगडतदपषसाम्' (३-१), से प् का लोप होने पर शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५१) से त् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५१६ खलिअं

इसकी मूल प्रकृति 'स्खलितम्' है जिसका अर्थ अपराध या त्रुटि है। 'उपरिलोपः कगडतदपषसाम' (३-१) से स् का लोप होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप.' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

५१७ संजदो

इसकी मूल प्रकृति 'संयत' है। 'ऋत्वादिषु तोदः' (१-७ से त को द होने पर 'आदेर्यो ज' (२-३१) से य को ज होने पर यथितद्वर्गान्त.' (४-१७) से विन्दु होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५१८ संठविअं, संठाविअ

इनकी मूल प्रकृति 'सस्थापितम्' है। सर्व प्रथम 'ठाझागाश्च वर्तमान' भविष्यद् विध्याद्येकवचनेषु'(८-२६) से स्था के स्थान पर ठा होने पर 'यथितद्-वर्गान्त' (४-१७) से विन्दु होने पर 'पोव' (२-१५) से प् को व होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर तथा 'अदातो यथादिषु वा' (१-१०) से ठा के आ को विकल्प से अ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुं सके' (५-३०) से विन्दु हो जाने पर 'सठविअ' तथा'सठाविअ' ये रूप वनते हैं।

५१९ सण्णा

इसकी मूल प्रकृति 'सज्ञा' है जिसका अर्थ सकेत या नाम होता है। सर्व प्रथम 'म्नज्ञपञ्चाशत्पञ्चदशेषुण' (३-१४) से ज्ञ को ण् होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ण् को द्वित्व होने पर यह रूप वनता है।

५२० सण्ह

इसकी मूल प्रकृति 'श्लक्ष्ण' है जिसका अर्थ चिकना है। 'शषो. स' (२-४) से श् को स् होने पर 'ह्लस्नक्ष्णश्नांण्ह' (३-३३) से क्ष्ण को ण्ह- होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से श् को विप्रकर्ष होने पर ल को भी अ होना है और 'सोबिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

५२१ सद्दालो

इसकी मूल प्रकृति 'शब्दवत्' है। 'शषो स' (२-४२) स श को स् होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से ब् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर 'आल्विल्लोल्लालवन्तेन्तामतुप' (४-२५) से वत् के स्थान पर 'आल' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५२२ सद्दो

इसकी मूल प्रकृति 'शब्द' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से ब का-लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो'. (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५२३ सनानम्

इसकी मूल प्रकृति 'स्नानम्' है। सर्वप्रथम 'स्नस्य सन' (१०-७) से स्न को सन होने पर 'सोबिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

५२४. सनेहो

इसकी मूल प्रकृति 'स्नेह' है। 'स्नस्य सन' (१०-७) से स्न को सन होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५२५ सप्फं

इसकी मूल प्रकृति 'शष्पम्' है जिसका अर्थ घास या तृण है। 'शषोस' (२-४३) से श को स होने पर 'ष्पस्यफ' (३-३५) से ष्प को फ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से फ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्वः' (३-५१) से पूर्व फ को प होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५२६ सब्भावं——

इसकी मूल प्रकृति 'सद्भावम्' है। सर्व प्रथम 'कगचजतदपयवां प्रायो-लोप' (२-२) से द् का लोप होने पर शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से भ को द्वित्व होने पर वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व भ को व् होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

५२७ समरी——

इसकी मूल प्रकृति 'शफरी' है जिसका अर्थ मछली है। 'शषोस' (२-४३) से श को स होने पर 'फोभ' (२-२६) से फ को भ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५२८ सिभा——

इसकी मूल प्रकृति 'शिफा' है जिसका अर्थ पेड की जड है 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'फोभ' (२ २६) से फ को भ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५२९ सेभालिआ——

इसकी मूल प्रकृति 'शेफालिका' है जिसका अर्थ निर्गुन्डी नाम की लता है। 'शषोस' (२-४३) से श को स होनेपर 'फोभ' (२-२६) से फ को भ होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-३) से क का लोप होने पर यह प्रयोग वनता है।

५३० सभलं——

इसकी मूल प्रकृति 'सफल' है। 'फोभ' (२-२६) से फ को भ होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५३१ सावो——

इसकी मूल प्रकृति 'शाप' है। 'शषोस' (२-४३) मे श को स होने पर 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'अतओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५३२. सवहो——

इसकी मूल प्रकृति 'शपथ' है। 'शसो स' (२-४३) से श को स होने पर 'पोव' (२-१५) मे प को व होने पर 'खघथधभांह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५३३ समत्थो

इसकी मूल प्रकृति 'समस्त' है। 'स्तस्य थ' (३-१२) से स्त को थ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से थ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्वः' (३-५१) से पूर्व थ को त् होने पर यह प्रयोग बनता है।

५३४ समिद्धी, सामिद्धी

इनकी मूल प्रकृति 'समृद्धि' है जिसका अर्थ ऐश्वर्य है। सर्व प्रथम 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से ऋ को इ होने पर 'उपरि लोप कगडतदपषसाम्' (३-१) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व.' (३-५१) से पूर्व ध को द् होने पर 'आसम्द्ध्यादि षु' (१-२) से स के अ को विकल्प से आ होने पर तथा 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१२) से अन्त्य इ को दीर्घ होने पर 'अन्त्यस्य हल' (४-६) से सु का लोप होने पर ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।

५३५ संपदि

इसकी मूल प्रकृति 'सम्प्रति' है जिसका अर्थ वर्तमान या इस समय है। 'मोविन्दु.' (४-१०) से म् को विन्दु होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'ऋत्वादिषुतोद' (२-७) से त को द होने पर 'संपदि' यह रूप बनता है।

५३६. संमड्डो

इसकी मूल प्रकृति 'सम्मर्द.' है जिसका अर्थ झुण्ड या भीड है। 'यम्रि तद्वर्गान्त.' (४-१७) से म् को विन्दु होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'गर्दभ समर्द वितर्दिविच्छर्दिषुर्दस्य' (३-२६) से द को ड होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ड को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) मे ओ होने पर यह रूप बनता है।

५३७ सरदो

इसकी मूल प्रकृति 'शरत्' है। 'शषो. स.' (२-४३) से श को स होने पर 'शरदोद' (४-१०) से त् को द होने पर 'नसान्त प्रावृट् शरद पुंसि' (४-१८) से पुल्लिग होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५३८. सररुहं, सरोरुह

इनकी मूल प्रकृति 'सरोरूहम्' है जिसका अर्थ कमल है। 'अन्त्यहल' (६-६) से सरस् के स् का लोप होने पर 'सन्धा वचामज् लोप विशेषा

बहुलम्' (४-१) से विकल्प से ओ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) स विन्दु होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

५३९ सरिआ

यह शब्द 'सरित्' से वना है। जिसका अर्थ नदी है। 'स्त्रियामात्' (४-७) मे त् को आ होने पर यह रूप वनता है।

५४० सरिसो

इसकी मूल प्रकृति 'सदृश' है जिसका अर्थ समान या तुल्य है। 'क्वचिद्युक्तस्यापि' (१-३१) से ऋ को रि् होने पर 'शषो स' (२-४३) मे श को स होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

५४१ सरो

इसकी प्रकृति 'सरस्' है जिसका अर्थ तालाव है। 'अन्त्य हल' (४-६) से स् का लोप होने पर 'नसान्त प्रावृ ट् सरद पुंसि' (४-१८) से पुल्लिग होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

५४२ सलाहा

इसकी मूल प्रकृति 'श्लाघा' है जिसका अर्थ प्रशसा है। 'आक्ष्माश्लाघयो' (३-६३) से युक्त वर्ण का विप्रकर्प (स्वरभक्ति) होती है ओर पूर्व को अकार तथा तत्स्वरता भी होती है। 'शषोस' (२-४३) से श को स होने पर 'खघथधभा ह' (२-२७) से घ को ह् होने पर यह रूप वनता है।

५४३ सवोमुओ, सवोमूओ

इनकी मूल प्रकृति सर्वमुख अथवा सर्पमुख है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'सन्धावचामज् लोपविशेषाबहुलम्' (४-१) से ओ होने पर और विकल्प से अ होने पर 'खघथधभांह' से ख को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

५४४ सव्वण्णो

इसकी मूल प्रकृति 'सर्वज्ञ' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'सर्वज्ञेङ्गि तज्ञ योर्ण.' (१२-२) से ज्ञ को ण होने पर 'शेषादेशयो-र्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से व तथा ण् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५४५. सारंगो—

इसकी मूल प्रकृति 'शार्ङ्ग' है जिसका अर्थ कृष्ण है। 'सिलष्टश्लिष्ट रत्न क्रियाशार्ङ्गेषु तत्स्वरवत् पूर्वस्य' (३-६०) से सयुक्त को विप्रकर्ष होता है और पूर्व वर्ण की तत्स्वरता होने पर 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'ययतिद्वर्गान्त' (४-१७) से विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५४६ सिट्ठी—

इसकी मूल प्रकृति 'सृष्टि' है। सर्वप्रथम 'इ दृष्यादिषु' (१-२८) से ऋ को इ होने पर 'ष्टस्यठ' (३-१०) से ष्ट को ठ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ठ् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषुयुज पूर्व' (३-५१) से पूर्व ठ् को ट् होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह रूप बनता है।

५४७ सिढिलो—

इसकी मूल प्रकृति 'शिथिल' है। सर्वप्रथम 'शषो स' (२-४३) से श को स् होने पर 'प्रथम शिथिलनिषधेषुढ' (२-२८) से थ को ढ होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'सिढिलो' यह रूप बनता है।

५४८. सिण्हो—

इसकी मूल प्रकृति 'शिश्न' है। 'शषो स' (२-४३) इस सूत्र से श को स होने पर 'ह्न स्नष्णक्ष्णश्नाण्ह.' (३-३३) से श्न को ण्ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५४९. सेंदूरं सिंदूरं—

इसकी मूल प्रकृति 'सिन्दूर' है। सर्वप्रथम 'इतऐत् पिण्ड समेषु' (१-१२) से इ को विकल्प से ए होने पर 'ययितद् वर्गान्त' (४-१७) से विन्दु होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से अन्त मे विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

५५० सिंधवं—

इसकी मूल प्रकृति 'सैन्धवम्' है। सर्वप्रथम 'इत् सैन्धवे' (१-३८) से ऐ को इ होने पर 'ययितद्वर्गान्त'(४-१७) से विन्दु होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से अन्त में विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

५५१ सिरं—

इसकी मूल प्रकृति 'शिर' है। 'शषो स' (२-४१) से श को स होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से शिरस् के स का लोप होने पर 'नसान्त प्रावृट् शरद.

पुंसि' (४-१८) से पुंल्लिग प्राप्त था पर **'नशिरो नभसी'** (४-१९) से नपुंसक लिंग ही होता है और **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

५५२ सिरी

इसकी मूल प्रकृति **'श्री'** है जिसका अर्थ लक्ष्मी है। **'शषोः स'** (२-४३) से श् को स होने पर 'इ **श्री ह्री क्रीतक्लान्त क्लेशम्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु**' (३-६२) से युक्त वर्ण को विप्रकर्ष होने पर और इ होने पर यह रूप बनता है।

५५३ सिलिट्ठं

इसकी मूल प्रकृति 'शिलष्टम्' है जिसका अर्थ मिला हुआ है। **'शषो स'** (२-४३) से श् को स् होने पर **'विलष्ट शिलष्ट** रत्न **क्रिया शाङ्‌र्ग षुतत्स्वरवत् पूर्वस्य'** (३-६०) से **'शिल'** को विप्रकर्ष होने पर तथा पूर्व स्वरता होने पर सिलि रूप बनता है। फिर **'ष्टस्यठ'** (३-१०) से ष्ट को ठ होने पर **'शेषा-देशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से ठ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युज पूर्व'** (३-५१) से पूर्व ठ को ट् होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ हो जाने पर यह प्रयोग बनता है।

५५४ सिविणो

इसकी मूल प्रकृति **'स्वप्न'** है। सर्वप्रथम **'इदीयत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाङ्गारेषु'** (१-२) से स्व, के अ को इ होने पर **सर्वत्रलवराम्'** (३-३) से व् का लोप होने पर 'सि' बनता है। तब **'पोव'** (२ १५) से प् को व् होने पर 'इ **श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्शहर्षार्ह गर्हेषु'** (३-६३) से इ तथा पूर्व स्वरता होने पर **'नोण सर्वत्र'** (२-४२) से न् को ण होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५५५ सीभरो

इसकी मूल प्रकृति **'शीकर'** है जिसका अर्थ कण या छोटी छोटी बूंदें हैं **'शषो स'** (२-४३) से श को स होने पर **'शीकरेभ'** (२-५) से क को भ होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५५६ सीहो

इसकी मूल प्रकृति **'सिंह'** है **'ईत् सिंह जिह्वयोश्च'** (१-१७) से इ को ई होने पर **'सन्धाव चामज् लोपविशेषा बहुलम्'** (४-१) से अनुस्वार का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से **'ओ'** होने पर **'सीहो'** प्रयोग बनता है।

५५७ सुउरिसो, सुपुरिसो

इनकी मूल प्रकृति 'सुपुरुष.' हैं। सर्वप्रथम 'इत्पुरुषेरो' (१-२३) से रु के उ को इ होने पर 'शषो स' (२-४३) से ष् को स् होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से प् का लोप प्राय होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर ये दोनो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

५५८ सूरो, सुज्जो

इनकी मूल प्रकृति 'सूर्य' है। 'सूर्येवा' (३-१९) इस सूत्र स र्य को विकल्प से र होने पर जिस पक्ष मे र होता है वहाँ 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है, पर जिस पक्ष मे र नही होता वहा 'सन्धाव चा मज् लोप विशेषा बहुलम्' (८-१) से ऊ को उ होने पर 'र्यशय्याभिमन्युपुज:' (३-१७) से र्य को ज होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ज को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'सुज्जो' प्रयोग बनता है।

५५९ सुन्डो

इसकी मूल प्रकृति 'शुन्ड' या शौन्ड है। शुन्ड का अर्थ सूड है और शौण्ड का अर्थ शराब पीने वाला है। सर्वप्रथम 'शषोस' (२-४३) से श को स होने पर 'यथितद् वर्गान्त' (४-१) से न को ण होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होकर यह रूप बनता है। शौण्ड मे 'उत्सौन्दर्यादिषु' (१-४४) से औ को उ होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होता है।

५६० सुन्देरं

इसकी मूल प्रकृति 'सौन्दर्यम्' है सर्वप्रथम 'उत्सौन्दर्यादिषु' (१-४४) से औ को 'उ' होने पर 'ए शय्यादिषु' (१-५) से द के अ को ए होने पर 'यथितद्वर्गान्त' (४-१७) से न को बिन्दु होने पर 'तूर्य धैर्य सौन्दर्याश्चर्य पर्यन्तेषुर' (३-१८) से र्य को र होने पर 'सोर्बिन्दुर्नपु सके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

५६१ सुप्पणहा, सुप्पणी

इनकी मूल प्रकृति 'शूर्पणखा' है। सर्वप्रथम 'शषो स' (२-४२) से श् को स होने पर 'सन्धावचाम् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से अ को उ होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र का लोप हुआ तथा 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से प को द्वित्व होने पर 'नोण. सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण् होने पर 'आदीतौबहुलम् (५-२४) से अन्त मे विकल्प से आ और ई होने पर 'खघ थ धमा ह' (२-२७) से ख को ह होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

५६२ सूई

इसकी मूल प्रकृति 'सूची' है। **'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोपः'** (२-२) से च् का लोप होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६३ सेलो

इसकी मूल प्रकृति 'शैल.' है जिसका अर्थ पहाड है। **'शर्षो स'** (२-४२) से श को स होने पर **'ऐत् एंत'** (१-३५) से ऐ को ए होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६४ सेच्चं

इसकी मूल प्रकृति **'शैत्य'** है। **'शषो स'** (२-४३) से श को होने पर **'ऐत् एत्'** (१-३५) मे ऐ को ए होने पर **'त्यथ्य द्या च छ जा'** (३-२७) से त्य को च होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से च को द्वित्व होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६५ सेज्जा

इसकी मूल प्रकृति **'शय्या'** है। **'शषो स'** (२-४३) से श को स होने पर **'ए शय्यादिषु'** (१-५) मे अ को ए होने पर **'र्य शय्याभिमन्युषुजः'** (३-१७) से **'य्य'** को ज् होने पर **शेषादेशयो द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ज् को द्वित्व होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६६ सेव्वा, सेवा

ये शब्द सेवा से वने हैं। **'सेवादिषु च'** (३-५८) से व को विकल्प से द्वित्व होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

५६७ सोअमल्ल

इसकी मूल प्रकृति **'सौकुमार्यम्'** है। सर्वप्रथम **'औत ओत्'** (१-४१) से औ को ओ होनेपर **'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप'** (२-२) से क का लोप होने पर **'अन् मुकुटादिषु'** (१-२२) से उ को अ होने पर **'सन्धाव चा मज लोप विशेषा बहुलम्'** (४-१) से मा के आ को अ होने पर **'पर्यस्त पर्याण सौकुमार्येषुल'** (३-२१) मे र्य को ल होने पर **शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से ल को द्वित्व होने पर **'सोविन्दुर्नपुंसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६८ सोत्तं

इसकी मूल प्रकृति 'स्रोत' है। **सर्वत्रलवरां'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'अन्त्य हल'** (४-६) से स् का लोप होने पर **'नीडादिषुच'** (३-५२) से तें

को द्वित्व होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५६९ सोमालो, सुउमालो

इनकी मूल प्रकृति 'सुकुमारम्' है। सर्वप्रथम 'नवा मयूख लयण चतुर्गुण, चतुर्थ, चतुर्दश चतुर्वार सुकुमार कुतहलो दूखलोलूखले' (हेमचन्द्र) के अनुसार 'सुकु' के स्थान पर सो विकल्प मे होता है और 'हरिद्रादीना रोल.' (२-३०) से र को ल होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर सोमालो प्रयोग वनता है। जिस पक्ष मे ओ नही होता वहा 'कगचजतद पयवां प्रायोलोपः' (२-२) से क् का लोप होने पर और शेपकार्य पूर्ववत् होने परे 'सुउमालो' रूप वनता है।

५७० सोस्सं

इसकी मूल प्रकृति 'शुष्म' और 'शुष्मा' है। शुष्म का अर्थ पराक्रम है और शुष्मा का अर्थ अग्नि है। 'शपो सः' (२-४३) से श् को स् होने हर और ष् को भी स होने पर 'उत ओत् तुण्ड रूपेषु' (१-२०) मे ओ होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से म् का लोप होने पर 'शेषादेशयो दित्वमनादौ' (३-५०) से स् को द्वित्व होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'सोस्सं' प्रयोग वनता है।

५७१ सोम्मो

इसकी मूल प्रकृति 'सौम्य.' है। 'औत ओत्' (१-४१) से औ को ओ होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) मे य् का लोप होने पर शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से म् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

५७२ सोरिअं

इसकी मूल प्रकृति शौर्यम् है। 'शपो स' (२-४३) से श् को स होने पर 'औत ओत्' (१-४१) मे औ को ओ होने पर 'चौर्यसमेषुरिअ' (३-२०) से र्य को रिअ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५७३ हडक्के

इसकी मूल प्रकृति 'हृदयम्' है। मागधी प्राकृत मे यह रूप वनता है। 'हृदयस्य हडक्क.' (११-६) हृदय को 'हडक्क' आदेश होता है। अतइदेतौलुक्च' (११-१०) से ए होने पर यह प्रयोग वनता है।

५७४. हणुमा, हणुमन्तो—

इनकी मूल प्रकृति 'हनुमान्' है। 'नोण सर्वत्र' (२-२२) से न् को ण होने पर 'क्वचिदामतुपोऽन्त्यस्य मन्तोवा दृश्यते क्वचित्' (वार्तिक सूत्र) से मतुप् के स्थान पर आ भी होता है और पक्ष मे 'मन्त' भी होता है। यह वार्तिक 'आल्विल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुप' (४-२५) इस सूत्र पर है। इससे अ होने पर हणुमा और 'मन्त' होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'हणुमन्तो' यह रूप बनता है।

५७५. हत्थो—

इसकी मूल प्रकृति 'हस्त' है। 'स्तस्यथ' (३-१२) से स्त को थ होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से थ् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्वं' (३-५१) से पूर्व थ् को त् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

५७६. हसो—

इसकी मूल प्रकृति 'ह्रस्व' है जिसका अर्थ छोटा है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र तथा व् का लोप होने पर 'नक्रादिषु' (४-१५) से बिन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५७७. हरिसो—

इसकी मूल प्रकृति 'हर्ष' है। 'शषो स' (२-४३) से ष् को स् होने पर 'इ श्री ह्रीक्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से संयुक्त को विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होने पर तथा इ होने पर 'अत् ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

५७८. हलद्दा, हलद्दी—

इनकी मूल प्रकृति 'हरिद्रा' है। जिसका अर्थ हल्दी है। 'अत् पथि हरिद्रा पृथिवीषु' (१-१३) से इ को अ होने पर 'हरिद्रादीनां रोल' (२-३०) से र् को ल होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयो-द्वित्वमनादौ' (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर 'हलद्दा' रूप बनता है। पर 'आदीतौ बहुलम्' (५-२४) से विकल्प से आ को ई होने पर 'हलद्दी' रूप बनता है।

५७९. हलिओ, हालिओ—

इनकी मूल प्रकृति 'हालिक' है जिसका अर्थ हल से काम करने वाला है। 'कगचजतद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'अदातो यथा-दिषुवा' (१-१०) से आ को विकल्प से अ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

५८०. हविं—

इसकी मूल प्रकृति 'हविष्' है जिसका अर्थ यज्ञ मे डालने वाली सामग्री है। 'अन्त्यहल' (४-६) से ष् का लोप होने पर 'सोंविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५८१. हसिरो—

इसकी मूल प्रकृति 'हसन शील' है। 'तृण इर शीले' (४-२४) मे 'इर' प्रत्यय होने पर 'अत ओत सों' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

५८२. हिअअ—

इसकी मूल प्रकृति 'हृदयम्' है। महाराष्ट्री तथा शौर सेनी मे यह रूप वनता है। 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से ऋ के स्थान पर इ होने पर 'कगचजतद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द् और य् का लोप होने पर 'सोंविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५८३. हितअकं—

इसकी भी मूल प्रकृति 'हृदयम्' है। पैशाची प्राकृत मे यह रूप वनता है। 'हृदयस्य हितअक' (१०-१४) से हृदय के स्थान पर 'हितअक' यह आदेश होता है।

५८४. हिरी—

इसकी मूल प्रकृति 'ह्री' है जिसका अर्थ लज्जा है। 'इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से सयुक्त को विप्रकर्ष होने पर इ होकर पूर्व स्वरता होने पर 'हिरी' रूप वनता है।

५८५ हुअं—

इमकी मूल प्रकृति 'भूतम्' है। 'क्तेहु' (२-२) से भू को हु होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सोंविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

५८६. वग्घो—

यह प्राकृत प्रयोग सस्कृत के व्याघ्र का वनता है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का भी लोप हुआ और 'सन्धा वचामज्लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से अ होने पर (ह्रस्व होने पर) 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से घ् को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज: पूर्व' (३-५१) से पूर्व घ को ग् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

प्राकृत भाषाओं में
सर्वनाम, निपात, कारक तथा क्रियाये

१ अ अं

यह सर्वनाम सस्कृत के 'अयम्' का रूप है 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'मो विन्दु' (४-१२) से म् को विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२ अ इ

सस्कृत के 'अयि' और 'अपि' के स्थान पर यह प्रयुक्त होता है। 'अइ बले सभाषणे' (९-१२) से यह निपात सज्ञक है। 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से प् अथवा य का लोप होने पर यह प्रयोग सिद्ध हो सकता है।

३ अरे

यह निपात है और सभाषण, रति, कलह तथा आक्षेप अर्थों मे 'रे अरे हिरे सभाषण रतिकलहाक्षेपेषु' (९-१५) मे निपात सज्ञा होती है।

४ अकुसो

इसकी मूल प्रकृति 'अंकुश' है। 'शषो स' (२-४३) से श् को स् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर प्रयोग वनता है।

५ असो

इसकी मूल प्रकृति 'अश' है। 'शषो स' (२-४३) से श् को स् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

६ अङ्को, अंको

इसकी प्रकृति 'अङ्क' है। 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) से विकल्प से विन्दु तथा वर्ग का अन्तिम अक्षर ङ् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७ अङ्कोल्लो

इसकी मूल प्रकृति 'अङ्कोल.' है यह एक वृक्ष का नाम है। 'अङ्को लेल्ल' (२-२५) से ल के स्थान पर ल्ल होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है। अङ्कोट शब्द से 'अकोलो' यह प्रयोग वनता है। 'अङ्कोटेल.' इस सूत्र से ट को ल होने पर 'ययितद्वर्गान्त' (४-१७) से विन्दु होने पर यह रूप हो जाता है।

८ अंगुली

यह शब्द 'अङ्गरी' से वना है। 'हरिद्रादीनांरोल:' (२-३०) से र का ल होने पर यह सिद्ध होता है।

९ अच्छ

अस धातु से वर्तमान काल मे तिङ् के योग मे 'अस्तेरच्छ.' (१२-१९) से अच्छ आदेश होने पर यह प्रयोग होता है।

१० अत्थि

इसकी मूल प्रकृति अस्ति है। 'तिपात्थि' (१२-२०) से 'त्थि' आदेश होने पर 'अस्थि' प्रयोग वनता है।

११ अच्छं

इसकी मूल प्रकृति 'अक्ष' है। 'अक्ष्यादिषु च्छ' (३-३०) से क्ष को छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज. पूर्वः' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर यह प्रयोग वनता है।

१२ अच्छीहिं

सस्कृत के अक्षिभ्याम्' के अर्थ मे 'अच्छीहिं' प्रयुक्त होता है। प्राकृत भाषाओ मे द्विवचन के न होने से भ्याम् के अर्थ मे भिस् (वहु वचन) यह विभक्ति आती है इस प्रकार अक्षि + भिस् ऐसी स्थिति मे 'अक्ष्यादिषुच्छ' (३-३०) से क्ष के स्थान पर छ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज. पूर्व' (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर 'पृष्ठाक्षिप्रश्ना स्त्रियां वा' (४-२०) से स्त्रीलिंग होने पर स्त्रीलिंग मे ई होने पर 'भिसोहिं' (५-५) से भिस् के स्थान पर 'हिं' यह आदेश होने पर 'अच्छीहिं' यह रूप वनता है।

१३ अणुत्तन्त, अणुवत्तन्त

इनकी मूल प्रकृति 'अनुवर्तमान' है। 'नोण· सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) मे र् का लोप होने पर 'यावदादिषुवस्य'

(४-५) से व् का विकल्प से लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'न्त माणौशतृ शानचो' (७-१०) से मान (शानच् प्रत्यय) के स्थान पर 'न्त' होने पर जिस पक्ष मे व का लोप होता है वहाँ 'अणुत्तन्त' यह रूप बनता है और जहाँ व का लोप नही होता वहाँ 'अणुवत्तन्त' यह प्रयोग बनता है ।

१४ अण्णहावअणं

इसकी मूल प्रकृति 'अन्यथावचनम्' है । 'अधो मनयाम्' (२-२) से य् का लोप होने पर 'नोणः सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'शेषादेशयो-र्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ण को द्वित्व होने पर 'ख घ थ ध भां ह (२-२७) से थ को ह होने पर 'अन्यथा' का 'अण्णहा' रूप बनता है । वचनम् मे 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप.' (२-२) से च् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (२-३०) से विन्दु होने पर वअण रूप बनता है फिर दोनो को मिलाने पर 'अण्णहावअणं' यह प्रयोग होता है ।

१५ अत्तुं

'अद् भक्षणे' इस धातु से तुमुन् प्रत्यय से 'अत्तुं' यह रूप बनता है । अद् के द का 'उपरिलोप' क ग ड तदप षसाम्' (३-१) से लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'मोविन्दु.' (४-१२) से विन्दु होने पर 'अत्तुं' बनता है ।

१६ अतुलं

यह शब्द 'अतुलम्' से बना है । 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप.' (२-२) से त् को लोप प्राप्त था पर जहा श्रुति सुख (कानो को अच्छा लगना) होता है वही लोप होता है इसीलिये सूत्र मे 'प्राय' यह शब्द है अत त का लोप नही होता और 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु हो जाने पर यह प्रयोग बनता है ।

१७ अधीरो

इसकी मूल प्रकृति 'अधीर.' है । 'ख घ थ ध भां ह' (२-२७) से ध को ह होना चाहिये था पर प्राय नही होता अत ध को ह न होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है ।

१८ अपारो

इसकी प्रकृति 'अपार' है 'क ग च ज तदपयवां प्रायोलोप.' (२-२) से प् का लोप प्राप्त था पर 'प्राय.' होने से यहा नही होता और 'अत ओत् सो:' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१९ अमू

सस्कृत के अदस्+सुप् से यह रूप बनता है। 'अदसो दो मु.' (६-२३) से द को मु होने पर 'अन्त्यहलः' (४-६) से स् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ.' (५-१२) से मु को दीर्घ होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से सुप् का भी लोप होने पर 'अमू' रूप बनता है। सस्कृत मे 'असौ' रूप होता है।

२० अवरं

इसकी प्रकृति 'अपरम्' है। 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'मो बिन्दुः' (४-१२) से बिन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

२१ अव्वो

सस्कृत के 'अहो' इस निपात के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे अव्वो' प्रयोग होता है। 'अव्वो दुख सूचना समावनेषु' (९-१०) से यह रूप निपतित है।

२२ असो, अम्सौ

इनकी मूल प्रकृति 'अस.' है जिसका अर्थ कन्धा है। 'नञोर्हलि' (४-१४) से न् को बिन्दु तथा विकल्प से म् होने पर 'अत ओत् सोः (५-१) से ओ होने पर ये दोनो रूप बनते है।

२३ अह्म अह्माण अह्मे

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से षष्ठी के बहुवचन मे आम् होने पर 'अस्माकम्' रूप बनता है। उसी अस्माकम् के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे 'नज्झणो, अह्म, अह्माण,' अह्मे ये चार आदेश होते हैं।

२४ अह्मे

अस्मद् शब्द से जस् (प्रथमा के बहुवचन और शस् द्वितीया के बहुवचन) मे क्रम से वयम् तथा अस्मान् रूप बनते हैं। प्राकृत भाषाओं मे उनके स्थान पर 'अह्मे जस्शसो' (६-४३) से 'अह्मे' आदेश होता है।

२५ अह्मेहि

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से तृतीया के बहुवचन मे भिस् होता है और अस्मद्+भिस् से अस्म भि रूप बनता है। प्राकृत भाषाओ मे 'अह्मेहि भिसि' (६-४७) से 'अह्मेहिं' यह प्रयोग बनता है।

२६ अह्माहितो, अह्मासुंतो

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से भ्यस् होने पर अस्मभ्यम् रूप बनता है। उसी के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे **'अह्माहितो अह्मासुंतो भ्यसि'** (६-४८) से ये दोनो रूप बनते हैं।

२७ अह्मेसु

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से सप्तमी के बहुवचन मे सुप् होने पर अष्मासु रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे **'अह्मेसु सुपि'** (६-५३) से यह प्रयोग बनता है।

२८ अवक्खइ

सस्कृत मे **'दृशिर् प्रेक्षणे'** इस धातु से देखने अर्थ मे पश्यति यह प्रयोग होता है। उसी का प्राकृत मे **'अवक्खइ'** रूप भी बनता है। **'दृशे॰ पुलअणि-अक्क अवक्खा'** (८-६९) से अवक्ख होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

२९ अवजलं

इसकी मूल प्रकृति **'अपजलम्'** है। **'पोव'** (२-१५) से प को व होने पर **'सोर्विन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है। **'कगचजतदपयवा प्रायो लोप.'** (२-२) से प का लोप सूत्र मे प्राय होने से नही होता।

३० अवरि

इसकी मूल प्रकृति **'उपरि'** है। **'अन्मुकुटादिषु'** (१-२२) से उ को अ होने पर **'पोव.'** (२-१५) मे प को व होने पर यह प्रयोग बनता है।

३१ ओवासइ, अववासइ

ये दोनो रूप **'अवकासते'** से बनते हैं। अव उपसर्ग पूर्वक कासृ धातु से सस्कृत मे अवकासते बनता है। **'कासेर्वास.'** (८-३५) से **'कास'** को **'वास'** आदेश होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से ति को इ होने पर **'अववासइ'** रूप बनता है। पक्ष मे **'ओदवापयो'** (४-२१) से विकल्प से अव को ओ होने पर **'ओवासइ'** रूप बनता है।

३२ ओवाहइ, अववाहइ

सस्कृत मे अव उपसर्ग पूर्व **'गाहू विलोडने'** धातु से **'अवगाहते'** रूप बनता है। प्राकृत भाषाओं मे **'अवाद्गाहेर्वाह'** (८-३४) से गाह के स्थान

पर वाह होने से अव+वाह+ति होने पर 'ततिपोरिदेतो' (७-१) से ति को इ होने पर 'अववाहइ' रूप बनता है पर पक्ष मे 'ओदवापयो' (४-२१) से अ व को ओ होने पर 'ओवाहइ' रूप बनता है।

३३ अवहरइ

इसकी प्रकृति 'अपहरति' है। 'पोव' (२-१५) से प को व होने पर 'ततिपोरिदेतो' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३४ ओहासो, अवहासो

इसकी मूल प्रकृति 'अवहास' है। 'ओदवापयो' (४-२) से अव को विकल्प से ओ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

३५ अवहोवास

सस्कृत मे 'उभयपार्श्वम्' का अर्थ दोनो ओर है उसी का प्राकृत मे 'अवहोवास' यह शब्द 'दाढादयोबहुलम्' से निपात् रूप मे प्रयुक्त होता है।

३६ सओसारिअं, अवसारिअं

सस्कृत मे 'अपसारितम्' का प्रयोग दूर हटाने के अर्थ मे होता है उसी अर्थ मे ये दोनो प्रयोग होते है। 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'ओदवापयो' (४-२१) से विकल्प मे अ व को ओ होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो प्रयोग बनते हैं।

३७ असुं, असु

ये शब्द सस्कृत के असु से बने हैं जिनका अर्थ प्राण है। 'मांसादिषुवा' (४-१६) से विकल्प से विन्दु होने पर ये दोनो रूप बनते है।

३८ अस्स

इदम् शब्द से ङस् (षष्ठी एक वचन) मे 'अस्स' रूप बनता है। सर्व प्रथम 'स्सोङस' (५-८) से ङस् के स्थान पर स्स होता है और 'स्सस्सिमोरद्वा' (६-१५) से विकल्प से इदम् को अ होने पर अस्स बनता है और जहाँ अ नही होता वहा 'इमस्स' रूप बनता है।

३९ अस्सि

इदम् शब्द से सप्तमी के एक वचन मे ङि के योग मे इदम्+ङि इस अवस्था मे 'ङे स्सिम्मित्था' (६-२) से स्सि होने पर 'स्सस्सिमोरद्वा' (६-१५) से विकल्प से इदम को अ होने पर 'अस्सि' रूप बनता है और जहा अ नहीं होता वहाँ 'इमस्सि' रूप बनता है।

४० अह—

सस्कृत मे अदस् शब्द से सु होने पर 'असौ' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे 'अह' होता है। 'हश्चसौ' (६-२४) से द को ह होने पर 'अन्त्यहलः' (४-६) से स् का लोप होने पर यह रूप बनता है।

४१ अमू—

अदस् शब्द से सुप् होने पर यह रूप भी बनता है। 'अदसो दो मुः' (६-२३) से द को मु होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से स् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घः' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४२ अमूओ—

अस्मद् शब्द से प्रथमा बहुवचन 'जस्' के होने पर 'अदसो दो मु.' (६-२३) से द् को मु होने पर 'जसश्चओ यूत्वम्' (५-१६) वे जस् को ओ होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) मे स् का लोप होने पर यह प्रयोग बनता है।

४३. अमूइ—

अदस् शब्द से जस् होने पर 'अदसो दो मु' (६-२३) से द को 'मु' होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'इज्जश्शसोर्दीर्घश्च' (५-२६) से इ होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से स् का लोप होने पर यह प्रयोग बनता है।

४४ अहम्मि—

अस्मद् शब्द से अम् होने पर 'अहम्मिरमिच' (६-४१) से 'अहम्मि' होने पर यह रूप बनता है।

४५ अहके—

मागधी मे अस्मद् शब्द से सु होने पर 'अस्मद सौ हके हगे अहके' (११-९) से अहके होने पर यह प्रयोग बनता है।

४६. अहिमज्जू—

इसकी मूल प्रकृति 'अभिमन्यु' है। 'खघथधभांह' (२-२७) से भ को ह होने पर 'र्यशय्याभिमन्युषुज' (३-१७) से 'न्य' को ज होने पर 'शेषा-देशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ज् को द्वित्व होने पर 'सुभिस्सुप्सुदीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

४७. आअच्छदि—

इसकी मूल प्रकृति 'आगच्छति' है। 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-२) मे ग् का लोप होने पर 'अनादावुजोस्तयोर्दधौ' (१२-३) त को द होने पर यह प्रयोग बनता है।

४८ आअदो—

इसकी मूल प्रकृति 'आगतः' है। 'कगचजतदपयवां प्रायो लोप' (२-२) से ग् का लोप होने पर 'ऋत्वादिषु तोद' (२-७) से त को द होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग वनता है।

४९ आगडे—

यह रूप भी आगत का है। 'कृञ्मृङ्गमां क्तस्य ड' (११-१५) से त को ड होने पर 'अतइदेतौलुक्च' (११-१०) से ए होने पर यह प्रयोग वनता है।

५० आणालखंभो, आणालक्खंभो—

इसकी मूल प्रकृति 'आलान स्तम्भ' है जिसका अर्थ वाधने का खम्भा है। सर्व प्रथम ल, न अक्षरो में परस्पर परिवर्तन हो जाता है अर्थात् न पहले होता है और ल वाद मे आता है। 'आलानेलनो' (४-२९) से यह कार्य होता है। 'नोण सर्वत्र' (३-४२) से न को ण होने पर 'स्तम्भे ख' (३-१४) स्त' को स्थ होने पर 'यथि यावद् वर्गान्त' (४-१७) से वर्गान्त विन्दु होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) ओ होने पर आणालखभो रूप वनता है पर 'समासे वा' (३-५७) से ख को विकल्प से द्वित्व होने पर पूर्व ख को 'वर्गेषुयुजा पूर्वः' (३-५१) से क् होने पर 'अणालक्खभो' रूप वनता है।

५१ आसि., अहेसि—

सस्कृत अस् धातु से भूत काल मे 'आसीत्' रूप वनता है उसी का प्राकृत भापा मे अस् धातु से 'आस' वनता है। 'अस्तेरासि.' (७-२५) से 'आस' नियतित है। हेमचन्द्र के अनुसार 'तेनास्ते रास्य हेसी' (८-३-७६४) से 'अहेसि' यह प्रयोग भी होता है।

५२. इअ—

इसकी मूल प्रकृति इति जिसका अर्थ अन्त या समाप्ति है। 'इतेस्त पदादे.' (१-१४) से ति की इ को अ होने पर 'कगचजतव पयवां प्रायो लोप' (२-२) से त का लोप होने पर यह रूप वनता है।

५३ इअरस्सि, इअरम्मि, इअरत्थ—

इतर शब्द मे सप्तमी के एक वचन ङि मे 'इतरस्मिन्' रूप वनता है उसी के प्राकृत भापाओ मे ये तीनो रूप वनते हैं। इतर + ङि इस अवस्था मे 'ङेः स्सिम्मित्था' (६-२) से स्सि, म्मि तथा त्थ होने पर तीनो रूपो मे,

'कगचजतदपयवां प्रायो लोपः' (२-२) से त् का लोप होने पर ये प्रयोग बनते हैं ।

५४ इमो—

इदम्+सु इस अवस्था में **'इदमइमः'** (६-१४) से इदम् को इम होने पर **'सन्धावचाम् लोप विशेषा बहुलम्'** (४-१) से अ का लोप होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है ।

५५ इमे—

इदम्+जस् इस अवस्था मे **'इदम् इमः'** (६-१४) से इम् होने पर **'सर्व देर्जसएत्वम्'** (६-१) से ए होने पर यह प्रयोग बनता है ।

५६ इमं—

इदम् + अम् से **'इदम इम.'** (६-१४) से इम होने पर **'अतो मः'** (५-३) मे अम् के अ का लोप होने पर यह रूप बनता है। **'मोबिन्दु'** (४-१२) से बिन्दु भी होता है ।

५७ इमेण—

इदम्+टा इस अवस्था मे **'इदम इम'** (६-१४) से इम होने पर **'एचसुप्यङिङसो'**(५-१२) से ए होने पर **'टार्मोर्ण'** (५-४) से ट को ण होने पर यह प्रयोग बनता है ।

५८ इमेहिं—

इदम् + भिस् इस अवस्था मे **'इदम इम'** (६-१४) से इम होने पर **'एचसुप्यङिङसो'** (५-१२) से ए होने पर **'भिसोहिं'** (५-५) से हिं होने पर यह प्रयोग बनता है ।

५९. इह—

इदम् + ङि इस अवस्था में **'ङेर्देन ह'** (६-१६) से इम् को ह होने पर यह रूप बनता है ।

६० इमिणा

अदम् + टा इस अवस्था मे **'इदमेतद्‌क्किं यत्तद्भ्यष्टा इणा वा'** (६-३) मे टा को इण् होने पर **'इदम इम'** (६-१४) से इदम् को इम होने पर **'सन्धावचामज्लोप विशेषाबहुलम्'** (४-१) से अ का लोप होने पर यह रूप बनता है ।

६१. इदं, इणं, इणमो—

ये रूप इदम् + सु अथवा इदम् + अम् मे नपुमक लिग मे होते हैं। 'नपुंसके स्वमोरिदमिणमिणमो' (६-१८) से इद इण इणमो ये आदेश होते हैं।

६२. इमेसिं—

इदम् + आम् मे 'इदम इम' (६-१०) से इम होने पर 'आमएसिं' (६-४) मे एसिं होने पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषा बहुलम्' (४-१) मे अ का लोप होने पर यह प्रयोग बनता है।

६३. इसि—

इमकी मूल प्रकृति 'ईषद्' है जिसका अर्थ थोडा या कम है। सर्वप्रथम 'सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुल' (४-१) से ई को इ होने पर 'इदीषत् पक्व स्वप्न वेतस व्यजन मृदङ्गाऽङ्गारेषु' (१-३) मे ष के अ को इ होने पर 'शषो स' (२-४३) से ष को स होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) मे द् का लोप होने पर यह रूप बनता है।

६४. उअ—

सस्कृत मे पश्य धातु देखने के अर्थ मे है उसी को हेमचन्द्र के अनुसार विकल्प से 'उअ पश्ये' (हेमचन्द्र) के अनुमार 'उ अ' हो जाता है और यह रूप बनता है।

६५. उक्का—

इसकी मूल प्रकृति उल्का है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से ल का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से क को द्वित्व होने पर यह रूप बनता है।

६६. उक्खअं, उक्खाअ

इनकी मूल प्रकृति 'उत्खातम्' है। सर्वप्रथम उ त् के त का 'उपरिलोप. क ग ड त द प षसाम्' (३-१) से त् का लोप होने पर 'अवातो यथादिषुवा' (१-१०) से आ को विकल्प से अ होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ख को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व.' (३-५१) से पूर्व ख को क् होने पर दूसरे त का 'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप.' (२-२) से लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर 'उ क्ख अ' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे अ नही होता वहा सब कार्य पूर्ववत् होने पर 'उ क् खा अ' रूप बनता है।

६७ उच्छित्तो—

इमकी मूल प्रकृति **'उत्क्षिप्तः'** है। सर्वप्रथम **'उपरिलोप क ग ड त द प षसाम्'** (३-१) से पहले त् तथा प् का लोप होने पर **'अक्ष्यादिषुच्छ'** (३-३०) से क्ष को छ होने पर **'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से छ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युजः पूर्व'** (३-५१) से पूर्व छ को च् होने पर अन्तिम त को भी **'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से द्वित्व होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

६८ उद्धुमाई—

इसकी मूल प्रकृति **'उद्धमति'** है जिसका अर्थ आग को फूकना या जलाना है। सर्वप्रथम **'उद्ध्म उद्धुमा'** (८-३२) से उद् उपसर्ग पूर्वक ध्मा धातु को **'उद्धुमा'** होने पर ति प्रत्यय के योग मे **'ततिपोरिदेतौ** (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

६९ उब्भवइ—

इसकी मूल प्रकृति **'उद्भवति'** है। सर्वप्रथम **'प्रादेर्भवः'** (८-३) से भुव् को भव होने पर **'उपरिलोप कगडतदप षसाम्'** (३-१) से द् का लोप होने पर **'शेषादेयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से भ को द्वित्व होने पर **'वर्गेषु युजः पूर्व'** (३-५१) से पूर्व भ को व् होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७० उलवो—

इसकी मूल प्रकृति **'उपल.'** है जिसका अर्थ लम्बी चौडी लता है। **'पोवः'** (२-१५) से प को व होने पर **'अत ओत् सो'** (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७१ उव्विवइ—

इसकी मूल प्रकृति **'उद्विजते'** है। सर्वप्रथम उत् के त् का लोप **'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप'** (२-२) मे होने पर **'उदोविज.'** (८-४३) से ज् को व होने पर पूर्व व को **'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ'** (३-५०) से द्वित्व होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७२ उव्वेल्लइ—

इसकी मूल प्रकृति **'उद्वेष्टते'** है। सर्वप्रथम **'उपरिलोप. क ग ड त द प षसाम्'** से त् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से व को द्वित्व होने पर **'उत्समोर्ल'** (८-४१) से ष्ट को ल होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व**

मनादौ' (३-५०) से ल को भी द्वित्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७३ उवसग्गो—

इसकी मूल प्रकृति 'उपसर्गः' है। 'पोवः' (२-१५) से प को व होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ग को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

७४ एअं, एव्वं—

इसकी मूल प्रकृति 'एवम्' है। 'यावदादिषुवस्य' (४-५) से व का लोप विकल्प से होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) मे विन्दु होने पर यह रूप बनता हैं। पर जिस पक्ष मे व् का लोप नही होता वहा 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे व को द्वित्व होने पर पूर्ववत् विन्दु होने पर यह रूप बनता है। एव का ए अ रूप बनता है।

७५ एक्कं, एअं—

इनकी मूल प्रकृति 'एकम्' है 'सेवादिषुच' (३-५८) से विकल्प मे द्वित्व होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'एक्क' रूप बनता है पर जिम पक्ष मे द्वित्व नहीं होता वहा 'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप' (२-२) से क् का लोप होने पर पूर्ववत् विन्दु होने पर 'एअ' रूप बनता है।

७६ एण्हिं—

इसकी मूल प्रकृति 'इदानीम्' है। 'दाढादयो वहुलम्' (४-३३) से इदानीं के स्थान पर 'एण्हि' निपात होता है।

७७ एद्दहं, एत्तिअं—

इसकी मूल प्रकृति 'एतावान्' है। एतद् शव्द से 'परि माणे किमादिभ्यो-भवन्ति केद्दहादय' इस वार्तिक से दह् और त्तिअ ये प्रत्यय होते हैं— 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

७८ एत्तो—

'एतद्' शव्द से ङ स् विभक्ति मे सस्कृत मे एतस्मात् बनता है उसी का 'एतो' प्रयोग प्राकृत भाषाओं मे होता है। एतद् + ङस् से 'अन्त्यहल' (४-६) से द् का लोप होने पर 'त्तो ङसे' (६-२०) से ङ स् को 'त्तो' होने पर 'त्तो त्थयोस्तलोप.' (६-२१) से त का लोप होने पर यह रूप बनता है।

७९ एत्थ

ऐतद्+ङि से सस्कृत मे 'एतस्मिन्' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'एत्थ' बनता है। द् का लोप 'अन्त्यहलः' (४-६) से होने पर त का लोप 'त्तो त्थयोस्तलोप.' (६-२१) से होने पर 'ङे स्सि म्मित्था.' (६-२) से 'त्थ' होने पर यह रूप बनता है।

८० एस, एसो

एतद् शब्द से सु होने पर 'अन्त्यहलः' (४-६) से द् का लोप होने पर 'तदेतदो. स. सावनपु सके' (६-२८) से त को स होने पर 'एतद सा वो त्वं वा' (६-१९) से विकल्प से ओ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

८१. एते, एदे

एतद् से जस् होने पर 'अन्त्यहल.' (४-६) से द् का लोप होने पर 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-३) से त को द होने पर 'सर्वादेर्जसएत्वम्' (६-१) से ए होने पर एते तथा एदे विकल्प से द होने पर बनते हैं।

८२ एदेण, एदिणा

एतद् शब्द से टा होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से द् का लोप होने पर 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-५) से त को द होने पर 'इदमेतत्कियद्त्ताद् भ्यष्टा इणा वा' (६-३) से टा को विकल्प से इण् होने पर 'सन्धावचा मज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से अ का लोप होने पर एदिणा रूप बनता है पर जिस पक्ष में इण् नही होता वहा पूर्ववत् द् का लोप होने पर तथा त को द होने पर 'एचसुप्यङिङसोः' (५-४) से ए होने पर टामोर्ण' (५-४) से ण होने पर एदेण प्रयोग बनता है।

८३. एदेसिं, एदाणं

एतद् शब्द से षष्ठी के बहुवचन मे आम् होने पर 'अन्त्यहलः' (४-६) से द् का लोप होने पर अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ (१२-३) से त को द होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से अ का लोप होने पर आमएसिं' (६-४) से विकल्प से आम् को एसिं होने पर 'एदेसिं' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे 'एसिं' नही होता वहा पूर्ववत् द् लोप तथा त को द् होने पर 'टामोर्ण.' (५-४) से ण होने पर 'जश्शसृङस्यासु दीर्घ' (५-२१) से दीर्घ होने पर ये दोनों रूप बनते हैं।

८४ एरिसो

इसकी मूल प्रकृति 'ईदृश' है। 'एन्नीडापीड कीदृगीदृशेषु' (१-१९) से ई को ए होने पर 'कगचजतदपयवा प्रायो लोप' (२-२) से द् का लोप होने

पर 'क्वचिदयुक्तस्यापि' (१-३१) से ऋ को रि होने पर 'शषो स (२-४३) से ण् को स् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

८५ एशि, एशे, एश

सस्कृत के एष से ये तीनो शब्द वनते हैं। 'षसो श.' (११-३) से ष को श होने पर 'अतइदेतौलुक्च' (११-१०) से विकल्प से इ, ए तथा लोप होने पर एशि, एशे तथा एश ये रूप वनते हैं।

८६ कअं

इसकी मूल प्रकृति 'कृतम्' है। 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से त का लोप होने पर सोर्विन्दुर्न-पुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

८७ काहे कइआ

इसकी मूल प्रकृति 'कदा' है। 'आहे इआ काले' (६-८) से आहे और इआ आदेश होने पर 'काहे' और 'कइया' रूप वनते है।

८८ कडे

यह शब्द 'कृतः' के रूप मे प्रयुक्त होता है। 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर 'कृञ्मृङ्गमांक्तस्यड' (११-१५) से क्त के स्थान पर ड होने पर अतइदेतौलुक्च' (११-१०) से ए होने पर यह प्रयोग वनता है।

८९ कढइ

सस्कृत की 'क्वथनिष्पाके' धातु है जिससे 'क्वथति' रूप वनता है उसी का 'कढइ' रूप वनता है 'क्वथेर्ढः' (८-३९) से 'वथ्' को ढ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

९० कत्तरी

यह शब्द 'कर्तरी' से वना है। 'सर्वत्रलवराम् (३-३) से र् का लोप होने पर 'तस्यट' (३-२२) से त को ट प्राप्त था पर 'नधूर्तादिषु' (३-३४) से नही होता।

९१ को, के, केण, केहिं

ये चारो रूप सस्कृत के क, के, केन, कै इन रूपो के क्रमश. वनते हैं। 'को' में 'किम क' (६-१३) से किम् को क होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'को' वनता है। किम् + जस् मे 'किम क' (६-१३) से

क होने पर 'सवदिर्जस एत्वं' (६-१) से ए होने पर तथा 'सन्धाव चा मज् लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से अ का लोप होने पर 'जशृशशोर्लोप (५-२) से जस् का लोप होने पर 'के' बनता है। किम +टा से 'किम क' (६-१६) से क होने पर 'एचसुप्यडिङसो' (५-१२) से ए होने पर 'टासोर्ण.' (५-४) से ण होने पर 'केण' रूप बनता है। कि+भिस् मे किमः क.' (६-१२) से क होने पर 'एचसुप्यडिङसो·' (५-१२) से ए होने पर 'भिसोर्हि' (५-५) से हिं होने पर 'केहिं' रूप बनता है।

९२ किणा

यह रूप भी विकल्प से किम्+टा का बनता है। 'किम· क·' (६-१३) से किम् को क होने पर 'इतमेतत् कियत्तद्भ्यष्टा इणावा' (६-३) से टा को 'इण' होने पर किणा रूप बनता है।

९३ केसिं

किम्+आम् (षष्ठी के बहुवचन) मे यह प्रयोग बनता है। 'किम. क.' (६-१३) से किम् को क होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से अ का लोप होने पर 'आम एसिं' (६-४) से 'एसिं' होने पर यह प्रयोग बनता है।

९४. कास, कस्स

कि शब्द से ङस् (षष्ठी के एक वचन) मे 'कियत्तद्भ्यो ङस आस' (६-५) से विकल्प से आस होने पर 'किम क' (६-१३) से कि को क होने पर कास बनता है पर जहा आस नही होता वहा 'स्सोङस' (५-८) से स्स होने पर कस्स रूप बनता है।

९५ किस्सा, कीसे, कीआ, कीऐ, कीअ, कीइ

किम् शब्द से ङ्स ङसि, ङि् मे ये रूप भिन्न-भिन्न प्रत्यय होने पर बनते है। 'इद्भ्य· स्सा से' (६-६) से स्सा, से प्रत्यय होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से म् का लोप होने पर 'किस्सा, कीसे' रूप बनते हैं। दीर्घ 'सन्धावचामज्लोप विशेषा बहुलम्' (४-१) से होता है। शेष चारो रूप 'टाङस् ङीनामिदेददात·' (५-२२) से इत् एत् अत् और आत् होने पर बनते हैं।

९६ कत्तो, कदो

किम् शब्द से ङसि (पञ्चमी के एकवचन) मे 'त्तो दो ङसे.' (६-९) से त्तो, दो होने पर और 'किम क·' (६-१३) से किम् का क होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

९७ कधेहि

संस्कृत मे 'कथय' (कहो) जिस अर्थ मे प्रयुक्त होता है उसी अर्थ में शौरसेनी प्राकृत में कधेहि रूप बनता है। 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-३) से थ को ध होने पर 'लादेशेवा' (७-३४) से ए होने पर 'धातोर्भविष्यतिहि' (७-१२) से हि होने पर यह रूप बनता है।

९८. कदुअ

संस्कृत मे 'कृत्वा' (करके) के अर्थ मे 'कदुअ' होता है 'कृगमोर्दुअ' (१२-१०) से दुअ होने पर 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर यह प्रयोग बनता है। हेमचन्द्र के अनुसार 'कडुय करिय' ये दो रूप भी बनते हैं।

९९ कहिं, कस्सि, कम्मि, कत्थ

किम् शब्द से ङि (सप्तमी के एक वचन) मे ये रूप बनते हैं। 'ङहिं' (६-७) से हिं होने पर 'कहिं' रूप बनता है। सर्वत्र 'किम क' (६-१३) से किम् को क होने पर 'ङेस्सि म्मित्था' (६-८) से स्सि, म्मि, त्थ होने पर शेष तीन रूप बनते हैं।

१०० करइ

कृ धातु से 'ऋतोऽर' (८-१२) से अर होने पर कर बनता है और ति को 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह रूप बनता है।

१०१ कुणइ

कृ धातु से 'कृञ कुणो वा' (८-१३) से कुण होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह रूप बनता है।

१०२ करेमि

कृ धातु से 'डुकृञ्कर' (१२-१५) से कर होने पर 'लादेशेवा' (७-३४) से ए होने पर 'इड्मिपोमि' (७-३) से मि होने पर 'करेमि' रूप बनता है।

१०३ करिदाणि

यह रूप कृत्वा से बनता है 'डुकृञ्कर' (१२-१५) से कृ को कर होने पर 'एच क्त्वा, तुमुन् तव्यभविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'क्तो दाणि' (११-१६) से दाणि होने पर करिदाणि प्रयोग बनता है।

१०४ कारेइ

संस्कृत मे ण्यन्त प्रक्रिया (प्रेरणार्थक) मे कृञ् धातु से णिच् प्रत्यय होकर 'कारयति' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'कारेइ' रूप होता है।

सर्वप्रथम 'ऋतोऽर' (८-१२) से ऋ को अर होने पर 'णिचएदादेरत आत्' (७-२६) से अ को आ होने पर और ए होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१०५ करावेइ

यह रूप भी कारयति (करवाता है) का बनता है। 'आवेच' (७-२७) से आव् भी विकल्प से होता है। 'ऋतोऽर' (८-१२) से अर होने पर ए होने पर तथा आव् हो जाने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१०६ कराविअ, कारिअं

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य मे क्त प्रत्यय होने पर सस्कृत मे 'कारितम्' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'कराविअ' रूप होता है। सर्वप्रथम 'ऋतोऽर' (८-१२) से कृ की ऋ को अर होने पर 'आवि· क्त कर्मभावेषुवा' (७-२८) से विकल्प से आवि होने पर क्त के क् त् का लोप 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) से होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है। जहा आवि नही होता वहा 'कारितम्' मे 'क ग च-ज त द पयवा प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर कारिअ बनता है।

१०७ कारिज्जइ, कराविज्जइ

कृञ् धातु से 'मध्येच' (७-२१) से ज्ज प्रत्यय होने पर पूर्ववत् 'ऋतोऽर' (८-१२) से अर होने पर और 'आवि क्त कर्मभावेषुवा' (७-२८) से आवि होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर 'कराविज्जइ' रूप बनता है। सस्कृत के कारितम् से 'कारिज्जइ' रूप बन जाता है।

१०८ करिसइ

यह प्रयोग सस्कृत के कर्षति का बनता है। सर्वप्रथम 'वृष कृष मृष हृषामृतोऽरि' (७-११) से ऋ को अरि होने पर 'शषो सः' (२-४२) से ष् को स् होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१०९ करिसो

इसकी मूल प्रकृति 'करीष' है जिसका अर्थ सूखा गोबर या कण्डा है। 'इदीत पानीयादिषु' (१-१८) से ई को इ होने पर 'शषो. स' (२-४२)

से ष् को स् होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

११० कल्हारं

इसकी मूल प्रकृति 'कह्लारं' है जिसका अर्थ सफेद कमल होता है। 'ह्ल ह्लह्ये षु नलमा स्थिति रूर्ध्वम्' (३-८) मे ह्ल को ल्ह होने पर 'सोर्विन्दु-र्नपुसके' (५-३१) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

१११ कलेसि

इसकी मूल प्रकृति 'कलयसि' है। 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'थास्सिपो सि से' (७-२) से सि होने पर 'लादेशेवा' (७-३४) से ए होने पर 'कलेसि' रूप बनता है।

११२ कसाअ

इसकी मूल प्रकृति 'कषायम्' है जिसका अर्थ गेरूआ रग या काढा है। 'शषो स' (२-४३) से ष् को स होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

११३ कह, कहं

इनकी मूल प्रकृति 'कथम्' है 'ख घ थ ध भां ह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'मासादिषुवा' (४-१६) से विन्दु विकल्प से होने पर ये दोनो प्रयोग बनते हैं।

११४ काहीअ

यह रूप कृञ् धातु से तवतु प्रत्यय मे बनता है। 'कृञ का भूत भविष्यतोश्च' (८-१७) से कृञ् को 'का' होने पर 'एकाचोहीअ' (७-२४) से 'ही अ' आदेश होने पर यह प्रयोग बनता है।

११५ काहिइ

कृञ् धातु से भविष्यत् काल मे यह प्रयोग बनता है। 'कृञ का भूत-भविष्यतोश्च' (८-१७) से का होने पर 'आतोर्भविष्यति हि' (७-१२) से हि होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

११६ काऊण

कृञ् धातु से क्त्वा प्रत्यय मे यह रूप बनता है। सर्वप्रथम 'कृञ का भूतभविष्यतोश्च' (८-१७) से कृञ् को का होने पर 'क्तवा ऊण' (४-२३) से 'ऊण' होने पर यह प्रयोग बनता है।

११७ काअव्वं—

कृञ् धातु से 'तव्यत्' मे यह रूप बनता है। '**कृञ काभूतभविष्यतोश्च**' (८-१७) से का होने पर '**क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप**' (२-२) से त् का लोप होने पर '**अधोमनयाम्**' (३-२) से य् का लोप होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ**' (३-५०) मे व को द्वित्व होने पर '**मोविन्दु**' (४-१२) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

११८ काउं—

कृञ् धातु से सस्कृत में कर्त्तुम् रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'काउं' होता है। '**कृञ का भूतभविष्यतोश्च**' (८-१७) से का होने पर '**क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप.**' (२-२) से त् का लोप होने पर '**मोविन्दु**' (४-१२) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

११९ कातूनं—

कृञ् धातु मे पैशाची प्राकृत मे क्त्वा प्रत्यय के योग मे यह रूप बनता है। '**कृञ का भूतभविष्यतोश्च**' (८-१७) से कृञ् को का होने पर '**क्त्वस्तून**' (१०-१३) से तून आदेश होने पर यह प्रयोग बनता है।

१२० कालासं, कालाअसं—

इनकी मूल प्रकृति '**कालायसम्**' है जिसका अर्थ लोहा है। '**कालायसे यस्यवा**' (४-३) से य का लोप विकल्प से होने पर जिस पक्ष मे य का लोप हो जाता है वहा '**कालास**' रूप '**सोर्विन्दुर्नपु सके**' (५-३०) से विन्दु होने पर होता है और जहा इस सूत्र से य का लोप नही होता वहा '**क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप**' (२-२) से य् का लोप होने पर पूर्ववत् विन्दु होने पर '**कालाअसं**' यह प्रयोग बनता है।

१२१ काहं—

सस्कृत के 'करिष्यामि' अर्थ मे 'काहं' बनता है। '**कृदाश्रुवचि गमिदृशि-विदिरूपाणाकाहं दाहं सोच्छं दोच्छं गच्छं रोच्छं पच्छं वेच्छं**' (७-१६) इस सूत्र से 'काहं' आदेश होता है।

१२२ काहे—

यह रूप '**कदा**' का बनता है। '**किम क**' (६-१३) से किम् को क होने पर '**आहे इआ काले**' (६-८) से 'आहे' होने पर **सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम्** (४-१) से क के अ का लोप होने पर '**काहे**' रूप बनता है।

१२३ किई—

इसकी मूल प्रकृति 'कृति' है। 'इवृष्यादिषु' (१-२८) से ऋ को इ होने पर 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप.' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सुभि-स्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१२४ किणा —

किम् शब्द से टा होने पर 'किम क' (६-१३) से किम् को क होने पर 'इदमेतत्कियत्तद्भ्यष्टा इणावा' (६-३) से इणा होने पर 'सन्धावचामज्लोप-विशेषा बहुलम्' (४-१) में क के अ का लोप होने पर यह रूप बनता है।

१२५ किणइ —

संस्कृत मे 'डुक्री ञ् द्रव्य विनिमये' इस धातु से 'क्रीणायति या क्रीणीते' ये दो रूप बनते हैं उन्ही के प्राकृत 'किणइ' बनता। 'क्रिञ· किण' (८-३०) से किण होने पर 'ततिपो रिदेतो' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

१२६ किणो—

संस्कृत मे 'किन्नु' यह प्रश्नवाचक निपात् या अव्यय है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'किणो' बनता है। 'किणो प्रश्ने' (९-९) से किणो निपात सज्ञक होता हैं। किन्ही आचार्यो के मत से 'कीस' तथा 'किमु' भी प्रश्न वाचक होते हैं।

१२७ किर, किला—

संस्कृत मे अनिश्चित अथवा कही-कही निश्चित अर्थ मे भी 'किल' अव्यय का प्रयोग होता है उसी अर्थ मे प्राकृत भाषाओं में 'इर किर किला' अनिश्चिताख्याने' (९-५) से किर और किला शब्द भी निपतित हैं।

१२८ किरिआ—

इसकी मूल प्राकृत 'क्रिया' है। 'क्लिष्ट श्लिष्ट रत्न क्रिया शार्ङ्गेषु तत्-स्वरवत् पूर्वस्य' (३-६०) से सयुक्त 'क्रि' का विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) होने पर और पूर्व स्वरता होने पर 'किरि' ऐसा रूप बनने पर 'क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'किरिआ' यह प्रयोग बनता है।

१२९ किरीतो—

इसकी मूल प्रकृति 'क्रीत' है। 'इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह गर्हेषु' (३-६२) से इ होने पर तथा सयुक्त का विप्रकर्ष

होने पर पूर्व स्वरता भी होने पर 'किरी' यह रूप बनता है फिर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

१३० किलित्तं—

इसकी मूल प्रकृति 'क्लृप्तम्' है जिसका अर्थ पूरा करना है। सर्वप्रथम 'लत. क्लृप्त इलि' (१-३३) से लृ को 'इलि' होने पर किलि' बनता है फिर "उपरिलोपः क ग ड त द प षसाम्' (३-१) से प् का लोप होने पर 'शेषा-देशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

१३१ किसरो—

इसकी मूल प्रकृति 'कृशर है। 'इदृष्यादिषु' (१-१२) से ऋ को इ होने पर 'शषो सः' (२-४३) से श को स होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१३२ किस्सा—

सस्कृत मे किम् शब्द से ङस् विभक्ति में स्त्रीलिंग मे 'कस्या' बनता है उसी का प्राकृत मे 'किस्सा' होता है। 'इद्म्या स्सा से' (६-६) से ङस् को स्सा आदेश होने पर यह प्रयोग बनता है। कीसे, कीआ, कीए, कीअ, काइ आदि रूप भी ङस् मे बनते हैं।

१३३ कीरइ—

प्राकृत भाषाओ मे यह रूप संस्कृत के 'क्रियते' के रूप में प्रयुक्त होता है। 'हृ कोर्हीरकीरौ' (२-६०) से कृञ् को 'कीर' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१३४ केद्दहं केत्तिअं—

सस्कृत मे परिमाणवाची 'कियत्' शब्द के स्थान पर इनका प्रयोग होता है। 'परिमाणेकिमादिभ्योभवन्ति केद्दहास्य' यह वार्तिक 'आल्वि-ल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुप' (४-२५) पर है इससे दहादि प्रत्यय होकर ये रूप बनते हैं। 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से सर्वत्र विन्दु होता है।

१३५ केरिसो—

कीदृश शब्द का यह रूप बनता है। 'एन्नीडापीड कीदृगीदृशेषु" (१-१९) से ए होने पर 'यवचिद्युक्तस्यापि' (१-३१) से ऋ को रि होने पर 'शषो. स' (२-४३) से श् को स होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

१३६ कोट्टिमं—

इसकी मूल प्रकृति 'कुट्टिमम्' है। 'उत ओत् तुण्डरूपेषु' (१-२०) मे कु के उ को ओ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह प्रयोग वनता है।

१३७ कोत्थुहो—

इमकी मूल प्रकृति 'कौस्तुभ' है। सर्वप्रथम 'औत ओत्' (१-४१) मे औ को ओ होने पर 'स्तस्यथ' (३-१२) से स्त को थ होने 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से थ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्वः' (३-५१) से पूर्व थ् को त होने पर 'ख घ थ ध भा ह' (२-२७) से भ को ह होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

१३८ क्खु—

सस्कृत मे जिन अर्थो मे 'खलु' का प्रयोग होता है उसी के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे 'क्खु' होता है। 'हुं क्खु निश्चय वितर्क सम्भावनेषु' (९-६) से क्खु निपात होता है।

१३९ खइअं, खाइअं—

इनकी मूल प्रकृति 'खादितम्' है। सर्वप्रथम 'अदातौ यथादिषुवा' (१-१०) इस सूत्र से विकल्प से आ को इ होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से द् तथा त् का लोप होने पर सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो प्रयोग वनते हैं।

१४० खाइ—

यह प्रयोग 'खादति' से वनता है। सर्वप्रथम 'खादिधाव्यो· खा धौ' (८-२७) मे 'खाद्' को 'खा' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (८-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

१४१ खुप्पइ—

सस्कृत मे 'टुमस्जो शुद्धौ' धातु है जिसको 'मज्जति' रूप वनता है इसी का प्राकृत भाषाओं में 'खुप्पइ' रूप भी वनता है। 'वुट्ट खुप्पौ मस्जे' (८-६८) इस सूत्र से खुप्प आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

१४२ गच्छं—

सस्कृत मे गम् धातु से भविष्यत् काल मे गमिष्यामि रूप वनता है उसी का प्राकृत मे 'गच्छं' होता है। कृ वा श्रु वचि गमि दृशि विदि रूपाणां

'काहं वाहं सोच्छ वोच्छ गच्छं रोच्छ दच्छं वेच्छ' (७-१६) से गच्छ आदेश होने पर यह रूप बनता है।

१४३. गडे—

सस्कृत मे क्त प्रत्यय के योग मे गम् धातु से 'गतः' रूप बनता है उसी का 'गडे' रूप होता है। 'कृञ्-मृङ् गमां क्तस्यड.' (११-१५) से क्त को ड होने पर 'अन्त्य हल' (४-६) से म् का लोप होने पर 'अत इदेतौलुक्च' (११-१०) से ए होने पर 'गडे' रूप बनता है।

१४४. गड्डो—

इसकी मूल प्रकृति 'गर्त.' है जिसका अर्थ 'गड्ढा' है। सर्वप्रथम 'गर्ते ड' (३-२५) से र्त को ड होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ड को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१४५. गदुअ—

संस्कृत मे गम् धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होने पर 'गत्वा' रूप बनता है उसी का 'गदुअ' रूप बनता है। 'कृगमोर्दुअ' (१२-१०) से 'दुअ होने पर 'अन्त्यहल' (४ ५) से म् का लोप होने पर यह प्रयोग बनता है। हेमचन्द्र के अनुसार 'कृगमो ड डुअ' (हेमचन्द्र) से 'डुअ' होने पर 'गडुअ' यह रूप भी बनता है।

१४६. गब्भिण—

इसकी मूल प्रकृति 'गर्भितम्' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से भ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व भ को ब होने पर 'गर्भितेण' (२-१०) से त को ण होने पर 'सोर्बिन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से बिन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

१४७. गम्मइ, गमीअइ गमिज्जइ—

गम् धातु का कर्म वाच्य मे गम्यते बनता है उसी का 'गम्मइ' रूप होता है। 'गमादीनां द्वित्व वा' (८-५८) से म् को विकल्प से द्वित्व होने पर 'तातपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है। ति को इ होने पर म के अ तथा इ मे स्वर सन्धि नही होती क्योकि 'त्यादे' (हेमचन्द्र) से स्वर सन्धि का निषेध होता है। जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता

वहा 'यक ईअ इज्जो' (७-८) से ईअ और इज्ज होने पर 'गमीअइ' तथा 'गम्मिज्जइ' रूप वनते है।

१४८. गाहिज्जइ, गहिज्जइ—

ग्रह धातु से सस्कृत मे भाव कर्म मे 'गृह्यते' रूप वनता है, प्राकृत भापाओ मे ये दो रूप उमी के वनते हैं। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'यक ईअ इज्जो' (७-८) से ज्ज होने पर 'ग्रहेर्दीर्घोवा' (८-६१) से विकल्प से दीर्घ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर ये रूप वनते हैं।

१४९. गाइ, गाअइ—

सस्कृत मे गै धातु से गायति रूप वनता है उसी के प्राकृत भापाओ मे ये रूप वनते हैं। 'ठाझा गाश्च वर्तमानभविष्यद्विध्याद्यैक वचनेषु' (८-२६) से गै को गा होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर गाइ रूप वनता है। पर 'ष्ठाझागाना ठाअ झाअ गाआ' (८-२५) से गै को 'गाअ' यह आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर 'गाअइ' रूप वनता है।

१५०. गिरा—

सस्कृत के 'गिर्' (वाणी) के अर्थ मे प्राकृत मे यह प्रयोग वनता है। 'रोरा' (४-८) से र् को रा होने पर यह रूप होता है।

१५१. गेण्हइ—

सस्कृत के 'गृह्णाति' (ग्रहण करना) का यह रूप वनता है। 'ग्रहेर्गेण्ह' (८-१५) से 'गेण्ह' आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

१५२. गेण्ह—

यह रूप 'गृहाण' का वनता है। ग्रहेर्गेण्हः' (८-१५) से गेण्ह होने पर 'अन्त्य हल' (४-६) से सि का लोप होने पर यह रूप वनता है।

१५३. घेऊण, घेत्तूण, घेत्तूनं—

इनकी मूल प्रकृति 'गृहीत्वा' है। 'घेत् क्त्वा, तुमुन् तव्येषु' (८-१६) मे 'घेत्' होने पर 'क्त्वाऊण' (४-२३) से 'ऊण' होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'घेऊण' रूप वनता है। 'घेत्तूण' मे पूर्ववत् घेत् तथा अण् होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त को द्वित्व होने पर 'घेत्तूण' रूप वनता है। पैशाची मे 'क्त्वस्तूनं'

(१०-१३) से तून होने पर पूर्ववत् द्वित्व होने पर पूर्व सूत्र से घेत् होने पर **'घेत्तूण'** रूप बनता है।

१५४ घेत्तुं

यह रूप सस्कृत के **'गृहीतुम्'** का बनता है। **'घेत् क्त्वा तुमुन्तव्येषु'** (२-१६) से घेत् होने पर **' शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर **'मो विन्दुः'** से विन्दु होने पर घेत्तु होता है।

१५५ घेत्तव्वं

तव्यत् प्रत्यय के योग में **'गृहीतव्यम्'** रूप बनता है **'घेत्क्त्वातुमुन्तव्येषु'** (८-१६) से घेत् होने पर **'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप'** (२-२) से त् का लोप होने पर **'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर **'अधोमनयाम्'** (३-३) से य् का लोप होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से व को द्वित्व होने पर **'सोविन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से विन्दु होने पर **'घेत्तव्वं'** रूप बनता है।

१५६ घोलइ

सस्कृत मे घुण् या घुर्ण धातु से **'घूर्णते'** रूप बनता है। **'घुणो घोल'** (८-६) से घोल् होने पर **'ततपोरिदेतौ'** (७-१) से ति को इ होने पर यह प्राकृत रूप बनता है।

१५७ चोद्दही, चउद्दही

इनकी मूल प्रकृति **'चतुर्दशी'** है। **'चतुर्थी चतुर्दश्लेस्तुना'** (१-९) से **'चतु'** को चो होने पर **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर **'दशादिषुह'** (२-४४) से श को ह होने पर **'चोद्दही'** रूप बनता है। **'चतु'** को चो विकल्प से होने पर जिस पक्ष मे ओ नही होता वहा **'सर्वत्र लवराम्'** (३-३) से र् का लोप होने पर **'क ग च ज तद पयवां प्रायो-लोप.'** (२-२) से त का लोप होने पर पूर्ववत् **'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'** (३-५०) से द् को द्वित्व होने पर **'दशादिषुह'** (२-४४) से श को ह होने पर **'चउद्दही'** रूप बनता है।

१५८ चऊहिं

यह शब्द **'चतुर्भि'** से बना है। **'अन्त्यहलः'** (४-६) से र् का लोप होने पर **'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप'** (२-२) से त का लोप होने पर **'सुभिस्सुप्सुदीर्घं** (५-१२) से दीर्घ होने पर **'भिसोर्हि'** (५-५) से **'भि'** को **'हि'** होने पर चऊहिं रूप बनता है।

१५९ चत्तारो, चत्तारि

संस्कृत के 'चत्वारः' के स्थान पर ये दोनो रूप बनते हैं। 'चतुरश्चत्तारो चत्तारि' (६-५८) से चत्तारो तथा चत्तारि होने पर 'जश्शसोर्लोपः' (५-२) से जस् तथा श स् का लोप होने पर ये रूप होते हैं।

१६० चतुण्हं, चउण्हं

संस्कृत के 'चतुर्णाम्' का यह रूप बनता है। 'एषामामोण्हं' (६-५९) से आम् को 'ण्हं' होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से र् का लोप होने पर यह प्रयोग बनता है। 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोपः' (२-२) से त् का लोप प्राय होने पर 'चउण्ह' रूप भी बनता है।

१६१ चमरं, चामरं

इनकी प्रकृति 'चामरम्' है। 'अदातो यथादिषुवा' (१-१०) से विकल्प से आ को अ होने पर 'सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो प्रयोग बनते हैं।

१६२ चंपइ

संस्कृत मे 'चर्च अध्ययने' इस धातु से 'चर्चयति' रूप बनता है उसी का 'चपइ' रूप होता है। 'चर्चेश्चप.' (८-६५) से चर्च को चप होता है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर चपइ रूप बनता है।

१६३ चल्लाइ, चलइ

ये दोनो रूप 'चलति' के बनते हैं। 'स्फुटिल्योर्वा' (८-५३) से ल को विकल्प से द्वित्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

१६४ चिट्ठदि

स्था धातु से संस्कृत मे 'तिष्ठति' रूप बनता है। उसी का प्राकृत भाषा मे यह प्रयोग होता है। 'स्थश्चिट्ठ' (१२-१६) से स्था को 'चिट्ठ.' होने पर 'ति' के त को 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-३)से त को द होने पर यह रूप बनता है।

१६५ चिष्ठदि

तिष्ठति का मागधी मे यह रूप बनता है। पहले 'स्थश्चिट्ठ' (१२-१६) से स्था को चिट्ठ होने पर 'चिट्ठस्य चिष्ठा' (११-१४) से चिट्ठ को चिष्ठ होने पर 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-३) से त को द होने पर यह रूप बनता है।

१६६ चिट्ठन्ति—

तिष्ठन्ति के स्थान पर यह प्रयोग होता है। स्था को 'स्थश्चिट्ठः' (१२-१६) से 'चिट्ठ' होने पर 'न्तिहेत्थामोमुमाबहुषु' (७-४७) से न्ति होने पर यह प्रयोग बनता है।

१६७ चुवंइ—

चुम्बति के स्थान पर इसका प्रयोग होता है। 'शेषाणामदन्तता' (८-७१) से व होने पर 'तदिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह रूप बनता है।

१६८ छिंदइ

छिदिर् धातु से सस्कृत मे छिनत्ति रूप बनता है उसी का प्राकृत मे 'छिंदइ' रूप होता है। 'भिदिच्छिदो रन्त्यस्यन्दः' (८-३८) से 'न्द' होने पर 'ग्यितद्वर्गान्त' (४-१७) से बिन्दु होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

१६९ जत्तो, जदो

यत् शब्द से सस्कृत मे 'यस्मात्' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे 'जत्तो' जदो' बनते हैं। 'त्तो दोडसे' (६-९) से त्तो तथा दो प्रत्यय होते हैं तथा 'आदेर्योजः' (२-३१) से य को ज होने पर ये रूप बनते हैं।

१७० जंपइ

इसकी मूल प्रकृति 'जल्पति' है जिसका अर्थ कहना होता है। 'जल्पेर्लोप' (८-२४) से ल् को म् होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

१७१ जंभाअइ

सस्कृत मे 'जमिजृभीगात्रविनामे' इस धातु से 'जृम्भते' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे यह रूप है। 'जृभो जभाअ' (८-१४) मे 'जभाअ' यह आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१७२ जम्मो

इसकी मूल प्रकृति जन्म है 'न्मोम' (३-४३) से न्म को म होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से म को द्वित्व होने पर 'नसान्तप्रावृट्शरद पुंसि' (४-१२) से पुल्लिग होने पर 'अत ओत् सोः' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

१७३ जह, जहा

इसकी मूल प्रकृति 'यथा' है। सर्वप्रथम 'आदर्योजः' (२-३१) से य को ज होने पर 'ख ग थ ध भां ह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'अदातोयथा-दिपुवा' (१-१०) से आ को विकल्प मे अ होने पर ये दोनों प्रयोग बनते हैं।

१७४ जा, जाव

ये दोनो रूप 'यावद्' के बनते हैं। 'यावदादिपुवस्य' (४-५) मे व का विकल्प से लोप होने पर 'आदेर्योजः' (२-३१) से य को ज होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से द् का लोप होने पर जा, जाव ये दो रूप बनते हैं।

१७५ जाणइ

ज्ञा धातु से सस्कृत मे 'जानाति' रूप बनता है उसी का 'जाणइ' बनता है। 'ज्ञोजाणमुणौ' (८-२३) से जाण होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

१७६ जास, जस्स

यद् शब्द का ङस् विभक्ति मे संस्कृत मे यस्य बनता है उसी का जास, जस्स बनता है। सर्वप्रथम 'किं यत्तद्भ्योङस आस' (६-५) से 'आस्' होने पर (२-३१) मे ज् होने पर 'जास' बनता है पर जिस पक्ष मे अ स 'आदेर्योजः' वहाँ 'स्सोङस' (५-८) से स्स होने पर पूर्ववत् य को ज् होने पर नहीं होता जस्स रूप बनता है।

१७७ जाहे, जइआ

यह शब्द से ङि विभक्ति में यदा रूप सस्कृत मे बनता है उसी का यह प्राकृत रूप है 'आहे इआ काले' (६-८) से 'आहे' और 'इआ' आदेश होने पर 'आदेर्योज' (२-३१) से य को ज् होने पर ये दोनों रूप बनते हैं।

१७८ जहिं; जस्सि, जम्मि, जत्थं

यद् शब्द से ङि विभक्ति मे सस्कृत में यस्मिन् रूप बनता है उसी के प्राकृत भाषाओं मे ये चारो रूप बनते हैं। 'ङे हिं' (६-७) से 'हिं' होने पर तथा 'आदेर्योजः' (२-३१) स य को ज् होने पर 'जहिं' रूप बनता है। शेष तीन रूप 'ङेस्सिम्मित्था' (६-२) से स्सि म्मि तथा त्थ प्रत्यय होने पर बनते हैं।

१७९ जिणइ—

'जि जये' इस धातु से सस्कृत मे जयति रूप बनता है उसी का 'जिणइ' प्राकृत रूप है। सर्वप्रथम 'श्रु हु जि लू धुवांणोऽन्त्यये ह्रस्व' (८-५६) से ण होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'जिणइ' रूप बनता है।

१८० जिव्वइ, जिणिज्जइ—

जि धातु से 'भावकर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से व्व तथा ण दोनो होते है अत प्रथम 'व्व' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'जिव्वइ' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे व्व नही होता वहाँ श्रुहुजिलूधुवां-णोऽन्त्ये ह्रस्व' (८-५६) से ण होने पर 'ए च क्त्वा तुमुन् तव्यभविष्यत्सु' (७-३३) से ण को णि होने पर 'मध्ये च' (७-२१) से मध्य मे ज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'जिणिज्जइ' रूप बनता है।

१८१ जिणा, जण—

यद् शब्द से टा प्रत्यय होने पर ये दोनो रूप बनते हैं। इदमेतत्किय-त्तभ्यष्टाइणावा' (६-३) से 'इणा' होने पर 'सन्धावचामज्लोपविशेषा बहुलम्' (४-१) से य के अ का लोप होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से द् का लोप होने पर 'आदेर्योज' (२-३१) से य को ज् होने पर 'जिणा' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे इणा नहीं होता वहाँ 'टामोर्ण' (५-४) से ण होने पर 'एच सुप्यङि ङसोः' (५-१२) से ए होने पर पूर्ववत् य को ज होने पर 'जेण' रूप बनता है।

१८२ जिस्सा, जीसे, जीआ, जीए, जीअ—

यद् शब्द से ङस् विभक्ति' मे स्त्रीलिग मे ये रूप बनते हैं। 'इदम्य स्सा से' (६-६) से स्सा तथा से होने पर 'आदेर्योजः' (२-३१) से य को ज होने पर तथा 'सन्धा वचा म ज् लोप विशेषाबहुलम्' (४-१) से दीर्घ होने पर जिस्सा तथा 'जीसे' रूप बनते हैं। शेष रूप 'टा ङस् ङीनामिदेददात.' (५-२२) से इत् एत् अत् आत् तथा 'आदीतौ बहुलम्' (५-२४) से स्त्रीलिग से आत् होने पर बनते हैं।

१८३ जुग्गं—

इसकी मूल प्रकृति 'युग्मम्' है 'अधोमनयाम् (३-२) से म् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) मे ग् को द्वित्व होने पर सोर्वि-न्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

१८४ जीआ—

इसकी मूल प्रकृति 'ज्या' है जिसका अर्थ प्रत्यञ्चा है। 'ज्यायामीत्' (४-६६) से ज्या शब्द के सयुक्त ज्या को विप्रकर्ष ज् या होने पर ईकार इसी सूत्र से होने पर 'क ग च-ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'जीआ' रूप वनता है।

१८५ जुज्झइ—

इसकी मूल प्रकृति 'युद्धयते' है। 'युधि वुध्योर्झ' (२-४८) से 'ध्य' को झ होने पर शेषादेशयोद्वित्व मनादौ' (३-५०) मे झ को द्वित्व होने पर 'वर्गेपु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व झ को ज् होने पर 'आदेर्योज' (२-३१) से य को ज् होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

१८६ जूरइ—

इसकी मूल प्रकृति 'क्रुध्यति' है। 'क्रुधेर्जूर' (८-६४) से जूर होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) मे ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

१८७ जेद्दह, जे तिअ

ये दोनो रूप यावत् के वनते हैं। 'परिमाणे किमादिभ्यो भवन्ति केद्दहादय' इस वार्तिक से जो कि 'आल्विल्लोल्लालवन्तेन्तामतुप' (४-२५) सूत्र पर है इससे दह, तिअ होने पर 'आदेर्योज' (२-३१) से य को ज होने पर 'सोर्विन्दुर्नपु सके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये रूप वनते हैं।

१८८ जेव्व—

सस्कृत मे 'एव' अव्यय' है उसका अर्थ 'ही' होता है। उसी का प्राकृत मे 'जेव्व' वनता है। 'एवस्स जेव्व' (१२-२३) से जेव्व होने पर यह रूप वनता है।

१८९ झाअन्ति—

सस्कृत मे 'ध्यै चिन्तायाम्' इस धातु से ध्यायन्ति' रूप वनता है उसी का प्राकृत यह रूप है। 'ष्ठाध्यागानां ठाअ झाअ गाआ' (२-२५) से ध्या को 'झाअ' होने पर 'झाअन्ति' रूप वनता है।

१९० झिज्जइ—

सस्कृत में 'क्षिक्षये' इस धातु से 'क्षयति' रूप वनता है उसी का 'क्षियो-झिज्ज' (८-३७) मे 'झिज्ज' होने पर 'ततिपोरिवेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

१९१ ठाअन्ति

सस्कृत मे स्था धातु से तिष्ठन्ति रूप बनता है उसी का '**ष्ठाघ्या गानां ठाअ, झाअ, गाआ**' (८-२५) से ठाअ होने पर यह रूप बनता है।

१९२ ठिअं

सस्कृत के स्थितम् का यह रूप है '**ठाझागाश्च वर्तमान भविष्यद् विध्याद्येक वचनेषु**' (८-२६) से स्थ को ठ होने पर '**क ग च ज त द पयवां प्रायो लोप**' (२-२) से त् का लोप होने पर '**सोर्विन्दुर्नपु सके**' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप बनता है।

१९३ णच्चइ

यह प्रयोग नृत्यति के रूप मे प्रयुक्त होता है। '**ऋतोर**' (१-२७) से ऋ को अ होने पर '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न् को ण होने पर '**च्चो व्रजनृत्यो**' (८-४७) से च्च प्रत्यय होने पर '**ततिपोरिदेतौ**' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

१९४ णत्थि

इसकी मूल प्रकृति नास्ति' है। '**नोण सर्वत्र**' (२-४२) से न को ण होने पर '**स्तस्य थ**' (३-१२) से 'स्त' को थ होने पर '**शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ**' (३-५०) से थ को द्वित्व होने पर '**वर्गेषुयुज पूर्व**' (३-५१) से पूर्व थ को त् होने पर यह रूप बनता है।

१९५ णडो

यह शब्द '**नट**' से बना है। '**नोण. सर्वत्र**' (२-४२) से न को ण होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से ओ होने पर '**टोड**' (२-२०) मे ट को ड होने पर यह रूप बनता है।

१९६ णाहलो

यह शब्द '**लाहल**' से बना है। '**लाहले ण**' (२-४०) से पहले ल को ण होने पर '**अत ओत् सो**' (५-१) से ओ होने पर यह रूप बनता है।

१९७ णिअक्कइ

सस्कृत मे **वृशिर प्रेक्षणे**' धातु है उसी का यह रूप बनता है। '**वृशे पुल अ, णिअक्क अवक्खा**' (८-६९) से '**णिअक्क**' होने पर '**ततिपोरिदेतौ**' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है। हेमचन्द्र के अनुसार '**दृशेर्दीस पुलणि छणि अछक्खा**' (हेमचन्द्र) से दीसइ, पुलइ, णिछइ, अवक्खइ रूप बनते हैं।

१९८ णिक्कन्तो

इसकी मूल प्रकृति 'निष्क्रान्त' है। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'उपरिलोप क ग ड त द प पसाम्' (३-१) से प् का लोप होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) मे र् का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से आ को अ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से क को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' से ओ होने पर यह रूप वनता है।

१९९ णिम्माणइ

सस्कृत मे इसके अर्थ मे 'निर्माति' का प्रयोग होता है। 'निरोमाडोमाण' (८-३६) मे निर उपसर्ग पूर्वक माङ् माने धातु मे माण आदेश होने पर 'नोण सार्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर 'सार्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से म् को द्वित्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२०० णिहित्तो, णिहिओ

इनकी मूल प्रकृति 'निहित.' है। 'नोण सार्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सेवादिषु च' (३-५८) से त् को विकल्प से द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'णिहित्तो' यह रूप वनता है पर जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहा 'नोण सार्वत्र'(२-४२) से न को ण होने पर 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

२०१ णो

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से शस् (द्वितीया के वहुवचन) मे 'अस्मान्' और 'न' ये दो रूप वनते हैं उन्ही के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे 'णो' होता है। 'णो शसि' (६-४४) से 'णो' होने पर यह रूप वनता है।

२०२ णोल्लइ

सस्कृत मे 'णुद् प्रेरणे' इस धातु से नुदति या नुदते ये रूप वनते हैं। उन्ही का प्राकृत भाषाओ मे यह रूप है। 'णुदो णोल्ल' (८-७) से 'णुद' को 'णोल्ल' आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

२०३ तआणि

इसकी मूल प्रकृति 'तदानीं' है। कगचजतद पयवां प्रायो लोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न् को ण होने पर दी,त

पानीयादिषु' (१-१८) से ई को इ होने पर **'मो बिन्दु.'** (४-१२) से विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

२०४. तइअं—

इसकी मूल प्रकृति **'तृतीयम्'** है। सर्वप्रथम **'ऋतोऽत्'** (१-२) से ऋ को अ होने पर **'कगचज तद पयवा प्रायो लोप.'** (२-२) से ती के त् तथा य् का लोप होने पर **'इदीत पानीयादिषु'** (१-१८) से ई को इ होने पर **'सोर्बिन्दुर्नपुसके'** (५-३०) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२०५. तं, तुमं—

युष्मद् शब्द से सु विभक्ति मे **'युष्मदस्त तुम'** (६-२६) से त तथा तुम आदेश होने पर ये दोनो रूप बनते है।

२०६. तुं, तुमं—

युष्मद् शब्द से अम् विभक्ति मे **'तु चामि'** (६-२७) से तुं तथा तुम आदेश होते हैं।

२०७. तुज्झे, तुम्हे—

युष्मद् शब्द से जस् विभक्ति मे **'तुज्झे तुम्हे जसि'** (६-२८) से विकल्प से ये दोनो प्रत्यय होने पर तुज्झे तथा तुम्हें आदेश होते हैं।

२०८. वो—

युष्मद् शब्द से शस् विभक्ति मे **'वोचशसि'** (६-२९) से वो आदेश विकल्प से होता है तव यह रूप बनता है अन्यथा तुज्झे और तुम्हे बनते हैं।

२०९. तइ, तए, तुमए, तुमे—

ये चारो रूप युष्मद् शब्द से टा तथा ङि विभक्ति मे बनते हैं **'टाङ्योस्तइ तए तुमए तुमे'** (६-३०) से तइ, तए, तुमए, तुमे आदेश होने पर ये चारो रूप बनते हैं।

२१०. तुमो, तुह, तुज्झ, तुम्ह, तुम्म—

युष्मद् शब्द से ङस् विभक्ति मे **'ङसि तुमो तुह तुज्झ तुह्म तुम्मा'** (६-३०) से ये आदेश होने पर ये पाचो रूप बनते हैं।

२११. ते, दे—

युष्मद् शब्द से ट तथा ङस् मे **'आङि च ते दे'** (६-३२) से ते दे होने पर ये दो रूप बनते हैं।

२१२. तुमाइ—

युष्मद् शब्द मे टा विभक्ति मे यह रूप भी बनता है। 'तुमाइ च'(६-३३) से तुमाइ आदेश होने पर यह रूप बनता है।

२१३. तुज्झेहिं, तुह्मेहिं, तुम्मेहिं—

युष्मद् शब्द से भिस् होने पर 'तुज्झेहिं, तुह्मेहिं, तुम्मेहिं भिसि' (६-३४) से ये तीनो आदेश होते हैं।

२१४. तत्तो, तइत्तो, तुमादो, तुमादु, तुमाहि—

युष्मद् शब्द से ङसि विभक्त मे ये पाचो रूप बनते हैं। 'ङसौ तत्तो, तइत्तो, तुमादो, तुमादु, तुमाहि' (६-३५) से ये प्रत्यय होने पर ये रूप बनते हैं।

२१५. तुह्माहितो, तुह्मासुन्तो—

युष्मद् शब्द से पचमी के बहुवचन भ्यस् मे ये दोनो रूप बनते हैं। 'तुह्माहितो, तुह्मासुन्तो भ्यसि' (६-३६) से ये दोनो आदेश होने पर ये प्रयोग बनते हैं।

२१६. वो, भे, तुज्झाणं, तुह्माणं—

युष्मद् शब्द से षष्ठी के बहुवचन आम् मे ये चारो रूप बनते हैं। 'वोभे, तुज्झाण, तुह्माण मामि' (६-३७) से ये चारो आदेश होने पर ये प्रयोग सिद्ध होते है।

२१७. तुमम्मि—

युष्मद् शब्द से ङि विभक्ति मे 'ङौ तुमम्मि' (६-३८) से तुमम्मि आदेश होने पर यह प्रयोग बनता है।

२१८. तुज्झेसु, तुह्मेसु—

युष्मद् शब्द से सुप् (सप्तमी के एक वचन)होने पर 'तुज्झेसु, तुह्मेसु सुपि' (६-३९) से ये दोनो आदेश होने पर ये प्रयोग बनते हैं।

२१९. ताहे, तइआ—

ये दोनो रूप 'तदा' के बनते हैं। 'आहे, इआ काले' (६-८) से इआ और आहे होने पर ताहे तथा तइआ बनते हैं।

२२०. तसं—

इसकी मूल प्रकृति 'त्र्यस्र' है। सर्वत्रलवराम्' '(३-३) से दोनो र् का लोप होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से य का लोप होने पर 'वक्रादिषु'

(४-१५) से त के ऊपर विन्दु होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से अन्त मे विन्दु होने पर यह रूप वनता है ।

२२१ तरइ, तीरइ

सस्कृत मे 'शक्लृ शक्तौ' इस धातु से 'शक्नोति' रूप बनता है उसी के ये दोनो रूप वनते हैं । 'शकेस्तर वअ तीराः' (८-७०) से 'तर' तथा 'तीर' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं ।

२२२ तह, तहा

इनकी मूल प्रकृति 'तथा' है । 'खघथधभाह' (२-२७) से थ को ह होने पर 'अदातोयथादिषुवा' (१-१०) से आ को अ विकल्प से होने पर ये दोनो रूप बनते हैं ।

२२३ तहिं, तंस्सि, तम्मि, तत्थ

तद् शब्द से ङि विभक्ति मे 'तस्मिन्' रूप वनता है । 'ङेर्हिं' (६-७) से ङि के स्थान पर हिं आदेश विकल्प से होता है अत हिं होने पर 'तहिं' वनता है पर जिस पक्ष मे हिं नही होता वहा 'ङे स्सिम्मित्थाः' (६-२) से ये तीनो प्रत्यय होने पर तस्सि, तम्मि तत्थ ये तीनो रूप वनते है ।

२२४ तहि, तंहि

ये दोनो रूप 'तर्हि' के वनते हैं जिसका अर्थ 'तो' होता है । 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'मांसादिषुवा' (४-१६) से विकल्प से विन्दु होने पर ये दोनो रूप वनते है ।

२२५ ता, ताव

ये दोनो रूप 'तावत्' के वनते हैं । यावदादिषुवस्य' (४-५) से व का लोप विकल्प से होने पर 'अन्त्यहल' (४-६) से अन्तिम त् का लोप होने पर ये दोनो रूप वनते हैं ।

२२६ तारिसो

इसकी मूल प्रकृति 'तादृश' है 'क्वचिद्युक्तस्यापि' (१-३१) से ऋ को रि होने पर 'क ग च ज त द पयवा प्रायोलोप' (२-२) से द् का लोप होने पर 'शषो सः' (२-४३) से श् को स होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है ।

२२७ तास, तस्स

सस्कृत मे तद् शब्द से ङस् विभक्ति (षष्ठी के एक वचन) मे तस्य रूप बनता है उसी के ये दोनो रूप प्राकृत भाषाओ मे बनते हैं । 'किंयत्तादो ङस

'आस' (६-५) से विकल्प से 'आस' होने पर 'तास' रूप बनता है और जिस पक्ष मे आस नही होता वहा 'स्सोऽस' (५,२) से स्स होने पर 'तस्स' रूप बनता है।

२२८ तिणा, तेण

इन दोनो की प्रकृति 'तेन' है जो सस्कृत मे तद् शब्द स टा विभक्ति (तृतीया के एक वचन) मे बनता है 'इदमेतत् कियत्तद्भ्यष्टा इणा वा' (६-३) से विकल्प से इणा होने पर 'अन्त्य हल' (४-६) से द् का लोप होने पर तिणा रूप बनता है पर जिस पक्ष मे इणा नही होता वहा 'टामोर्णः' (५-४) से टा को ण होने पर 'एत्वसुप्यडि ङसो' (५-१२) से ए होने पर 'तेण' रूप बनता है।

२२९ तिण्णि

सस्कृत मे त्रि शब्द से जस् मे त्रयः तथा शस् मे त्रीन् ये रूप बनते हैं। उन्ही का प्राकृत मे 'तिण्णि' रूप होता है। 'तिण्णिजश्शस्भ्याम्' (६-५६) से 'तिण्णि' आदेश होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

२३० तीहि, तीसु

सस्कृत मे त्रि शब्द से भिस् तथा सुप् मे क्रमश त्रभि तथा त्रिषु रूप बनते हैं उन्ही के तीहि तथा तीसु रूप प्राकृत भाषाओ मे बनते है। सर्वप्रथम 'स्त्रेत' (६-५५) से त्रि को ति होने पर 'भिसोहिं' (५-५) से भि को हिं होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घः' (५-१८) से दीर्घ होने पर ये दोनो रूप बनते हैं।

२३१ तिस्सा, तीसे, तीआ, तीए, तीअ, तीइ

तद् शब्द से ङस् विभक्ति मे स्सा से ये आदेश होते हैं और 'आदीतो बहुलम्' (५-२४) से ई होने पर ये रूप बनते हैं। शेष रूप 'टा ङस् ङीना मिदेददात' (५-२२) से इत् एत् अत् तथा आत् होने से बनते हैं।

२३२ तुवरइ

यह रूप सस्कृत 'त्वरति' या 'त्वरते' का बनता है जिसका अर्थ शीघ्रता करना है। सर्वप्रथम 'त्वरस्तुवर' (८-४) से तुवर होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

२३३ तुहद्धं, तुहअद्धं

इनकी मूल प्रकृति तव अर्द्धम् है। सर्वप्रथम 'ङसि तुमों तुह तुज्झ तुह्म तुम्मा' (६-३१) से तुह होने पर अर्ध के अ का लोप 'सन्धावचामज् लोप विशेषाबहुल' (४-१) से विकल्प से होता है अत अ का लोप होने पर 'सर्वत्र

लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर 'तुहद्ध' वनता है पर जिस पक्ष मे अ का लोप नही होता वहाँ 'तुहमद्ध'' रूप होता है।

२३४ तूरं—

इसकी मूल प्रकृति 'तूर्य्यं' है। तूर्य्यधैर्य सौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषुर' (३-१८) से र्य को र होने पर 'सोविन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२३५ तूसइ—

सस्कृत के तुष्यति का यह रूप है। 'रुषादीना दीर्घता' (८-४६)से उ को दीर्घ होने पर 'शषो स' (२-४३) से प को स् होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'तूसइ' रूप वनता है।

२३६ तेद्दहं, तेत्तिअं—

तावद् शब्द से ये दो रूप भी वनते हैं। 'परिमाणेकिमादिभ्योभवन्ति के इहादय' यह वार्तिक जो कि आल्विल्लोल्लालव न्तेन्तासतुप' (४-२५) पर है उससे दह और तिअ आदि प्रत्यय होने पर ये रूप वनते हैं।

२३७ तेरह तेरहो—

ये दोनो सस्कृत के 'त्रयोदश' से वने हैं जिसका अर्थ १३ है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से त्र के र् का लोप होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने 'सधावचामज्लोपविशेषा वहुलम्' (४-१) से यो के ओ का भी लोप होने पर 'एशय्यादिषु' (१-५) से त् के वाद ए होने पर सख्यायोन्च' (२-१४) से द को र् होने पर 'दशादिषु ह' (२-२४) से श् को ह होने पर 'तेरह' रूप वनता। जहाँ ओ का लोप नही होता वहा तेरहो रूप वनता है।

२३८ तेसिं ताण—

ये दोनो रूप सस्कृत के क्रमश तेषाम् तथा तासाम् के वनते हैं। तेसिं मे 'आम एसिं' (६-४) से 'एसिं' होने पर तद् के द् का लोप 'अन्त्यहलः' (४-६) से होता है और 'सन्धावचामज्लोप' विशेषा वहुलम् (४-१) से अ का लोप होने पर यह रूप वनता है। 'ताण' मे 'टामोर्ण' (५-४) से आम् को ण होने पर 'जश्शस्ङस्यामु दीर्घः' (५-११) से दोर्घ होने पर 'ताण' रूप वनता है।

२३९ तत्तो, तदो—

ये दोनो रूप तद् शब्द से ङसि मे वनते हैं। 'त्तोदोङसे.' (६-९) से त्तो दो होने पर ये दोनो रूप वनते है।

२४० थिपइ—

संस्कृत मे 'तृप तृप्तौ' धातु से तृप्यति रूप बनता है, प्राकृत मे उसी का थिपइ बनता है। 'तृपस्थिप' (८-२२) से थिप होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

२४१ देमि, दइस्स—

संस्कृत मे दा धातु से वर्तमान काल (लट्) मे ददामि रूप बनता है। उसी का प्राकृत मे 'देमि' होता है। 'ददातेर्दे दइस्सलृटि' (१२-१४) से 'दे' होने पर 'देमि' बनता है और इसी सूत्र मे लृट् मे (भविष्यत् काल मे) दा धातु से जिसका संस्कृत मे दास्यामि बनता है 'दइस्स' होने पर यह रूप बनता है।

२४२ दच्छ—

संस्कृत मे 'द्रक्ष्यामि' रूप बनता है। उसी का दच्छ बनता है। 'कृदाश्रु वचिगमि दृशि विदि रूपाणा काह दाह सोच्छ वोच्छ गच्छं रोच्छं दच्छं वेच्छ' (७-१६) से दच्छ होने पर यह प्रयोग बनता है।

२४३ दाऊण, दातूनं—

दा धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर संस्कृत मे 'दत्वा' रूप बनता है उसी का यह रूप बनता है। 'क्त्वाऊण' (४-२३) से ऊण होने पर 'दाऊण' रूप बनता है। पैशाची प्राकृत मे 'क्त्वस्तून' (१०-१३) से 'तून' होने पर 'दातून' रूप बनता है।

२४४ दाहं—

यह रूप 'दास्यामि' का बनता है कृदाश्रुवचि गमिदृशि विदि रूपाणा काह,दाह सोच्छ वोच्छ गच्छ रोच्छं दच्छं वेच्छ' (७-१६) से 'दाह' होने पर यह रूप बनता है।

२४५ दिण्ण—

'डुदाञ् दाने' धातु से क्त प्रत्यय के योग मे 'दत्तम्' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे 'दिण्ण' होता है। 'क्तेनदिण्णादय.' (८-६२) से 'दिण्ण' शब्द निपतित होता है।

२४६ दड्ढं—

दह धातु से संस्कृत मे 'दग्ध' रूप बनता है उसी का क्तेनदिण्णादयः' (८-६२) से 'दड्ढ' यह निपात इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

२४७ दुइअं—

इसकी मूल प्रकृति 'द्वितीयम्' है। 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से व् का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषावहुलम्' (४-१) से इ को उ होने पर 'कगचजतद पयवा प्रायोलोपः' (२-२) से त् का लोप होने पर 'इदीत पानीयादिषु' (१-१८) से ई को इ होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप. (२-२) से य् का भी लोप होने पर सोविन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है ।

२४८ दो—

संस्कृत मे 'द्वि' शब्द से 'द्वौ' वनता है उसी का प्राकृत मे 'दो' रूप होता है। 'द्वेर्दो' (६-५४) से दो आदेश होने पर यह रूप होता है।

२४९ दोहिं—

द्वि शब्द से भिस् होने पर 'द्वेर्दो' (६-५४) से दो होने पर 'भिसोहिं' (५-५) से भिस् को 'हिं' होने पर 'दोहिं' रूप वनता है।

२५० दुवे, दोणि—

ये दोनो रूप भी 'द्वौ' के वनते हैं। 'द्वेर्दुपवेदोणिवा' (६-५७) से 'दुवे' तथा 'दोणि' आदेश होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

२५१ दोहाइअ, दुहाइअं—

ये दोनो रूप 'द्विधाकृतम्' से वनते हैं। सर्वप्रथम 'ओचद्विधाकृञः' (१-१६) से द्वि की इ को विकल्प से ओ होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से व् का लोप होने पर 'खघधभाह' (२-२७) से ध को ह होने पर कृतम् के क तथा त् का लोप 'क ग च ज त द पयवां प्रायोलोप' (२-२) से होने पर 'इदृष्यादिषु' (१-२८) मे ऋ को इ होने पर 'दोहाइअं' रूप वनता है और जिस पक्ष मे ओ नही होता वहाँ 'ओचद्विधाकृञः' (१-१६) इसी सूत्र से द्वि की इ को उ होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होने पर 'दुहाइअ' रूप वनता है।

२५२ दोहाइज्जइ दुहाइज्जइ—

ये दोनो रूप 'द्विधाक्रियते' के वनते हैं। इसमे 'क्रियते' के यक् को 'यकईयइज्जौ' (७-८) से इज्ज होने पर 'सन्धावचामज्लोप विशेषावहुल' से (४-१) क्रि के इ का लोप होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से क् का लोप होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ते को इ होने पर ये दोनो रूप वनते हैं। दोहा तथा दुहा रूप दोहाइअ' के समान वनते हैं अर्थात् 'ओचद्विधाकृञः' (१-१६) से

विकल्प मे ओ तथा उ होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से व् का लोप होने पर 'खघथधमां ह' (२-२७) से घ को ह होने पर दोहा तथा दुहा रूप वनते हैं।

२५३ दूमइ—

'दूङ् परितापे' इस धातु से सस्कृत मे दूयते या दूयति रूप वनते हैं उन्ही का 'दूमइ' रूप वनता है। दूङोदूम' (८-८) से 'दूम' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति या ते को इ होने पर यह प्रयोग वनता है ।

२५४ दे—

दा धातु से ये रूप वनता है। 'ददातेर्देदइस्सलटि' (१२-१४) से दे आदेश होने पर यह रूप वनता है।

२५५ दोण्हं—

द्वि शब्द से आम् विभक्ति मे यह रूप वनता है। सर्वप्रथम 'द्वेर्दो' (६-५४) से द्वि को दो होने पर 'एवामामोण्ह' (६-५९) से ण्ह होने पर दोण्ह रूप वनता है।

२५६ धाइ, धाइहि, धाउ—

'धावु जवे' इस धातु से क्रमश वर्तमान भविष्यद् तथा विधि आदि मे ये तीनो रूप वनते है। 'खादिधाव्यो. खाधौ' (८-२७) से 'धा' आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'धाइ' रूप वनता है। 'धाहिइ' मे 'धातोर्भविष्यतिहि' (७-१२) से हि होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'धाहिइ' रूप वनता है। धाउ में 'उ सु मु विध्यादिष्वेकस्मिन्' (७-१८) से उ होने पर 'धाउ' वनता है।

२५७ धुणइ—

धूञ् कम्पने इस धातु से सस्कृत मे 'धुनोति' यह रूप वनता है उसी का 'धुणइ' रूप वनता है। 'श्रुहुजिलूधुवांणोऽन्त्ये ह्रस्व' (८-५६) से ण होता है और धू को धु होता है 'ततिपोरिदेतौ' से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२५८ धुव्वसि—

यह प्रयोग 'धूयसे' का वनता है। 'भावकर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से य को व्व होने पर 'थास्सिपो सि से' (७-२) से सि होने पर यह प्रयोग वनता है। ह्रस्व सयोगे (हेमचन्द्र) से ह्रस्व होता है।

२५९ धुव्वइ, धुणिज्जइ—

ये दोनो रूप 'धूयते' के वनते हैं। 'भाव कर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से व्व होने पर 'ह्रस्व संयोगे' हेमचन्द्र (८-८-२२७) मे ह्रस्व होने पर 'ततिपो-

रिदेतौ' (७-१) मे ति को इ होने पर 'धुव्वइ' रूप वनता है। धुणिज्जइ मे 'श्रुहुजिलूधुवाणोऽन्त्ये ह्रस्व' (२-५६) से ण होने पर 'ए च क्तवा तुमुन् तव्यभविष्यत्सु' (७-३३) से ण को इ होने पर 'मध्येच' (७-२१) से मध्य मे ज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२६० पखलो

इसकी मूल प्रकृति 'प्रखल' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

२६१ पडइ

इसकी मूल प्रकृति 'पतति' है 'शद्लृपत्योर्ड·' (८-५१) से त को ड होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर रूप वनता है।

२६२ पडि

इसकी प्रकृति 'प्रति' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'प्रतिसरवेतसपताकासुड' (२-८) से त को ड होने पर 'पडि' वनता है।

२६३ पढमो

इसकी मूल प्रकृति 'प्रथम' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'प्रथमशिथिल निषधेषुढः' (२-२८) से ढ होने पर 'आत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रूप वनता है।

२६४ पण्णरहो

इसकी मूल प्रकृति 'पञ्चदश' है जिसका अर्थ १५ है। सर्वप्रथम 'म्नज्ञापञ्चाशत् पञ्चदशेषुण' (३-४४) से ण होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५१) से ण् को द्वित्व होने पर 'सख्यायाञ्च' (२-१४) से द को र होने पर 'दशादिषु ह.' (२-४४) से श को ह होने पर 'अत ओत् सो.' (५-१) से होने पर यह रूप वनता है।

२६५ पभवइ

इसकी मूल प्रकृति 'प्रभवति' है यह रूप भू धातु से वनता है। 'प्रादेर्भव·' (८-३) से भू को भव होने पर 'सर्वत्र लवरा' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२६६ पमिल्लइ, पमीलइ

इसकी मूल प्रकृति 'प्रमीलति' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'ह्रस्व सयोगे' (हेमचन्द्र) से मी को मि होने पर 'प्रादेर्मील'

(२-५४) से ल को विकल्प से द्वित्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-६) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२६७ परिभवइ

इसका सस्कृत रूप 'परिभवति' वनता है। 'प्रादेर्भव' (८-३) से भू को भव होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२६८ पसूसइ

इसकी मूल प्रकृति 'प्रशुष्यति' है। 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से प्र के र् का लोप होने पर 'शषो सः' (२-४५) से श् तथा प् को स होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'रुषादीना' दीर्घता' (७-४६) से उ को ऊ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२६९ पवणुद्धअं, पवणउद्धअं

ये दोनो रूप 'पवनोद्धतम्' के वनते हैं। 'नोण सर्वत्र' (२-४२) से न को ण होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्' (४-१) से ण के अ का लोप विकल्प से होने पर उद्धत के त का लोप 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-३) से होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुंसके' (५-३०) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

२७० पाइ पाअइ

सस्कृत मे 'घ्रागन्धग्रहणे' इस धातु से 'जिघ्रति' रूप वनता है उसी के ये दोनो रूप वनते हैं। 'जिघ्रतेः पा पाओ' (८-२०) से पा तथा पाअ आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

२७१ पालेइ

सस्कृत मे 'पद्यते' का यह रूप बनता है। 'पदे पाल' (८-१०) से पाल होने पर 'लादेशेवा' (७-३४) से ए होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२७२ पिआपिअं

इसकी मूल प्रकृति 'पीतापीतम्' है। 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से दोनो त का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोप विशेषावहुलम्' (४-१) से पी की ई को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

२७३ पुलअइ—

इसकी मूल प्रकृति 'पश्यति' है। 'दृशेः पुलअ णिअक्क अवक्खाः' (८-६९) से 'पुलअ' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२७४. पुलिशाह, पुलिशस्श—

मागधी प्राकृत मे 'पुरुषस्य' के ये दोनो रूप वनते हैं। 'रसोर्ल शौ' (हेमचन्द्र) के अनुसार र् को ल होने पर 'अत इदेतौलुक्च' (११-१०) से उ को इ होने पर 'षसो श' (११-३) से प को श होने पर 'ङ सो हो वा दीर्घत्व च' (११-१२) से ङ स् को ह होने पर तथा दीर्घ होने पर 'पुलिशाह' रूप वनता है। पर जिस पक्ष मे ङ-स् को ह नही होता वहा 'स्सोङस' (५-८) से स्स होने पर 'षसो स.' (११-३) से दोनो स् को श होने पर शेष कार्य पूर्ववत् होने पर 'पुलिशश्श' रूप वनता है।

२७५. पुस्सो, पुसो—

इसकी मूल प्रकृति 'पुष्य.' है। 'अघोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'शषो स' (२-४३) से प को स् होने पर 'सेवादिषु च' (३-५२) से विकल्प से स् को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर 'पुस्सो' तथा 'पुसो' ये दो रूप वनते हैं।

२७६ पेक्ख, पेक्खइ—

सस्कृत मे 'दृशिर् प्रेक्षणे' धातु है उससे पश्यति या प्रेक्षते रूप वनते है उन्ही के शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृत मे ये रूप वनते हैं। 'दृशे पेक्ख' (१२-१८) से दृश् को 'पेक्ख' होने पर सस्कृत के 'पश्य' मे जिस प्रकार हि का लोप हो जाता है उसी प्रकार शौरसेनी की प्रकृति सस्कृत होने से 'प्रेक्ख' मे भी हि का लोप होने पर 'पश्य' का 'पेक्ख' वनता है और 'पेक्ख इ' मे 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर पेक्खइ' रूप वनता है।

२७७. भमइ—

इसकी प्रकृति 'भ्रमति' है। 'शेषाणामदन्ता' (८-७१) से 'भमति' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२७८ मरइ—

"स्मृ चिन्तायम्' इस धातु से सस्कृत मे स्मरति रूप वनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'मरइ' रूप होता है। 'स्मरतेर्भर' सुमरौ' (८-१८) से

'भर' आदेश होने पर 'ततियोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

२७९ भाइ—

संस्कृत मे 'ञिभीभये' इस धातु से 'बिभेति' तथा 'बिभीते' ये दो रूप बनते हैं उन्हीं का 'भाइ' प्राकृत भाषाओ मे होता है। 'भियो भावी हो' (८-१९) से 'भा' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'भाइ' रूपसिद्धि होता है।

२८०. भिन्दइ—

'भिदिर्' धातु से सस्कृत मे 'भिनत्ति' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे 'भिन्दइ' रूप है। 'भिदिच्छिदोरन्त्यस्यन्द' (८-३८) से 'न्द' होने पर 'भिन्द' बनता है फिर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'भिन्दइ' रूप बना है।

२८१ भोत्तूण, भोत्तुं, भोत्तव्वं—

भुज् धातु से क्त्वा, तुमुन् तथा तव्यत् प्रत्यय मे ये तीनो रूप बनते हैं। 'भुजादीनां क्त्वा तुमुन् तव्येषु लोप' (२-५५) से भुज् के ज का लोप होने पर 'युवर्णस्यगुण' (हेमचन्द्र) इस सूत्र से भु के उ को ओ गुण होने पर भो रूप बनता है। 'उपरिलोप क ग ड तदपषसाम्' (३-१) से क्त्वा के क् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त को द्वित्व होने पर 'क्त्वा ऊण' (४-२३) से ऊण होने पर 'भोत्तूण' रूप बनता है। भोत्तुं मे पूर्ववत् भो होने पर तथा 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'मो बिन्दु' (४-१२) से बिन्दु होने पर 'भोत्तु' रूप बनता है। 'भोत्तव्व' मे पूर्ववत् भो होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् तथा व् को द्वित्व होने पर तथा मो बिन्दु (४-१२) से बिन्दु होने पर यह रूप बनता है।

२८२ मइ, मए—

अस्मद् शब्द मे टा तथा ङि विभक्ति मे मया तथा मयि रूप बनते हैं उन्ही के प्राकृत मे ये रूप होते हैं। 'ङौ च मइ मए' (६-४६) से मइ तथा मए होने पर ये रूप बनते है।

२८३. मं ममं—

अस्मद् शब्द से अम् विभक्ति मे 'म मम' (६-४२) से मं तथा मम आदेश होने पर ये रूप बनते हैं।

२८४. मे, ममाइ—

अस्मद् शब्द से आङ् (टा) विभक्ति मे 'आङि मे ममाइ' (६-४५) से मे, ममाइ होने पर ये रूप वनते हैं।

२८५ मत्तो, मइत्तो, ममादो, ममादु, ममाहि—

अस्मद् शब्द से ङस् विभक्ति मे ये पाँचो रूप प्राकृत भाषाओ मे वनते हैं। 'मत्तोमइत्तो ममादो ममादु ममाहि ङसौ' (६-४८) से ये पाचों प्रत्यय होने पर तथा अन्त की विभक्ति का लोप होने पर ये रूप वनते है।

२८६ मे, मम, मह, मज्झ—

अस्मद् शब्द से ङ सि विभक्ति (पचमी के एक वचन) मे ये चारो रूप वनते हैं। 'मे मम मह मज्झ ङसि' (६-५०) से ये प्रत्यय होते हैं।

२८७ मज्झणो—

अस्मद् शब्द से आम् (पष्ठी के वहुवचन) मे यह रूप होता है। 'मज्झणो अह्म, अह्माणं अह्मे आमि' (६-५१) से 'मज्झणो' आदेश होने पर यह रूप वनता है।

२८८. ममम्मि—

अस्मद् शब्द सेङि विभक्ति मे 'ममम्मि' रूप वनता है 'ममम्मि ङौ' (६-५२) से ममम्मि प्रत्यय होने पर यह रूप वनता है।

२८९ मरिसइ—

इसकी प्रकृति 'मृषति' है। 'वृष कृष मृषहृषामृतोऽरिः' (८-११) से ऋ को अरि होने पर 'शषोः स' (२-४२) से ष को स होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२९०. मरइ—

सस्कृत मे 'मृ' धातु से 'म्रियते' रूप बनता है इसी का प्राकृत मे यह रूप है। 'ऋतोऽर.' (२-१२) से ऋ को अर होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१)से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२९१. मलइ—

मृद् धातु से सस्कृत मे 'मृद्नाति' रूप वनता है जिसका अर्थ धोना होता है उसी का यह रूप वनता है। 'ऋतोऽत्' (१-२७) से ऋ को अ होने पर 'मृदोल' (८-५०) से द् को ल होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'मलइ' रूप वनता है।

२९२ महद्धं, महअद्धं—

ये दोनो शब्द ममार्धम् के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। 'मे मम मह मज्झडसि' (६-५०) से मम को हम होने पर 'सर्वत्रनवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'सन्धावचामज् लोपविशेषा वहुलम्' (४-१) से विकल्प मे अ का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ध को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) मे पूर्व ध् को द् होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) से विन्दु होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

२९३ म्मिव, मिव—

सस्कृत मे 'इव' निपात 'जैसे' के रूप मे प्रयुक्त होता है उमी के प्राकृत भाषाओ मे ये दोनो रूप वनते हैं। 'म्मिव मिवविआइवार्थे' (१०-१६) से ये इव अर्थ मे निपतित है।

२९४ मुणइ—

सस्कृत मे ज्ञा धातु मे 'जानाति' रूप वनता है। उसी का 'मुणइ' भी वनता है 'ज्ञोजाणमुणो' (८ २३) से मुण होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२९५. म्हि, म्हो, म्हु, म्ह—

सस्कृत मे अस् धातु के अस्मि तथा स्म रूप वनते हैं। (वर्तमान काल मे) उन्ही के प्राकृत भाषाओ मे ये रूप वनते हैं। 'मिमो मुमाना मधोहश्च' (७-७) से ह होता है।

२९६. रम्मइ, रमिज्जइ—

ये रूप 'रम्यते' मे वनते हैं। 'गमादीना द्वित्ववा' (८-५८) से विकल्प से द्वित्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'रम्मइ' रूप वनता है पर जिस पक्ष मे द्वित्व नही होता वहां 'मध्येच' (७-२१) से ज्ज होने पर सन्धावचामज्लोपविशेषा वहुलम्' (४-१) से इ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

२९७. रुन्धइ, रुम्भइ—

ये दोनो रूप 'रुणद्धि' के वनते हैं। सर्वप्रथम 'रुधेर्न्धम्भौ' (८-४९) इस सूत्र से अन्त मे न्ध तथा म्भ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) मे ति को इ होने पर ये दोनो रूप वनते हैं।

२९८. रुवइ—

यह रूप 'रुदति' से वनता है। 'रुदेवं' (८-४२) से द को व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

२९९ रूसइ—

यह प्रयोग रुष्यति का वनता है जिसका अर्थ क्रोध करना होता है। 'शाषोः' स (२-४३) से ष् को स् होने पर 'अघोमनया' (३-२) से य् का लोप होने पर स्पादीनादीर्घता (८-४६) से दीर्घ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

३००. रे—

सस्कृत मे भो सम्बोधन ! आदि अर्थों मे प्रयुक्त होता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'रे' भी होता है। 'रे अरे हिरे सभाषण रतिकलहा क्षेपेषु' (९-१५) से 'रे' निपतित होता है।

३०१. रोच्छं—

'रोदिष्यामि' सस्कृत के इस प्रयोग के लिये क्रुदाश्रु, वचि, गमि, दृशि, विदि रूपाणां काहं दाह सोच्छं वोच्छं गच्छ रोच्छ दच्छ वेच्छ, (७-१६) इस सूत्र से रोच्छ आदेश होने पर यह प्रयोग वनता है।

३०२. रोत्तूण, रोत्तुं, रोत्तव्वं—

रुदिर धातु से क्त्वा, तुमुन् तथा तव्यत् प्रत्यय होने पर क्रमश ये तीनों रूप वनते हैं भुजादीनांक्त्वातुमुन् तव्येषुलोपः' (८-५८) से दिर का लोप होने पर 'युवर्णस्यगुण ' (हेमचन्द्र) से रु को रो गुण होने हर 'उपरिलोप कगडतदपषसाम्' (३-१) से क् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'क्त्वा ऊण ' (४-२३) से ऊण होने पर 'रोत्तूण' रूप वनता है। रोत्तु मे पूर्ववत् रो होने पर और शेषादेशयोर्दित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'मोविन्दु ' (४-१२) से विन्दु होने पर 'रोत्तु ' रूप वनता है। 'रोत्तव्व' में पूर्ववत् रो होने पर 'अघोमनयाम्' (३-२) से य का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् तथा व् को द्वित्व होने पर मोविन्दु. (४-१२) से विन्दु होने पर यह रूप वनता है।

३०३ रोसाइन्तो—

इसकी प्रकृति 'रोषवत्' है। 'शषो स ' (२-४३) से ष् को स होने पर 'आल्विल्लोल्लालवन्तेन्नामतुप ' (४-२५) मे 'इन्त' होने पर 'सन्धावचामज् लोपविशेषा वहुलम्' (४-१) से दीर्घ होने पर यह रूप वनता है।

३०४ लग्गति—

इनकी प्रकृति 'लगति' है। 'शकादीना द्वित्वम्' (८-५२) से द्वित्व होने पर ततिपोरिदेतौ (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

३०५ लिज्झइ—

इसकी मूल प्रकृति लिह्यते' है। 'लिहेर्लिज्झ' (८-५९) से लिह् को 'लिज्झ' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

३०६. लुणइ—

इसकी मूल प्रकृति 'लुनाति' है। सर्वप्रथम 'श्रुहुजिलूधुवाणोऽन्त्ये ह्रस्व')८-५६) से अन्त में ण होने पर और लू को लु होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

३०७. लुव्वइ, लुणज्जइ—

इसकी मूल प्रकृति 'लूयते' है। 'भावकर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से व्व होने पर तथा ह्रस्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'लुव्वइ' रूप वनता है पर जिस पक्ष में व्व नही होता वहाँ ण होने पर 'मध्येच' (७-२१ से ज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'लुणज्जइ' रूप वनता है।

३०८ वअइ—

सस्कृत मे 'शक्लृ शक्तौ' धातु से 'शक्नोति' रूप वनता है उसी का 'वअइ' रूप भी प्राकृत भाषाओ मे होता है। 'शकेस्तरवअतीरा.' (८-७०) से 'वअ' आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'वअइ' रूप वनता है।

३०९. वअं—

सस्कृत में अस्मद् पर शव्द से जस् विभक्ति में 'वयम्' वनता है उसी का प्राकृत में वअ रूप है 'अस्मदो जसावअच' (१२-२५) से वअ होने पर यह रूप वनता है।

३१०. वच्चइ—

इसकी मूल प्रकृति 'व्रजति' है। 'च्चोव्रजनृत्यो.' (८-४७) से च्च होने पर तथा 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप वनता है।

३११ वज्जइ—

सस्कृत मे 'त्रसीउद्वेगे' धातु मे 'त्रसति' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'वज्जइ' रूप है 'त्रसेर्वज्जः' (८-६६) से त्रस् को वज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने यह रूप बनता है।

३१२ वड्ढइ—

वृधु वर्धने इस धातु से सस्कृत मे 'वर्धते' रूप बनता है उसी का प्राकृत मे यह रूप है। 'ऋतोऽत्' (१-२७) ऋ को अ होने पर 'वृधेर्ढ' (८-४४) से ध को ढ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से ढ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज. पूर्व' (३-५१) से पूर्व ढ को ड् होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

३१३ वरइ—

सस्कृत में 'वृञ्वरणे इस धातु से 'वृणोति' तथा 'वृणुते' ये दोनो रूप बनते हैं उन्ही का 'वरइ' रूप होता है। 'ऋतोऽर' (८-१२) से वृ को वर होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप बनता है।

३१४ वले—

सस्कृत मे 'अपि' मम्बोधन मे निपात होता है उसी के लिए प्राकृत भाषाओ मे 'वले' भी प्रयुक्त होता है। 'अइवले संभाषणे' (१०-१२) से यह ।पदनितित है

३१५ वाइ, वआइ—

सस्कृत मे 'म्लैहर्षक्षये' इस धातु से 'म्लायति' रूप बनता है उसी के प्राकृत मे ये दोनो रूप हैं। 'म्लै व वाओ' (८-२१) से 'वा' तथा 'वाअ' आदेश होने पर ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर ये दोनो रूप सिद्ध होते हैं।

३१६ वाऊहिं—

सस्कृत के 'वायुभिः' का यह प्रयोग बनता है। 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घ' (५-१८) से दीर्घ होने पर 'भिसोहिं' (५-५) से हिं होने पर यह रूप बनता है।

३१७ वाउस्स—

सस्कृत मे वायो के रूप का प्राकृत मे यह रूप बनता है। 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य का लोप होने पर 'ङसोङस.' (५-८) से 'स्स' होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

३१८ वाऊदो, वाऊआ वाऊदु, वाऊहि—

वायु शब्द से ङसि मे ये रूप बनते है। 'क ग च ज तद पयवा प्रायोलोप' (२-२) मे य् का लोप होने पर 'सुभिस्सुप्सु दीर्घः (५-१८) मे दीर्घ होने पर 'ङसेरादोदुहय' (५-६) से आ, दो, दु तथा हि होने पर वाऊआ वाऊदो, वाऊदु तथा वाऊहि ये चारो रूप बनते है।

३१९ वाऊओ, वाउणो—

सस्कृत मे वायु शब्द से प्रथमा के बहु वचन मे जस् विभक्ति आने पर 'वायव' यह रूप बनता है। उसी के प्राकृत भाषाओं मे ये दोनों रूप होते है सर्वप्रथम 'जसश्च ओ यूत्वम्' (५-१६) से जस् को ओ होने पर (विकल्प से) ओ उ को ऊ होने पर 'वाऊओ' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे ओ नही होता वहाँ णो होता है और ऊत्व नही होता। इस प्रकार 'वाउणो' रूप बनता है।

३२० वाउणा—

सस्कृत मे वायु शब्द से तृतीया के एक वचन मे टा प्रत्यय मे 'वायुना' रूप बनता है। उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'वाउणा' रूप होता है। 'टाणा' (५-१७) मे टा को णा होने पर 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) मे य् का लोप होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

३२१ वाहित्तं—

इसकी मूल प्रकृति 'व्याहृतम्' है जिसका अर्थ 'कहा' है। सर्वप्रथम 'क ग च ज तद पयवां प्रायोलोप' (२-२) से य् का लोप होने पर 'इदृष्यादिषु' (१-२८) से ऋ को इ होने पर 'नीडादिषु' (३-५२) से त् को द्वित्व होने पर तथा 'सोर्बिन्दुर्नपु सके' (५-३०) मे बिन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

३२२ विअ, वेअ—

अवधारण या निश्चय करने के अर्थ मे प्राकृत भाषाओ मे 'विआ' शब्द निपात के रूप मे प्रयुक्त होता है। 'विअवेअ अवधारणे' (९-३) से इस अर्थ मे निपतित है। इव के अर्थ मे भी यह शब्द निपतित है 'म्मिव, मिव-विआ इवार्थे' (९-१६) से इस अर्थ मे निपतित है शौरसेनी मे भी 'इवस्य-विअ' (१२-२४) से यह शब्द निपतित है।

३२३ विक्केइ, विक्किणइ—

ये दोनो प्रयोग सस्कृत के 'विक्रीणीते' के स्थान पर बनते है जिसका अर्थ बेचना होता है। सर्व प्रथम 'वे क्के च' (८-३१) से वि उपसर्ग पूर्वक क्रीञ्

धातु को विकल्प से क्के होता है तथा 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर 'विक्केइ' रूप बनता है पर जिस पक्ष मे क्के नही होता वहा किण् होता है और 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से क को द्वित्व होने पर 'ततिपो-रिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह रूप बनता है।

३२४ विसइ

सस्कृत मे 'ग्रसुग्लसुअदने' इस धातु मे आत्मने पद मे 'ग्रसते' तथा 'ग्लसते' ये दो रूप बनते है उन्ही मे ग्रस धातु का प्राकृत भाषा मे 'विसइ' रूप बनता है। 'ग्रसेर्विस' (८-२८) से ग्रस के स्थान पर विस आदेश होता है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

३२५ विसूरइ

सस्कृत मे 'खिद् दैन्ये' इस धातु से 'खिद्यते' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषा मे 'विसूरइ' रूप प्राप्त होता है। 'खिदेर्विसूर' (८-६३) से खिद् के स्थान पर 'विसूर' आदेश होता है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ते को इ होने पर 'विसूरइ' रूप बनता है।

३२६ बीहइ

सस्कृत मे 'त्रिभीभये' इस धातु से 'बिभेति' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'बीहइ' यह रूप होता है। सर्व प्रथम 'भियो भाबी हौ' (८-१३) इस सूत्र से 'बीह' आदेश होता है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३२७ बुज्झइ

सस्कृत मे 'बुध अवगहने' इस धातु से 'बुध्यते' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'बुज्झइ' रूप बनता है। सर्व प्रथम 'युधि बुध्योर्झ' (८-४८) से बुध् के ध् को झ होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ' (३-५०) से झ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व के झ को ज् होने पर 'ततिपो रिदेतौ' (७-१) से ते को इ होने पर यह रूप बनता है।

३२८ बुड्डइ

सस्कृत मे 'टुमस्जो शुद्धौ' इस धातु से 'मज्जति' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'बुड्डइ' रूप होता है। सर्व प्रथम 'बुड्डखुप्पौमस्जे' (८-६८) से बुड्ड आदेश होता है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३२९ वेच्छं

इसकी मूल प्रकृति 'वेत्स्यामि' है। 'कृदाश्रु वचि गमि दृशि विदि रूपाणां काह दाहं सोच्छ वोच्छ गच्छं रोच्छं दच्छ वेच्छ' (७-१६) से वेच्छं आदेश होने पर यह रूप बनता है।

३३० वेड्ढइ

संस्कृत मे 'वेष्ट वेष्टने' इस धातु से वेष्टते रूप बनता है जिसका अर्थ लपेटना होता है उसी का प्राकृत भाषाओं मे यह रूप बनता है। सर्वप्रथम 'वेष्टेश्च' (८-४०) इस सूत्र से ष्ट् को ढ होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' (३-५०) से ढ को द्वित्व होने पर 'वर्गेषु युज पूर्व' (३-५१) से पूर्व के ढ् को ड् होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३३१ वेत्तूण

संस्कृत मे विद् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'विदित्वा' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'वेत्तूण' रूप होता है। विद्+क्त्वा इस अवस्था मे संस्कृत के अनुरूप इ को गुण होने पर वे होता है तव 'भुजादीनां क्त्वा तुमुन् तव्येषु लोप' (८-५५) से द् का लोप होने पर 'उपरिलोप क ग ड त-द प षसाम्' (३-१) से क्त्वा के क् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्व मनादौ, (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर क्त्वा के शेप वा को 'क्त्वाऊण' (४-२३) से ऊण होने पर 'वेत्तूण' यह रूप सिद्ध होता है।

३३२ वेत्तुं

विद् धातु से तुमुन् प्रत्यय के योग मे संस्कृत में वेदितुम् रूप बनता है उसी का प्राकृत मे वेत्तु रूप है। सर्वप्रथम गुण होने पर 'भुजादीना क्त्वा तुमुन् तव्येषुलोप' (८-५५) से द् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से त् को द्वित्व होने पर 'मो बिन्दु' (४-१२) से म् को विन्दु ( ) होने पर यह रूप बनता है।

३३३ वेत्तव्वं

विद् धातु से तव्यत् प्रत्यय के योग मे 'वेदितव्यम्' रूप बनता है। प्राकृत भाषाओ मे उसी का यह रूप है। सर्वप्रथम संस्कृत के समान गुण होने पर वे हुआ तव 'भुजादीनां क्त्वा तुमुन् तव्येषुलोप.' (८-५५) से द् का लोप होने पर 'अधोमनयाम्' (३-२) से य् का लोप होने पर 'शेषादेशयो द्वित्वमनादौ' (३-५०) से त् तथा व् को द्वित्व होने पर 'मोविन्दु.' (४-१२) से म् को विन्दु होने पर यह प्रयोग बनता है।

३३४ वेवन्ती, वेवई

सस्कृत मे **'टुवेपृ कम्पने'** इस धातु से शतृ प्रत्यय के योग मे **'वेपन्ती'** रूप होता है उसी के प्राकृत भाषा मे ये दो रूप वनते हैं। **'ई च स्त्रियाम्'** (७-११) से ई तथा न्त दो आदेश होते है और **'पोवः'** (२-१५) से पृ को व होने पर ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

३३५ वेवमाणा

वेपृ धातु से शानच् प्रत्यय के योग मे सस्कृत मे **'वेपमाना'** वनता है उसी का प्राकृत भाषा मे यह रूप है। सर्वप्रथम **'ईच स्त्रियाम्'** (७-११) से माण आदेश होने पर **'पोव.'** (२-१५) से पृ को व होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३३६ वोच्छं

सस्कृत के **'वक्ष्यामि'** का यह रूप है। **'कृवाश्रुवचिगमि दृशिविदि रूपाणां काह दाहं सोच्छ वोच्छं गच्छं रोच्छं दच्छ वेच्छ'** (७-१६) से वक्ष्यामि को वोच्छ आदेश होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३३७. शहिदाणि

सस्कृत मे सह धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर **'सोढ्वा'** रूप वनता है उसी का प्राकृत भाषाओ में यह रूप वनता है। सर्वप्रथम **'षसो. श'** (११-३) से स् को श होने पर **'एच क्त्वा तुमुन् तव्य भविष्यत्सु'** (७-३३) से इ होने पर **'क्त्वो दाणि·'** (११-१६) से क्त्वा को **'दाणि'** आदेश होने पर **'शहिदाणि'** रूप वनता है।

३३८ संवेल्लइ

यह सस्कृत के **'संवेष्टते'** का रूप वनता है। सर्वप्रथम **'उरसमोर्ल'** (८-४१) से ष्ट को ल होने पर **'शेषादेशयोर्दित्वमनादौ'** (३-५०) से ल को द्वित्व होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से त को इ होने पर यह प्रयोग वनता है।

३३९ सक्कइ

सस्कृत की इसकी मूल प्रकृति **'शक्नोति'** है। **'शक्लृ शक्तौ'** इस धातु से यह रूप वनता है। सर्वप्रथम **'शषो सः'** (२-४३) से श को स होने पर **'शकादीनां द्वित्वम्'** (८-५२) से क् को द्वित्व होने पर **'ततिपोरिदेतौ'** (७-१) से इ होने पर यह रूप वनता है।

३४० सडइ

इसकी मूल प्रकृति **'शीयते'** है। **'शद्लृ शातने'** इस धातु से यह रूप वनता है। सर्वप्रथम **'शषो. स'** (२-४३) से श को स होने पर **'शदलृपत्योर्ड.'**

(८-५१) से दलृ को ड होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर यह रूप बनता है।

३४१ सरइ

संस्कृत मे 'सृ' धातु मे 'सरति' रूप बनता है। उसी का यह रूप प्राकृत भाषाओ मे होता है। सर्वप्रथम 'ऋतोऽर' (८-१२) से ऋ को अर् होने पर सर् होता है तब 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रूप सिद्ध होता है।

३४२ सुणइ

संस्कृत मे 'श्रुश्रवणे' इस धातु से 'शृणोति' रूप बनता है। उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'सुणइ' रूप होता है। सर्वप्रथम 'शषो. स.' (२-४३) से श को स् होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'श्रुहुजिलूधुवा णोऽन्त्ये ह्रस्व.' (८-५६) से ण होने पर 'ततियोरिदेतौ' (७-१) मे इ होने पर यह रूप बनता है।

३४३ सव्वे

सर्व शब्द से जस् विभक्ति मे यह रूप बनता है। सर्व + जस् इस अवस्था से 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) मे र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ'(३-५०) से व् को द्वित्व होने पर यह प्रयोग बनता है। संस्कृत मे 'सर्वे' रूप है।

३४४ सव्वस्सि, सव्वम्मि, सव्वत्थ

सर्व शब्द से ङि विभक्ति से ये तीनो रूप बनते हैं 'ङे स्सिम्मित्था' (६-२) से ङे को स्सि म्मि तथा त्थ होने पर 'सर्वत्रलवराम्' (३-३) से र् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ' (३-५०) से व् को द्वित्व होने पर ये प्रयोग सिद्ध होते हैं।

३४५ सहइ

संस्कृत मे सह धातु से सहते रूप बनता है। उसी का यह रूप है। 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) मे त को इ होने पर यह रूप बनता है।

३४६ सहामि

संस्कृत मे सह धातु मे सहे रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे सहामि बनता है। सहधातु से मिप् के स्थान पर 'इट्मिपोमि.' (७-३) से मि होने पर 'अत आ मिपि वा' (७-३०) मे आ होने पर सहामि रूप बनता है।

३४७ सहीअइ, सहिज्जइ

ये दोनो रूप 'सह्यते' के बनते हैं। 'यक, ईअ इज्जौ' (७-८) से यक् के स्थान पर 'ईअ' तथा 'इज्ज' आदेश होते है और 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर ये दोनो रूप सिद्ध होते है।

३४८. सिं

सस्कृत मे तद् शब्द से आम् विभक्ति मे तेपाम् तथा तासाम् रूप बनते हैं उन्ही का प्राकृत भापाओ मे 'सिं' रूप भी होता है। 'आमासिं' (६-१२) से 'सिं' आदेश होता है।

३४९ सुत्तो

यह रूप सुप्त का बनता है। 'उपरिलोप क ग ड तदप षसाम्' (३-१) से प् का लोप होने पर 'शेषादेशयोर्दित्व मनादौ' (३-५०) से त को द्वित्व होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३५०. सुपइ

सस्कृत मे मृजू शुद्धौ इस धातु से 'मार्ष्टि' प्रयोग बनता है जिसका अर्थ शुद्ध करना होता है उसी का यह रुप है। 'मृजेलुं मसुपौ' (८-६७) से सुप आदेश होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग सिद्ध होता है।

३५१. सुमरइ

सस्कृत से स्मृ धातु से स्मरति रुप बनता है। प्राकृत भाषाओ मे उसी का यह रुप है। 'स्मरतेर्भरसुमरौ' (८-१८) से सुमर आदेश होने पर 'ततिपो-रिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३५२ सुव्वइ, सुणिज्जइ

ये दोनो रुप श्रूयते के बनते हैं। 'शषो. स' (२-४३) से श् को स होने पर 'सर्वत्र लवराम्' (३-३) से र का लोप होने पर श्रु का सु शेष रहता है तब 'भाव कर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से य का व्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर यह रुप बनता है। व्व विकल्प से होता है जिस पक्ष मे व्व नही होता वहाँ ण होता है श्रु हु जिलू घुर्वाणोऽन्त्येह्रस्व' (८-५६) से ण होने पर 'ए च क्त्वा तुमुन् तव्य भविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'मध्येच' (७-२१) से ज्ज होकर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर यह रुप बनता है।

३५३ स्रु

संस्कृत मे कुत्सा या निन्दा के अर्थ मे धिक् शब्द का प्रयोग होता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे यह प्रयोग है। 'स्रु कुत्सायाम्' (९-१४) से यह शब्द निपात के रुप मे है।

३५४. सूसइ

यह प्रयोग शुष् धातु का है संस्कृत मे शुष्यति बनता है। शषो स' (२-४३) से श् तथा ष् को स् होने पर 'रुषादीनादीर्घता' (८-४६) से दीर्घ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रुप बनता है।

३५५ से

तद् शब्द मे ङ स् विभक्ति मे संस्कृत मे तस्य तथा तस्या रुप बनते हैं। उसी का प्राकृत भाषाओ मे 'से' रुप है। 'ङसा से' (६-११) से 'से' आदेश होने पर यह प्रयोग बनता है।

३५६ सोऊण

श्रु धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर संस्कृत मे श्रुत्वा रुप बनता है। प्राकृत भाषाओ मे उसी का यह रुप है। 'सर्वत्र लवराम्', (३-३) से र् का लोप होने पर शषो स' (२-४३) से श् को स् होने पर 'युवर्णस्य गुण' (हेमचन्द्र) इस सूत्र मे उ को ओ गुण होने पर 'क्त्वा ऊण.' (४-२३) से ऊण आदेश होने पर यह रुप सिद्ध होता है।

३५७ सोच्छं

यह रुप 'श्रोष्यामि' का बनता है। 'कृञा श्रु वचि गमि रुदि विदि रूपाणा काहं दाहं सोच्छं वोच्छं गच्छं रोच्छं वच्छं वेच्छं' (७-१६) से सोच्छं आदेश होने पर यह रुप बनता है।

३५८ सोच्छिइ, सोच्छिहिइ

ये दोनो रुप श्रोष्यति के बनते है। 'श्रुप्रादीना त्रिष्वप्यनुस्वार वर्जं हिलोपश्च वा' (७-१७) से 'सोच्छ' आदेश होने पर 'ए च क्त्वा तुमुन् तव्य भविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर 'सोच्छिइ' प्रयोग बनता है और पक्ष मे 'धातोर्भविष्यति हि' (७-१२) से हि होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से इ होने पर यह रुप बनता है।

३५९. सोहंति

इसका संस्कृत रुप शोभन्ते है। 'शषो स' (२-४३) से श को स होने पर 'ख घ थ ध भां ह.' (२-२७) से भ को ह होने पर 'न्ति हेत्था मोमुमा बहुषु'

(७-४) से न्ति होने पर 'यवि तद् वर्गान्त' (४-१७) से विन्दु होने पर यह रुप वनता है।

३६० हके, हगे

सस्कृत मे अस्मद् शब्द से सु विभक्ति मे अह रूप वनता है उसी के ये दोनो रुप भी प्राकृत भाषाओ मे होते है। 'अस्मद. सौ हके हगे अहके' (११-९) से हके और हगे आदेश होने पर ये दोनो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

३६१ हदो

इसकी मूल प्रकृति हत है 'ऋत्वादिषु' तोद' (२-७) से त को द होने पर 'अत ओत् सो' (५-१) से ओ होने पर यह रुप वनता है।

३६२ हं

यह रुप भी अह का वनता है । 'अस्मदो हं महमहअ सौ' (६-४०) से ह होने पर यह रुप वनता है।

३६३ हम्मइ

मस्कृत से हन् धातु से हन्ति रुप वनता है उसी का यह प्रयोग है 'हन्तेर्म्म' (८-४५) से म्म आदेश होने पर ततिपोरिदेतौ' (७-१) मे इ होने पर यह रुप बना है।

३६४ हरिसइ

सस्कृत मे हर्षति और हृष्यति ये दो रूप होते हैं उन्ही का यह रुप है। 'वृष कृष मृष हृषा मृतोऽरि' (८-११) से ऋ को अरि होने पर 'शषोः स' (२-४३) से ष् को स होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग वनता है

३६५ हशिवु, हशिदि

ये प्रयोग मागधी प्राकृत मे हसित के वनते हैं 'शषो. स' (११-३) से स् को श होने हर 'अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ' (१२-३) से त को द होने पर 'क्रान्तादुश्च' (११-११) से उ तथा इ होने पर ये दोनो प्रयोग वनते हैं।

३६६ हसई, हसन्ती हसमाण

ये तीनो रुप हसन्ती के वनते हैं। 'ई च स्त्रियाम्' (७-११) से इ, न्त, माण आदेश होने पर ये तीनो रुप वनते हैं।

३६७ हस्सइ, हसिज्जइ

'हस्यते' के ये दो रुप वनते हैं। 'गमादीनां द्वित्वं या' (८-५८) से स् को द्विन्व होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-५) से त को इ होने पर 'हस्सइ' रुप वनता है और पक्ष मे 'ए च क्त्वा तुमुन् तव्यभविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'मध्ये च' (७-१२) मे ज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर हसिज्जइ रुप वनता है।

३६८ हसह

सस्कृत के हसथ का यह रुप है। 'न्ति हे त्या मो मुमा वहुषु' (७-४) से ह होने पर यह रुप वनता है।

३६९ होहिइ

यह रुप सस्कृत के 'भविष्यति' का वनता है। भुवो हो हुवो' (८-१) से भू को हो होने पर ' धातोर्भविष्यतिहि (७-१२) से हि होने पर ततिपोरिदेतौ (७-१) से इ होने पर यह रुप वनता है।

३७० हसिहिइ

यह रुप 'हसिष्यति' का वनता है। 'धातोर्भविष्यतिहि.' (७-१२) से हि होने पर 'ए च क्त्वतुमुन् तव्य भविष्यत्सु ' (७-३३) से इ होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह रुप वनता है।

३७१ होहिस्सा, होहित्था

ये दोनो रुप भविष्याम के वनते हैं। सर्वप्रथम भू के स्थान पर 'भुवो हो हुवो' (८-१) से हो जाने पर 'मोमुर्मांहिस्सा हित्था' (७-१५) से हिस्सा तथा हित्था होने पर ये दोनो रुप वनते हैं।

३७२ हसिहिस्सा, हसिहित्था

ये दोनो प्रयोग हसिष्याम के वनते हैं इस धातु के 'एच क्त्वा तुमुन, 'तव्यमविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'मोमुर्मैहिस्सा हित्था' (७-१५) से हिस्सा तथा हित्था आदेश होने पर ये दोनो प्रयोग वनते हैं।

३७३ हिरे

यह नियात है सभापण रति, कलह , आक्षेप आदि मे इसका प्रयोग होता है 'रे अरे हिरे सम्भापण रतिकलहाक्षेपेषु' (९-१५) से यह शब्द निपतित होता है।

३७४. हीरइ

सस्कृत मे 'ह्रियते' इम प्रयोग का प्राकृत भापाओ मे यह प्रयोग वनता है। 'हृ ञो हीर कीरौ' (८-६०) से ह्रु को हीर होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३७५ हुं

यह निपात है और प्राकृत भाषाओ मे यह 'हुं दान पृच्छा निर्धारणेषु' (९-२) इस सूत्र से दान, पूछना तथा निर्धारण (निश्चय) अर्थो मे तथा हु क्खु निश्चय वितर्क सम्भावनेषु' (७-६) से निश्चय, वितर्क तथा सभावना अर्थो मे इसका प्रयोग होता है।

३७६. हुअं

यह प्रयोग भू धातु से क्त प्रत्यय के योग मे सस्कृत के भूतम् के स्थान पर प्राकृत भाषाओ मे प्रयुक्त होता है। 'क्ते हुः' (८-२) से भू को हु होने पर 'क ग च ज तद पयवा प्रायो लोप' (२-२) से त् का लोप होने पर 'सोर्विन्दुर्नपुसके' (५-३०) मे म् को विन्दु ( ) होने पर यह प्रयोग वनता है।

३७७. हुणइ

सस्कृत मे हु धातु से 'जुहोति' रूप वनता है उसी का प्राकृत भाषाओ मे यह रूप है। 'श्रु हु जिलू धुवाणोऽन्त्ये ह्रस्व' (२-५६) से ण होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग होता है।

३७८. हुव्वइ हुणिज्जइ

सस्कृत मे हू धातु का भाव तथा कर्म वाच्य मे हूयते प्रयोग बनता है उसी के ये दोनो प्रयोग प्राकृत भापाओ मे होते हैं। 'भावकर्मणोर्व्वश्च' (८-५७) से 'व्व' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से त को इ होने पर 'हुव्वइ होता है और 'श्रु हु जि लू धुवां णोऽन्त्ये ह्रस्व' (८-५६) से ण होने पर 'ए च क्त्वा तुमुन् तव्य भविष्यत्सु' (७-३३) से इ होने पर 'मध्ये च' (७-२१) से ज्ज होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से अन्त मे त को इ होने पर 'हुणिज्जइ' रूप वनता है ।

३७९. हुवइ

सस्कृत मे भू धातु का 'भवति' रूप वनता है उसी का यह प्राकृत प्रयोग है। 'भुवो हो हुवौ' (८-१) से हुव होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर 'हुवइ' प्रयोग सिद्ध होता है।

३८०. हुवीअ

संस्कृत मे भू धातु से भूतकाल मे अभवत्' रूप बनता है उसी का प्राकृत भाषाओ में यह रूप है। सर्वप्रथम 'भुवो हो हुवो' (८-१) से भू को हुव आदेश होने पर 'ईअ भूते' (७-२३) मे 'ई अ' आदेश होने पर 'हुवीअ' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

३८१ हुवसु

संस्कृत मे भू धातु से लोट् लकार मे सिप् प्रत्यय के योग मे 'भव' रूप बनता है उसी का यह प्रयोग है। सर्वप्रथम 'भुवो हो हुवो' (८-१) से हुव आदेश होने पर 'उसुमुविध्यादिष्वेकस्मिन्' (७-१२) से सिप् के स्थान पर 'सु' होने पर 'हुवसु' यह रूप बनता है।

३८२ होइ

संस्कृत मे भू धातु से लट् लकार मे तिप् प्रत्यय के योग में 'भवति' रूप बनता है उसी का यह प्राकृत रूप है। सर्वप्रथम 'भूवो हो हुवो' (२-१) से 'हो' होने पर 'ततिपोरिदेतौ' (७-१) से ति को इ होने पर यह प्रयोग बनता है।

३८३ वियले

संस्कृत 'विजलः' का यह प्राकृत रूप है। 'जोय' (११-४) से ज को य होने पर 'पलि च ए' (हेमचन्द्र) इस सूत्र से ए होने पर 'वियले' रूप बनता है।

प्राकृत भाषाओं का उद्भव, वैशिष्ट्य एवं साहित्य

प्रारम्भिक प्रकरणो मे प्राकृत भाषाओं की उत्पति तथा विकास के सम्बन्ध मे कुछ विवेचन हो चुका है। यह निश्चय है कि प्राय भारतीय विद्वानो की सम्मति मे प्राकृत भाषाओ ने अपनी मूल प्रकृति सस्कृत को विस्मृत नही किया है और सस्कृत से ही जहाँ अन्य देशी अपभ्रश भाषाओ का पारम्पर्य सम्बन्ध से विकास हुआ है वहाँ प्राकृत भाषाओ का भी सस्कृत से ही उद्भव हुआ है और वे ही प्राकृतें बौद्ध तथा जैन राजाओ तथा विद्वानो के आश्रय से लोक या प्राकृत जन साधारण मे भी प्रवृत्त हो गई।

प्राकृतो का उपलब्ध साहित्य ईसवी पूर्व दूसरी या तीसरी शताब्दी से ही उपलब्ध होता है। ब्राह्मण धर्म के प्रति जो एक विशिष्ट विरुद्ध प्रतिक्रिया बौद्धो तथा जैनो द्वारा प्रचलित की गई थी उसका रूप केवल धार्मिक क्षेत्र मे ही सीमित नही रहा। जहाँ वेदों, यज्ञो, कर्मकाण्डो आदि के प्रति अनास्था दिखलाई गई वहाँ तीर्थ, व्रत, स्नान, श्राद्ध, तर्पण आदि विधियो के विरोध मे भी जैनियों तथा बौद्धो ने स्पष्ट रूप से खण्डनात्मक दिशा का अवलम्बन लिया और जन्मजात वर्ण-व्यवस्था का भी खण्डन किया गया। जैन धर्म के पुराणो मे तो राम तथा कृष्ण पर भी तरह-तरह की नवीन तथा अद्भुत कल्पनायें की गई जैसे राम ने बनवास के समय अपने आठ विवाह तथा लक्ष्मण ने १३ विवाह किए। सुग्रीव की कन्याओ से भी इनके विवाह हुए और अयोध्या लौटने पर राम के राज्य करने पर रामचन्द्र के ८०० तथा लक्ष्मण के १२०० स्त्रिया थीं आदि आदि बातें जैनियो ने अपने ग्रथो (देखिये पउम चरित) मे लिखी।

इस प्रकार सामान्य रूप से ब्राह्मण या वैदिक धर्म के प्रति विद्वेष तथा अनास्था की भावना ही इन धर्मों के अनुयाइयो मे रही। उसी के फलस्वरूप ब्राह्मणो तथा वेदो की भाषा तथा साहित्य के प्रति भी उनकी विरोध सम्बन्धिनी प्रतिक्रिया परिपुष्ट होती रही और प्राय जैन तथा बौद्ध विद्वानो ने सस्कृत मे लिखना पढना भी समाप्त कर दिया। सस्कृत भाषा के

विद्यमान होने पर भी तया सस्कृत को जानने पर भी इन भिक्षुओ तथा विद्वानो ने सस्कृत को आश्रय नही दिया और अपने देश मे प्रचलित प्राकृत का ही समाश्रय लिया। जैन तथा बौद्ध साहित्य मे अत्यन्त अल्प ग्रन्थ ही सस्कृत मे उपलब्ध होते हैं इसका कारण केवल सस्कृत की क्लिष्टता ही नही है अपितु वह प्रतिक्रिया है जो उन पडितो मे स्वाभाविक रूप से वैदिक या ब्राह्मण धर्म के विरोध मे थी।

इस प्रकार ईसवी दूसरी शताब्दी पूर्व से विक्रम की ७ वी या ८ वी शताब्दी तक इन प्राकृतो का साहित्य निर्मित हुआ और उसके भिन्न-भिन्न रूप भी प्राप्त हुए।

वैदेशिक विद्वानो ने प्राकृत भाषाओ के कुछ थोडे से शब्दो की केवल बाह्य बनावट को देखकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि प्राकृत का विशिष्ट सम्बन्ध वैदिक भाषा से है न कि सस्कृत भाषा मे और इस प्रकार उन्होंने सस्कृत का या वैदिक भाषा का भी उद्गम जन साधारण मे प्रचलित प्राकृत भाषाओ से ही सिद्ध करने का प्रयास किया है। कुछ थोडे से विकल्पो जैसे देवा देवेभि, स्कम्भ खम्भ, उच्चा नीचा आदि को देखकर ही यह विद्वान यह मानते हैं कि आर्यों ने यहाँ वसने पर जो भाषा यहाँ पर प्रचलित थी उसी का परिष्कार कर वैदिक तथा मस्कृत की रचना की है। वे इस बात को मानना भी नही चाहते कि सस्कृत जैसी सुगठित पूर्ण तथा व्यवस्थित भाषा भी आर्य लोग निर्मित कर सके होगे क्योंकि उन्होंने प्राकृत भाषा को ही सस्कृत रूप दिया।

वैदिक भाषा तथा सस्कृत भापा की अनुरूपता सर्व जन अनुमोदित है। ९५ प्रतिशत शब्दावली (कृदन्त तथा तद्धित) दोनो के समान हैं। आख्यात, उपसर्ग तथा निपातो मे भी इतना ही साम्य है। हा कुछ स्थलो में परिवर्तन अवश्य है और वह परिवर्तन सस्कृत के लोक भापा होने के परिणाम रूप होने से ही है। प्राकृत का वैदिक भाषा के शब्दों से साम्य एक या दो प्रतिशत से अधिक नही है तव इस अवस्था मे प्राकृतो की घनिष्टता वैदिक भापा से नही हो सकती, हाँ, हो सकता है कि उत्तरकाल मे वैदिक पदावली भी प्राकृतो मे समाविष्ट हो गई हो पर व्यापकता तो वैदिक भापा मे सस्कृत की है न कि प्राकृतो की।

वेदो के सम्बन्ध मे निघण्टु प्रामाणिक शब्दकोष है उसके अध्ययन से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि उसमे प्राकृतों मे प्रचलित प्रयोग नही के बराबर हैं पर सस्कृत के प्राय शत प्रतिशत। फिर प्राकृतो का सम्बन्ध

परम्परा से तो वैदिक से हो सकता है (संस्कृत के द्वारा) पर मौलिक रूप से नही।

वेदो के शब्दो का निर्वचन निरुक्त मे हुआ है। उसकी निर्वचनप्रक्रिया भी सस्कृत के जितनी अनुरूप है उतनी प्राकृतो से नही। कोई भी ऐसा व्याकरण नही है जिसमे वैदिक शब्दो की रूप-सिद्धि उस समय प्रचलित प्राकृत भाषाओ से की गई हो। कोई तो व्याकरण का ऐसा ग्रन्थ होना चाहिए था जो कि यह बतलाता कि सस्कृत या वैदिक भाषा के शब्द प्राकृत भाषाओ से इस प्रकार बने। उदाहरण के लिए—वैदिक तथा सस्कृत भाषा मे 'भूतम्' का प्रयोग मिलता है जिसका प्राकृत रूप 'हुआ' है। हुआ से भूतम् कैसे बन गया या ग्यारह मे एकादश या बारह से द्वादश कैसे बन गये इसका कोई तो नियम वैदिक या सस्कृत भाषाओ मे मिलना चाहिए था पर कोई भी ऐसा व्याकरण ग्रन्थ नही है। हा वैदिक अथवा सस्कृत के भूतम् से हुआ कैसे बना एकादश तथा द्वादश अथवा विद्या से विज्जा रूप बनने की प्रक्रिया तो प्राप्त होती है और प्राकृत सर्वस्व प्राकृत प्रकाश, सिद्ध हेमचन्द्र आदि ग्रन्थो मे इसका स्पष्ट उल्लेख है। तब यह सत्य है कि वैदिक तथा सस्कृत भाषाओ के उत्तर ही प्राकृतो का विकास हुआ न कि पूर्व।

प्राकृतो के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। मागधी, अर्द्ध मागधी शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री आदि। प्रश्न यह है कि वैदिक तथा सस्कृत का विकास इन प्राकृतो मे से किस प्राकृत से हुआ कोई भी उपलब्ध व्याकरण इस बात की पुष्टि नही करता कि एक ही रूप से सम्पूर्ण भारत मे व्याप्त सस्कृत या वैदिक भाषा का उद्भव किसी एक ही प्राकृत से हुआ हो जब प्राकृतो के अनेक रूप भारत मे यत्र तत्र प्रचलित थे। सस्कृत के भी भिन्न-भिन्न रूप होने चाहिये थे पर ऐसा नही है। काश्मीर, अवन्ती तथा दक्षिण भारत मे एव गुजरात, उडीसा तथा बगाल मे सस्कृत की एक-रूपता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इसका उद्भव प्राकृतो से नही हो सकता किसी एक मूल की ही विभिन्न शाखाए हो सकती हैं न कि विभिन्न शाखाओ से एक मूल की उत्पत्ति हो सके। यह साधारण सा तर्क भी प्राकृत भाषाओ को सस्कृत तथा वैदिक की मूलरूपा प्रतिपादित करने वालो के समक्ष अवश्य होना चाहिये।

सस्कृत भाषा मे प्राकृतो का प्रयोग नाटको मे प्रधान रूप से उपलब्ध होता है। सस्कृत के इन नाटको मे ईसा की द्वितीय शताब्दी से लेकर

१५ वी तथा १६ वी शताब्दी तक सभी मे प्राकृत भाषाओ का व्यवहार किया गया है पर पात्रो के विचार से इनका प्रयोग स्त्रियो, मध्य श्रेणी के व्यक्ति तथा विदूषक आदि के द्वारा ही हुआ है। उच्च वर्ग के लोगो ने इसका प्रयोग नही किया है। क्यो ? यदि सस्कृत तथा वैदिक भाषाओ का मूल स्रोत प्राकृत भाषायें होती तो निस्सन्देह उनका वैशिष्ट्य होता और सर्व साधारण मे प्रचलित होने के कारण उनके प्रयोग मे किसी भी प्रकार का संकोच न होता क्योकि वे ही भाषायें लालित्यपूर्ण तथा मनोहर भी थी जैसा कि 'अहो तत् प्राकृत हारि' आदि वचनो मे स्पष्ट है। फिर उनको हीन दृष्टि से क्यो देखा गया। महाभाष्यकार ने प्राकृतो तथा अन्य देशी शब्दो को अपशब्द अथवा अपभ्रश के नाम से व्यवहृत किया है। "भूयासो अपशब्दा. अल्पीयास. शब्दा एकैकस्यशब्दस्यवहवोऽपभ्रशा." । इससे प्रतीत होता है कि महाभाष्यकार प्राकृतो से सस्कृत का उद्गम नही स्वीकार करते। हस्त से हत्थ या हाथ, विद्या से विज्जो, वृश्चिक से बिच्छुओ शय्या से सेज्जा (सेज) आदि का रूप परिवर्तन तो समझ मे आता है पर हत्थ के त्थ को सस्कृत मे स्त किस सूत्र अथवा नियम से हुआ अथवा विज्जा के ज्जा के स्थान पर विद्या का द्य कैसे हो गया इस नियम के निर्देशक सस्कृत व्याकरण में कोई भी तथा किसी के भी सूत्र नही हैं फिर शास्त्रीय प्रमाण न होने पर स्वय केवल कोरी कल्पनाओ से यह सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लेना कि सस्कृत ने प्राकृतो से अपना रूप ग्रहण किया भाषाओ के साथ तथा उनके नियमो के साथ अत्याचार करना है।

रूप, ध्वनि, व्याकरण, स्वर की साम्यता तथा अनुरूपता से वैदिक तथा सस्कृत भाषा मे जितना साम्य है उतना प्रतिशत साम्य वैदिक तथा प्राकृत मे नही है। हा सस्कृत से प्राकृत रूपो की अथवा देशी भाषा के रूपो की तद्भवता अधिक रूपो मे उपलब्ध होती है। धम्म से धर्म नही पर धर्म से धम्म, पत्ता से पत्र नही पर पत्र से पत्ता (स्वर भक्ति) का परिवर्तन बुद्धि सगत है।

भाषा विज्ञान के आधार पर प्राय भाषायें स्वय या स्वाभाविक रूप से क्लिष्टता से सरलता की ओर प्रवृत होती हैं न कि सरलता से क्लिष्टता की ओर। वे समस्त से व्यस्त होना चाहती हैं। विसान्दर से वैश्वानर नही पर वैश्वानर से विसान्दर हो सकता है। प्राकृत रूपो से (अपभ्रश या अपशब्द) सस्कृत का विकास मानने पर तो लाटकमण्डल से लॉर्डस्, कमॉन्डर, लपटन से लेफ्टिनेन्ट, खलासी से क्लास सी की उलटी

गगा बहानी पडेगी । प्राकृतो के मज्झ से मध्य भिगो से भृङ्ग मउड से मुकुटम् लट्ठी से यष्टि लच्छी से लक्ष्मी, णेड्डा से निद्रा, जूज्झइ से युद्ध्यते, कञ्जा से कन्या की रूप उपपत्ति स्वीकार करनी होगी जो कि परम्परा प्राप्त भाषाओ के विकास के नियमों मे अवश्य वाधिका है। फिर प्राकृतो का तो यह गौरव है कि उन्होंने साधारण जनता के हाथो मे जाने पर भी अपनी मूल प्रकृति को नहीं छोडा और साथ ही साथ जिन शब्दो की सस्कृत प्रकृति नही भी थी उनको भी आगे चलकर देशी तथा अपभ्रश शब्दो के रूप मे अपने मे मिला लिया । परिणामत सोने से बने आभूषण भी तो मूल्य मे सोने से अधिक होते ही हैं अत प्राकृतो का यही मूल्य है कि उनमे भाषाओ की सजीवता तथा सक्रियता निहित है सस्कृत के समान निहत नही हो गई है ।

यह कहना कि सस्कृत के अन्दर वहुत से विकारी तथा अन्य प्रान्तो तथा देशो के शब्द हैं और इसलिये सस्कृत भी एक मिश्रित भाषा है ठीक ही है पर इससे सस्कृत के स्वरूप मे तथा उसके महत्व मे किसी भी प्रकार का अन्तर नही आता। सस्कृत की न्यूनताओ की पूर्ति के ही लिये तो समय समय पर वार्तिक सूत्र, परिभाषा सूत्र, गण सूत्र तथा महाभाष्यकार की इष्टिया वनाई गई । अन्य शब्दो को भी गणो मे समन्वित करके सस्कृत ने उदारता का परिचय दिया । इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशो मे प्रयुक्त शब्दो को सस्कृतवत् वनाने का कार्य पाणिनि तथा उनके उत्तरकाल मे होता ही रहा तव उन शव्दो को सस्कृत मे देखकर यह अनुमान करना कि सस्कृत ने अपना रूप प्राकृत के द्वारा ग्रहण किया बुद्धि का द्रविड, प्राणायाम ही है । शाक लशुनका, चक्कन, स्नात्वी, पीत्वी, पिचण्ड, इर्गल, कुल्माप, उम्भि कच्छूल, सैकपत, वाकिन, गौधेर, मकण्टु, अररक आदि अनेक शब्द गणो मे हैं वे भी सस्कृत के अनुरूप ही मान लिये गये हैं। क्योकि पाणिनि के समय मे भी शव्दो के महासागर के सभी शब्द सस्कृत के नियमो से सिद्ध नही होते थे पर उनको भी सस्कृत के अनुरूप स्वीकृत कर लिया गया था। अत केवल मात्र इन शव्दो की स्थिति से सस्कृत को प्राकृत मूला कहना भ्रान्ति ही है। अत प्राकृत प्रकाश, प्राकृत सर्वस्व, अथा सिद्ध हेमचन्द्र आदि विद्वानो के आधार पर हमारा भी विचार है कि प्राकृतों की मूल भूता सस्कृत ही है ।

इस प्रकरण मे प्राकृत भाषाओ की सामान्य विशेषताओ का पाठको की सुविधा के लिये प्रतिपादन करना अनुचित नही होगा क्योकि इन विशेषताओ से उस सामान्य विचारधारा का प्रदर्शन होता है जिससे यह

सरलता से जाना जा सकता है कि किस प्रकार सस्कृत की क्लिष्टता तथा अनेक रूपता के स्थान पर सरलता तथा एक रूपता लाने का उद्योग किया गया।

सस्कृत मे स्वरो के कारण जो उच्चारण मे कठिनता तथा असौकर्य था उसको भी मुख सुख की दृष्टि से सरल किया गया और सस्कृत मे मूल स्वरो के स्थान पर ऐसे स्वर रखे गये जिनके सहयोग से उस शब्द का उच्चारण सरलता पूर्वक हो मकता था। सक्षेप से प्राकृत भाषाओ मे स्वरो मे इस प्रकार के परिवर्तन प्राप्त होते हैं

१—अनेक शब्दो मे सस्कृत की 'अ' की ध्वनि 'आ' मे परिवर्तित कर दी गई। जैमे—समृद्धि सामिद्धी, मनस्विनी माणसिणी, प्रकट पामड, प्रतिपिद्धि पाडिसिद्धी, प्रसुप्त पासुत्त, अश्व आसो, प्रमिद्धि पासिद्धी।

२—शब्द की आदि 'अ' की ध्वनि को 'इ' भी हो जाता है। जैसे—पक्वम् पिक्क, असि इसि, स्वप्न सिविणो, व्यजनम् विअणो, म्लानम् मिलान, मृगाङ्क मिअको, मृदङ्ग मिइगो।

३—शब्दो के प्रारम्भ का 'अ' कही-कही 'ए' मे परिवर्तित होता है। जैसे—शय्या सेज्जा, सुन्दरम्. सु देर, उत्कर . उक्केरो, आश्चर्य अच्छेर, त्रयोदश तेरह, वल्ली वेल्ली, पर्यन्तम् पेरन्तम्।

४—आदि 'अ' को 'ओ' भी होता है। जैसे—वदर वोर, नवमल्लिका णोमल्लिआ, लवणम् लोण, मयूर मोरो, मयूख . मोरवो, चतुर्थी चोत्थी, चतुर्दशी चोद्दही।

५—कही-कही दीर्घ 'आ' की ध्वनि 'अ' मे परिवर्तित होती है. जैसे तथा तह, यथा जह, प्रस्तर पत्थरो प्राकृतम्. . प उ अ चामर चमर, प्रहार पहरो, चाटु चडु, दावाग्नि दवग्गी।

६—'आ' की ध्वनि 'इ' मे परिवर्तित होती है। जैसे—सदा सइ, तदा तइ, यदा . जइ।

७—'इ' की ध्वनियाँ 'ए' मे भी परिवर्तित होती हैं। जैसे—पिण्ड पेण्ड, निद्रा णेद्दा, सिन्दूरम् सेदूर, धम्मिल्ल धम्मेल, चिन्हम् चेंध, विष्णु वेण्हू, पिष्टम् पेट्ठ।

८—'इ' का परिवर्तन 'अ' मे भी कही-कही होता है। जैसे—पथि पहो, पृथिवी. पहवी, हरिद्रा. हलद्दा।

९—'इ' को 'उ' भी होता है। इक्षु. उच्छ, वृश्चिक विच्छओ।

१०—'इ' को 'ई' (दीर्घध्वनि) भी होती है। सिंह सीहो, जिह्वा . जीहा, विश्वस्त वीसत्थो, विस्रम्भ . वीसभो।

११—'ई' को कही -कही 'इ' भी होता है। पानीयम ..पाणिअ, अलीकम् अलिअ, व्यलीकम् वलिअ, तदानीम् तआणि द्वितीयम् . दुइअ, तृतीयम् तइअ, गभीर गहिर।

१२—'ई' की ध्वनि को 'ए' ध्वनिया भी होती है। नीडम् णेड, आपीडम् आमेलो, क्रीदृग् .केरिसो, ईदृग् ..एरिसो।

१३—'उ' को 'ओ' भी होता है। तुण्डम् तोण्ड, मुक्ता मोत्ता, पुष्कर पोक्खरो, पुस्तकम् पोत्थओ, लुब्धक लोद्धओ।

१४—'उ' की ध्वनि 'अ' की ध्वनि मे परिवर्तित होती है। मुकुटम् मउड, मुकुल मउल, गुरु गुरुअ, गुर्वी गरुई।

१५—पदो के प्रारम्भ का 'ऋ' वर्ण अ मे परिवर्तित होता है। तृणम् तणं, घृणा घणा, मृतम मअ, कृतम् कअ, वृषभ वसहो।

१६—पदो के आदि का ऋकार इकार मे भी बदलता है।
श्रृगार सिङ्गारो, ऋषि इसी, गृष्टि गिट्ठी, दृष्टि दिट्ठी सृष्टि .सिट्ठी, श्रृगार सिंगारो, मृगाङ्क मिअको, भृङ्ग भिङ्गो, हृदयम् हिअअ।

१७—किन्ही पदो मे आदि के 'ऋ' को उ' हो जाता है। ऋतु उदू, मृणाल मुणालो, पृथिवी पुहवी, प्रवृत्ति पउत्ती, निवृत . णिउद, वृत्तान्त वुत्ततो।

१८—पदो के आदि के 'ऋ' को 'रि' भी होता है। ऋणम् रिणम्, ऋद्ध रिद्धो, ऋक्ष रिच्छो।

१९—पदो के आदि के 'ऐ' को 'ए' भी होता है। शैल सेलो, शैत्य . सेच्च, ऐरावण एरावणो, कैलासो केलासो, त्रैलोक्यम् तेल्लोक।

२०—पदो के आदि के 'ऐ' 'अइ' (द्विस्वरता) होता है।
दैत्य दइच्चो, चैत्र चइत्तो, भैरव भइरवो, वैर वइर, वैदेश वइदेसो, वैदेह वइदेहो, कैतव कइअवो, वैशाख वइसाहो।

२१—पदो के आदि के 'औ' की ध्वनि 'ओ' मे परिवर्तित होती है। कौमुदी कोमुई, यौवनम् .जोव्वण, कौस्तुभ कोत्थु हो, कौशाम्वी कोसवी।

२२—'औ' को 'अ उ' (द्विस्वरता) भी होता है । पौर पउरो, कौरव कउरवो, पौरुप ..पउरिसो ।

२३—'औ' की ध्वनि को 'उ' हो जाता है ।

सौन्दर्यम् सुन्देर, मौञ्जायन मुञ्जाअणो, शौण्ड .सुण्डोकौक्षेयक कुक्खेअओ, दौवारिक. दुव्वारिओ ।

इसी प्रकार प्राकृत भाषाओ मे संस्कृत भापा के स्वरो का प्राय परिवर्तन हो गया है । विशिष्ट शब्दो मे भी विशिष्ट परिवर्तन हुए जैसे—गौरवम् का गारवम्, धैर्यम् का धीरम्, सैन्धव का सिन्धव, वेदना का विअणा, देवर का दिअरा, नूपुर का णेउर, मिह का सीहो, जिह्वा का जीहा । इस प्रकार उच्चारण के सोकर्य तथा क्लिष्टता के परिहार की दृष्टि से स्वरो मे परिवर्तन किये गये ।

न केवल स्वरो मे पर वर्णों तथा सयुक्त अक्षरो में भी परिवर्तन किये गये, यहा तक कि शब्दो के बहुत से व्यञ्जनो का लोप भी प्राकृतो मे हो गया । असयुक्त व्यञ्जनो के परिवर्तनो को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है ।

क, ग, च, ज, त, द, प, य अक्षरो का प्राय. लोप हो जाता है । जैसे मुकुल मउलो, नकुल णउल, सागर· साअरो, नगर णअर सूची . . सुई, गज गओ, रजत रअदं, कृत कअ, वितानम् विआणं, गदा गओ, मन मओ, कपि कई, विपुलम् विउल, वायु वाऊ, नयन- णअण, जीवम् जीअम्, दिवसम् दिअहो आदि ।

इसी प्रकार विशिष्ट शब्दो मे विशेप परिवर्तन प्राकृत भाषाओं मे कर दिये गये । जैसे यमुना के म का लोप हो कर जउणा ।

स्फटिक निकप तथा चिकुर शब्दो मे क के स्थान पर ह की ध्वनि इ हो गई और फलिहो, णिहसो तथा चिहुरो रूप बने । शीकर शब्द के क को भ हो कर सीभरो रूप वनता है । चन्द्रिका के क को म होकर चदिमा रूप बनता है । इसी प्रकार कही-कही सस्कृत के त को द भी होता है जैसे ऋतु का उदू, रजत का रअद, आगत का आअदो, सुकृति का सुइदी, [हत का हदो सम्प्रति का मयदि आदि ।

त की ध्वनि ड में परिवर्तित होती है जैसे प्रतिसर .पडिसो, वेतस .. वेडिसो, पताका पडाआ । यही त की ध्वनि वसति तथा भरत शब्दो मे ह मे परिवर्तित हो जाती है और क्रमश वहती और भरह रूप

बनते हैं। गर्भित की त ध्वनि ण में होकर गब्भिण रूप बनाती है। ऐरावत का इसी प्रकार एरावणो बनता है। द का ल भी होती है जैसे प्रदीप्त का पलित्त, कदम्ब का कलंबो, दोहद का दोहलो। द को र भी होता है जैसे गद्गद का गग्गरो, एकादश का एआरह, द्वादश से बारह, त्रयोदश से तेरह आदि। प् की ध्वनि व मे परिवर्तित होती है जैसे शाप सावो, शपथ सवहो, य को ज्ज भी होता है। रमणीयम् रमणिज्ज, उत्तरीयम्. उत्तरिज्ज भरणीयम् भरणिज्ज आदि। छाया के य को ह हो कर छाहा प्रयोग होता है। ट की ध्वनि ड मे परिवर्तित हो जाती है जैसे नट...णडो, विटप... विडवो। यही ट की ध्वनि सटा, शकट तथा कैटभ शब्दो मे ढ के रूप मे होती है और क्रमश. सढा, सअढो और केढवो रूप बनते हैं। ड को ल भी होता है जैसे दाडिल का दालिम, तडागं का तलाअ। ठ को ढ होता है जैसे मठ का मढ, जठरं का जढर, कठोर का कढोर। फ की ध्वनि भ मे परिवर्तित होती है जैसे-शिफा सिभा, शेफालिका सेभालिआ, शफरी सभरी आदि।

पदो के मध्य मे यदि ख, घ, थ, ध और भ ध्वनियो को प्राकृत भाषाओ मे प्राय ह हो जाता है क्योंकि ये महा प्राण ध्वनिया हैं तथा कहने तथा सुनने मे कर्कश प्रतीत होती हैं जैसे—मुखम् मुहम्, मेखला .मेहला, मेघ .मेहो, जघनं . जहण, गाथा गाहा, शपथ सवहो, राधा . राहा, वधिर ..वहिरो, सभा सहा, रासभ रासहो, आदि।

सस्कृत की र ध्वनियाँ ल मे परिवर्तित होती हैं जैसे हरिद्रा हलद्दा, चरण . चलणो, मुखर .. मुहलो, सुकुमार . सोमालो, अङ्गुरी. अङ्गुली, अंगोट इगालो, किरात ... चिलादो, परिखा फलिहा आदि।

प्राकृत भापाओ मे सस्कृत शब्दो के आदि मे स्थित या को ज हो जाता है जैसे यष्टि जट्ठी, यश . जसो, यक्ष जक्खो। यष्टि के य को ल होकर लट्ठी बनता है। दोला, दण्ड तथा दशन के द को ड हो जाता है और डोला, डंडो तथा डसणो रूप बनते हैं। प की ध्वनि फ मे हो जाती है जैसे परुष फरुसो, परिघ . फलिहो, परिखा फलिहा पनस फणसो। किन्ही पदो के आदि अक्षर को छ भी होता है। षष्ठी. छट्टी, षण्मुख . छम्मुहो, शावक .शावओ, सप्तपर्ण ... छत्तवण्णो।

प्राकृत भाषाओ मे न् की ध्वनि नही होती, उसके स्थान पर सर्वत्र ण् की ध्वनि होती है। नदी णई, कनक कणअ, वचनम् वअणं, आदि।

महाराष्ट्री एव अन्य प्राकृतो मे सस्कृत की श तथा ष की ध्वनि स मे परिवर्तित हो जाती है अर्थात् केवल स् ही रहती है। निशा .. णिसा, अश असो, षण्ढ सढो, वृषभ वसहो, कषायम् कसाअं आदि। कही-कही श की ध्वनि ह मे भी परिवर्तित हो जाती है जैसे दश दह, एकादश एआरह द्वादश वारह, त्रयोदश . तेरह, दशरथ दसरहो, दशमुख दहमुहो आदि।

सयुक्त वर्णों के उच्चारण मे कुछ कठिनता होती है और उनकी ध्वनि कर्कश तथा कठोर प्रतीत होती है। सस्कृत मे ऐसे अनेक सयुक्त शब्द हैं। प्राकृत भाषाओ मे सयुक्त शब्दो की एक ध्वनि का लोप कर दिया गया अथवा उनका विप्रकर्ष (स्वरभक्ति) हो गया अथवा उस सयुक्त वर्ण के स्थान पर कोई दूसरी ध्वनि कर दी गई और इस प्रकार उनके उच्चारण को सरल करने की प्रवृत्ति का उपयोग किया गया।

सयुक्त वर्णो, क, ग, ड, त, द, प, श, स, ष, का लोप हो गया जैसे भक्तम् भत्तं मुग्ध मुद्धो, स्निग्ध . सिणिद्धो, खड्ग: खग्गो उत्पलम् उप्पल, मुद्गा मुग्गा, उत्पात उप्पाओ, सुप्त . . सुत्तो गोष्ठी .. गोट्ठी, निष्ठुर णिट्ठुरो, स्खलितम् .. खलिअ, स्नेह . णेहो आदि।

इसी प्रकार नीचे के सयुक्त वर्णों म, न, य का भी लोप हो गया शुष्म सोस्स, रश्मि रस्सी, युग्म जुग्ग, वाग्मी वग्गी, सौम्य सोम्मो, योग्य जोग्गो आदि।

सयुक्त वर्णो के ल, व, र का भी लोप हो गया चाहे ऊपर हो अथवा नीचे स्थित हो—जैसे उल्का उक्का, वल्कलम् ... वक्कल, विक्लव . विक्कवो, लुब्धक लुद्धओ, पक्कम् पक्को, अर्क अक्को, शक्र सक्को आदि।

श्मश्रु तथा श्मशान के आदि वर्ण का लोप होने पर मस्सु तथा मसाण रूप वनते हैं। मध्याह्न के ह का लोप होने पर मज्झण्णो रूप वनता है। पूर्वाह्न, आह्लाद, तथा ब्रह्मन् मे जो न, ल, तथा म नीचे थे वे पद के ऊपर ध्वनित होने लगे और इनके रूप क्रम से, पुव्वण्हो, अल्हादो, तथा ब्रह्मणो वनते हैं।

ष्ट को ठ होने पर यष्टि का लट्ठी और दृष्टि का दिट्ठी रूप वनता है। अस्थि का अट्ठी,। सस्कृत के स्त के स्थान पर थ हो जाता है। हस्त हत्थो, समस्त समत्थो, स्तुति . तुई, स्तवक .. थवओ,

कौस्तुभ कोत्थुहो आदि। स्तम्भ का खभो रूप होता है कार्यम् का कज्ज, शय्या का सेज्जी, तूर्य का तूर, धैर्यम् का धीर, सुन्दरम् का सुदेर पर्यन्तम् का पेरन्त, आश्चर्य का अच्छेर रूप बनता है।

सयुक्त त्य, थ्य तथा द्य को क्रमश च, छ, तथा ज होते हैं जैसे—नित्यम् णिच्च रथ्या का रच्छा, मिथ्या का मिच्छा, विद्या का विज्जा, वैद्य का वेज्जो बनता है। सयुक्त ष्क, स्क तथा क्ष को ख होता है जैसे पुष्कर. . पोक्खरो, शुष्कम् सुक्ख, स्कन्द . खदो, स्कन्ध खधो, यक्ष जक्खो, क्षत खदो आदि।

क्ष की ध्वनि को छ हो जाता है अक्षि अच्छी, लक्ष्मी लच्छी, क्षीरम् छीर, क्षुब्ध . छुद्धो, क्षारम् . खार, मक्षिका . मच्छिआ आदि।

इसी प्रकार अन्य परिवर्तन भी हैं जो कि उन प्राकृतो के व्याकरण के ग्रन्थो मे भली प्रकार प्रतिपादित हैं। इन सबका तात्पर्य यही है कि प्राकृत भाषाओ मे सर्व साधारण की सुविधा तथा अनेक रूपता को दूर करने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। ये परिवर्तन देश या प्रान्त के भेद से भिन्न-भिन्न हैं।

एक ही शब्द महाराष्ट्री प्राकृत मे अन्य रूप से प्रयुक्त होता है तथा शौरसेनी एव मागधी मे उसका दूसरा रूप प्राप्त होता है। मोटे उदाहरण के लिए महाराष्ट्री प्राकृत में सस्कृत की ष तथा श की ध्वनि स मे परिवर्तित हो जाती है पर मागधी मे सस्कृत की ष तचा स् की ध्वनियाँ श मे परिवर्तित होती हैं। माष का माशे तथा विलास का विलाशे रूप बनता है। हृदय का मागधी मे हडक्क रूप होता है पर महाराष्ट्री मे हितअक होता है। इसी प्रकार की प्रत्येक प्राकृत मे अपनी विशेषतायें हैं।

प्राकृत भाषाओ का साहित्य हमे दो रूपो मे प्राप्त होता है, प्रथम तो स्वतन्त्र ग्रन्थो मे तथा दूसरा सस्कृत के ग्रन्थो मे (नाटको) विभिन्न पात्रो द्वारा प्रयुक्त। यह तो निश्चित है कि प्राकृतो का साहित्य बौद्ध तथा जैन धर्म के विद्वानो के द्वारा अधिक निर्मित तथा प्रसारित किया गया। जैन धर्मावलम्बियो ने तो मागधी एव अर्ध मागधी को 'आर्षी' भाषा के रूप मे स्वीकृत किया था और इसीलिये उनके ग्रन्थ इन्ही प्राकृतो मे अधिक सख्या मे उपलब्ध होते हैं। बौद्धो ने भी इन्ही प्राकृतो को ही अपनाया क्योकि बुद्ध वचनो का सग्रह पालि एव अन्य प्राकृतो मे किया गया था। इन धर्मों का अभ्युदय काल इसी ईसा के पूर्व दूसरी शती से लेकर ईसा की

९वी या ८वी शताब्दी तक है अत यही काल प्राकृत भाषाओ के अभ्युदय का माना जा सकता है और प्राकृत भाषाओ का उपलब्ध साहित्य भी इसी काल का है। जैन साहित्य, अर्ध मागधी, महाराष्ट्री तथा शोरसेनी प्राकृतो मे उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न उपायो मे जैनधर्म के सिद्धान्तो का सग्रह आगम, सूत्र (श्रुत या सिद्धान्त) ग्रन्थो मे किया गया। इस पुस्तक मे उस साहित्य की विवेचना तो नही हो सकती हाँ उनका नाम मात्रिक परिचय देना ही पर्याप्त होगा। उनके विषय तथा विवेचन के लिए उन ग्रन्थो का स्वाध्याय आवश्यक है। जैन साहित्य ६ विभागो मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) अग जिनकी सख्या १२ है। (२) उवग (उपाग) इनकी सख्या भी १२ है। (३) छेया सुत्त (छेद सूत्र) इनकी सख्या ६ है। (४) मूल सुत्त (मूलसूत्र) इनकी सख्या ४ है। (५) परण्ण (प्रकीर्ण) इनकी सख्या १० है। (६) चूलिया सुत्त (चूलिका सूत्र) इनकी सख्या दो है।

१२ अग ये हैं—(१) आयरग सुत्त (आचाराङ्ग सूत्र) (२) सूयगडग (सूत्रक्टाग) (३) ठाणाग (स्थानाङ्ग) (४) समवायाङ्ग) (५) वियाह पण्णत्ती (व्याख्या-प्रज्ञप्ति, (६) णाया धम्म कहाओ (न्याय धर्म कथा) (७) उवासगदसाओ (उपासक दशा) (८) अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्दशा) (९) अणुत्त-रोववाइअदसाओ (अनुत्तरौप पातिकदशा) (१०) पण्हा वाग रणाइम् (प्रश्नव्याकरणानि) (११) विवागसुयम् (विपाक श्रुतम्) (१२) दिट्ठिवारा (दृष्टिवाद)।

१२ उपाङ्ग —(१) ओव वाइयम् (औपपातिकम्) (२) (रायपसेणियम् (राज प्रश्नीयम् (३) जीवा जीवाभिगम (४) पण्णवणा (प्रज्ञापना) (५) जम्वुद्दीव पण्णती (जम्वुद्वीप प्रज्ञप्ति) (६) चन्द पण्णती (चन्द्र प्रज्ञप्ति) (७) सूरियपण्णती (सूर्यप्रज्ञप्ति) (८) कप्पियाओ (कल्पिका) (९) कप्पाव डामआओ (कल्पावतसका) (१०) पुप्फियाओ (पुष्पिका) (११) पुप्फ चूलाओ (पुष्प चूला) (०२) वह्निदशाओ (वृष्णिदशा)। ये ग्रन्थ अगो की अपेक्षा मान्यता मे कुछ हीन हैं।

६ छेद सूत्र.—(१) निसीह (निशीय) (२) महानिसीह (महानिशीथ) (३) ववहार (व्यवहार) (४) आयारदसाओ (आचार दशा) (५) कप्प सुत्त (कल्प सूत्र) पंचकप्प (पचकल्प)

४ मूल सूत्र—(१) उत्तरज्झयण (उत्तराध्ययन) (२) आवस्सय (आवश्यक) (३) दसवेसालिया (दशवैकालिक) (४) पिण्डनिज्जुत्ती (पिण्डनिर्युक्ति)

१० प्रकीर्णक—(१) चतु शरण (२) भक्तपरिज्ञा (३) सस्तारक (४) आतुर प्रत्याख्यान (५) महाप्रत्याख्यान (६) तदुलवैतालिक (७) चन्द्रवेध्यक (८) देवेन्द्रस्तव (९) गणितविद्या (१०) वीरस्तव ।

इन ग्रन्थो के अध्ययन से उस समय मे प्रचलित प्राकृत भाषाओ के स्वरूप के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी हो सकती है । यद्यपि ये जैन कृतियाँ हैं परन्तु इनमे अन्य विषयो का भी विवेचन किया गया है और पौराणिक तथा लौकिक कथाओ का भी समावेश है ।

कथा, कहानी तथा उपन्यास साहित्य भी प्राकृत भापाओ मे प्राप्त होता है । यह साहित्य प्राय जैनो तथा बौद्धो का ही लिखा हुआ है । इन कहानियो मे सस्कृत के समान धार्मिकता या उपदेशात्मक कथायें भी हैं । प्रेम सम्बन्धी उपन्यास भी हैं जिनमे शृगार, शान्त, तथा करुण रस ही प्रधान हैं । चरित्र सम्बन्धी आख्यान भी प्राप्त होते हैं । इनमे 'कुवलयमाला कथा' 'उवएसमाला' (उपदेश माला) 'कुमारपाल प्रतिबोध' 'कथाकोषप्रकरण' 'धर्मोपदेशमाला' 'समराइच्च कहा (समरादित्य कथा) 'गाथा कोष' 'गाया सहस्त्री' 'भववैराग्यशतक' ।

'धूर्तरिन्यान' (धूर्ताख्यान) 'कथा महोदधि' 'विजय चन्द्र केवलिन्' 'ज्ञान पचमी कथा' आदि कथा साहित्य हैं । उपन्यासो मे भी 'सिरिसिरिवाल कहा' 'भूवन सुन्दरी' 'तरगवती' 'कालकाचार्य कथानक' 'सुर सुन्दरी चरिअ' 'मलय सुन्दरी कथा' 'रयण सेहर कहा' (रत्नशेखर कथा) आदि प्रेमाख्यान सम्बन्धी उपन्यास हैं । चरित्रो मे 'पउमचरिय' (पद्मचरित) अत्यन्त प्रसिद्ध है । 'सुपास्सनाहचरिय' (श्री पार्श्वनाथ चरित) 'चउपन्तमहापुरिस चरिय' 'शलारा पुरुष चरित' 'वसुदेव हिण्डी' 'कुम्मापुत्त चरिअ' 'कुमार पाल चरित' 'महावीर चरित' 'सुमतिनाथ चरित' आदि ग्रन्थ प्राकृत भाषाओ मे प्राप्त होते हैं । तार्थङ्करो तथा जैन धर्म के साधुओ पर श्रद्धाभक्ति प्रकट करने वाले स्तोत्र भी सस्कृत के समान ही प्राकृत भापाओ मे भी लिखे गये जिनमे 'ऋषभ तचाशिका' 'अजिय सन्तिथय' 'शान्ति नाथ स्तवन' 'पार्श्वजिन स्तवन' ऋषि मण्डल स्तोत्र' 'महावीर स्तव' 'उवसग्गहर' आदि चरित्र सुन्दर प्राकृत भापा के पद्यो मे निर्मित उपलब्ध होते हैं । सिद्धान्त ग्रन्थो मे

'कर्म प्रकृति' 'पच सग्रह' 'कापाय प्राभृत' 'मूलाराधना' श्रावकाचार' 'दर्शनसार' 'जीवविचार' आदि अनेक ग्रन्थ गद्य तथा पद्य रूप मे उपलब्ध हैं।

प्रबन्ध काव्यो मे 'सेतुबन्ध' 'गौडवहो' 'लीलावई' महुमहविअअ' 'मोरि चरित' 'सिरिचिंध कव्व' 'उसाणिरुद्ध' 'कसवहो' 'रावण विजय' आदि प्रसिद्ध तथा सुन्दर साहित्य प्राकृत भाषाओ मे उपलब्ध हैं। मुक्तक काव्य भी गाथा सप्तशती, 'वज्जा लग्ग' 'मदन मुकुट' 'विषमबाण लीला' आदि भी प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त सस्कृत के प्राय सभी प्रधान तथा उत्कृष्ट ग्रन्थो मे प्राकृतो के पद्य उपलब्ध होते है। नाट्य शास्त्र, दश रूपक, काव्यानुशासन, ध्वन्यालोक, सरस्वती कण्ठाभरण, लोचन, काव्यालकार, काव्यादर्श, रस गगाधर, काव्य प्रकाश, अलकार, विमर्शिणी' आदि ग्रन्थो मे पर्याप्त रूप मे प्राकृतो के पद्य हैं।

सस्कृत का नाट्य साहित्य पूर्ण रूप से इन प्राकृतो से सयुक्त है क्योकि उनमे स्त्रियो तथा अन्य हीन पात्रो द्वारा इन्ही प्राकृतो का प्रयोग कराया जाता था। कालिदास, शूद्रक, भवभूति, भास, श्रीहर्ष आदि कवियो ने अपनी कृतियो मे इनका सुन्दर उपयोग किया है।

इस प्रकार प्राकृत भाषाओ का साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे है पर दुर्भाग्य मे प्राकृतो का अध्ययन न होने से इस साहित्य का प्रचार भी नही है। आशा है कि यह अक्षय निधि विद्वानो की उपेक्षा से समाप्त प्राय न हो पायेगी।

वररुचि प्रणीत प्राकृत प्रकाश के सूत्र तथा उनके अर्थ

प्रथम परिच्छेद

आदेरत । 1-1

अर्थ—इस परिच्छेद मे जो भी कार्य होगा वह आदि के अकार को होगा यह अधिकार सूत्र है।

आसमृद्धयादिषु वा । 1-2

अर्थ—समृद्धि आदि शब्दो मे आदि के अकार को विकल्प से दीर्घ आ होता है।

इदीषत् पक्वस्वप्न वेतस व्यजनमृदङ्गाऽङ्गारेषु । 1-3

अर्थ—ईषत् आदि शब्दो मे आदि के अकार को इ होता है।

लोपोऽण्ये । 1-4

अरण्य (जगल) शब्द के आदि के अ का लोप हो जाता है।

ए शय्यादिषु । 1-5

अर्थ—शय्या आदि शब्दो मे आदि के अकार को एकार होता है।

ओ वदरे देन । 1-6

अर्थ—वदर शब्द मे दकार के साथ आदि के अकार को ओ हो जाता है।

लवण नवमल्लिकयोर्वेन । 1-7

अर्थ—लवण आदि शब्दो मे आदि के अकार को वकार के साथ ओ हो जाता है।

मयूर मयूखयोर्य्वा वा । 1-8

अर्थ—मयूर तथा मयूख शब्दो मे यु के साथ आदि के अकार को विकल्प से ओ होता है।

चतुर्थी चतुर्दश्योस्तुना । 1-9

अर्थ—चतुर्थी तथा चतुर्दशी शब्दो के तु के साथ आदि के अकार को ओ हो जाता है।

अदातो यथादिषुवा । 1-10

अर्थ—यथा आदि शब्दो मे आ के स्थान पर विकल्प से अकार हो जाता है।

इत्सदादिपु । 1-11

अर्थ—सदा आदि शब्दो मे आ को विकल्प मे अ होता है।

इत एत् पिण्ड समेपु । 1-12

अर्थ—पिण्ड आदि शब्दो मे इकार को एकार विकल्प मे होता है।

अत् पथि हरिद्रापृथिवीषु । 1-13

अर्थ—पथि आदि शब्दों मे इकार को अकार होता है।

इतेस्त पदादे । 1-14

इति शब्द के त् के बाद जो इ है उनको अकार होता है।

उदिक्षुवृश्चिकयो । 1-15

अर्थ—इक्षु तथा वृश्चिक शब्दो के इकार को उकार हो जाता है।

ओचद्विधाकृञ्ञ । 1-16

अर्थ—कृञ् धातु के प्रयोग मे द्विधा शब्द को ओकार होता है और उकार भी होता है।

ईत् सिंह जिह्वयोश्च । 1-17

अर्थ—सिंह तथा जिह्वा शब्द के इकार को ईकार होता है।

इदीत पानीयादिपु । 1-18

अर्थ—पानीय आदि शब्दो मे आदि के ईकार को इकार होता है।

एन्नीडापीड कीदृगीदृशेपु । 1-19

अर्थ—नीड आदि शब्दो मे आदि के ईकार को एकार होता है।

उत ओत् तुण्ड रूपेपु । 1-20

अर्थ—तुण्ड आदि शब्दो में आदि के उकार को ओकार होता है।

उलूखलेल्वा वा । 1-21

अर्थ—उलूखल शब्द मे लकार के साथ ऊकार को ओकार विकल्प से होता है।

अन् मुकुटादिपु । 1-22

अर्थ—मुकुट आदि शब्दो मे आदि के उकार के स्थान पर अकार होता है।

इत्पुरुपेरो । 1-23

अर्थ—पुरुप शब्द के रु मे जो उ है उसको इकार होता है।

उद्तो मधूके । 1-24

अर्थ—मधूक शब्द के ऊकार को उकार होता है।

अद् दुकूले वा लस्य द्वित्वम् । 1-25

अर्थ—दुकूल शब्द के ऊ को अकार विकल्प से होता है और लकार को द्वित्व हो जाता है।

एन्नूपुरे । 1-२६

अर्थ—नूपुर शब्द के ऊकार को एकार हो जाता है ।

ऋतोऽत् । १-२७

अर्थ—आदि के ऋकार को अकार होता है ।

इदृष्यादिषु । १-२८

अर्थ—ऋषि आदि शब्दो के आदि के ऋकार को इकार हो जाता है ।

उदृत्वादिषु । १-२९

अर्थ—ऋतु आदि शब्दो के आदि के ऋकार को उकार हो जाता है ।

ऋ रीति । १-३०

अर्थ—दूसरे वर्ण से असयुक्त आदि के ऋकार को रिकार हो जाता है ।

क्वचिद्युक्तस्यापि । १-३१

अर्थ—वर्णान्तिर से युक्त होने पर भी ऋकार को कहीं-कही रिकार होता है ।

वृक्षे वेन रुर्वा । १-३२

अर्थ—वृक्ष शब्द मे व् अक्षर के साथ ऋकार को रुकार हो जाता है (विकल्प से) ।

लृत क्लृप्तइलि । १-३३

अर्थ—क्लृप्त शब्द मे लृकार को इलि यह आदेश होता है ।

ऐत इद् वेदना देवरयो । १-३४

अर्थ—वेदना तथा देवर शब्दो के एकार को इकार होता है ।

ऐतऐत् । १-३५

अर्थ—आदि के ऐकार को एकार होता है ।

दैत्यादिष्वइ । १-३६

अर्थ—दैत्यादि शब्दो मे ऐकार को अइ यह आदेश होता है ।

दैवे वा । १-३७

अर्थ—दैव शब्द के ऐकार को विकल्प से अइ आदेश होता है ।

इत्सैन्धवे । १-३८

अर्थ—सैन्धव शब्द के ऐकार को इकार होता है ।

ईद् धैर्ये । १-३९

अर्थ—धैर्य शब्द के ऐकार को ईकार होता है ।

ओतो द्वा प्रकोष्ठे कस्य व । १-४०

अर्थ—प्रकोष्ठ शब्द के ओकार को विकल्प से अकार होता है और उसके सयोग से ककार को वकार हो जाता है ।

औत ओत् । १-४१

अर्थ—आदि के औकार को ओकार होता है ।

पौरादिष्वउ । १-४२

अर्थ—पौर आदि शब्दो के औकार को अउ यह आदेश होता है ।

आ च गौरवे । १-४३

अर्थ—गौरव शब्द के औकार को आकार हो जाता है ।

उत्सौन्दर्यादिपु । १-४४

अर्थ—सौन्दर्य आदि शब्दो मे औकार को उकार होता है ।

द्वितीय परिच्छेद

अयुक्तस्यानादौ । २-१

अर्थ—यह भी अधिकार सूत्र है । इसके आगे जो कार्य होगा वह अयुक्त व्यञ्जन को तथा जो आदि मे नही है उसमे होगा ।

कगचजतद पयवा प्रायोलोप । २-२

अर्थ—क आदि वर्णो का जो अयुक्त हो और आदि मे न हो तो प्राय उनका लोप हो जाता है ।

यमुनाया मस्य । २-३

अर्थ—यमुना शब्द मे मकार का लोप हो जाता है ।

स्फटिक निकप चिकुरेषु कस्य ह । २-४

अर्थ—अनादि मे होने वाले इन शब्दो के ककार को हकार हो जाता है ।

शीकरेभ । २-५

अर्थ—शीकर शब्द के ककार को भ हो जाता है।

चन्द्रिकाया म । २-६

अर्थ—चन्द्रिका शब्द के क को म होता है ।

ऋत्वादिपु तो द । २-७

अर्थ—ऋतु आदि शब्दो मे त को द हो जाता है ।

प्रतिसर वेतस पताकासु ड. । २-८

अर्थ—इन शब्दो के तकार को डकार हो जाता है ।

वमतिभरतयो हं । २-९

अर्थ—वमति तथा भरत शब्दो के त को ह होता है ।

गर्भितेण । २-१०

अर्थ—गर्भित शब्द के त को ण होता है ।

ऐरावतेच । २-११

अर्थ—ऐरावत शब्द के त को ण होता है ।

प्रदीप्त कदम्ब दोहदेषु ल. । २-१२

अर्थ—इन शब्दो के द को ल होता है।

गद्गदे र' । २-१३

अर्थ—गद्गद शब्द के अन्तिम द को र आदेश होता है।

सख्यायाञ्च । २-१४

अर्थ—सख्यावाचक शब्दो में जो द है उसे रकार होता है।

पोव । २-१५

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित प को व होता है।

आपीडेम । २-१६

अर्थ—आपीड शब्द मे जो प है उसे म होता है।

उत्तरीयानीययोर्ज्जो वा । २-१७

अर्थ—उत्तरीय शब्द मे तथा अनीय प्रत्ययान्त शब्दो मे जो य है उसे विकल्प से ज्ज होता है।

छायायां ह । २-१८

अर्थ—छाया शब्द के य को ह होता है।

कवन्धे वो म. । २-१९

अर्थ—कवन्ध शब्द के व को मकार होता है।

टोड । २-२०

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित ट को ड होता है।

सटा शकट कैटभेषु ढ । २-२१

अर्थ—इन शब्दो के टकार को ढकार होता है।

स्फटिकेल । २-२२

अर्थ—स्फटिक शब्द के टकार को लकार होता है।

डस्य च । २-२३

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित डकार को लकार होता है।

ठोढ । २-२४

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित ठ को ढ होता है।

अङ्कोलेल्ल । २-२५

अर्थ—अडकोल शब्द के लकार को ल्ल होता है।

फोभ । २-२६

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित फ को भ होता है।

खघथधभा ह । २-२७

अर्थ—अयुक्त तथा अनादि मे स्थित ख, घ, थ, ध, और भ के स्थान पर ह होता है।

प्रथम शिथिल निषधेषु ढ । २-२८

अर्थ—इन शब्दो के थ तथा ध को ढ होता है ।

कैटभे वः । २-२९

अर्थ—कैटभ शब्द के भ को व होता है ।

हरिद्रादीना रो ल । २-३०

अर्थ—हरिद्रा आदि शब्दो के रकार को लकार होता है ।

आदेर्योज । २-३१

अर्थ—आदि के यकार को जकार होता है ।

यष्ट्यांल । २-३२

अर्थ—यष्टि शब्द के यकार को लकार होता है ।

किराते च । २-३३

अर्थ—किरात शब्द के क को च होता है ।

कुब्जे ख । २-३४

अर्थ—कुब्ज शब्द के क को ख होता है ।

दोला दण्ड दशनेषु ड । २-३५

अर्थ—इन शब्दो के आदि वर्ण को ड होता है ।

परुष परिघ परिखासु फ । २-३६

अर्थ—इन शब्दो के आदि वर्ण को फ होता है ।

पनसेऽपि । २-३७

अर्थ—पनस शब्द के आदि वर्ण को भी फ होता है ।

विसिन्या भ । २-३८

अर्थ—विसिनी शब्द के आदि वर्ण को भ होता है ।

मन्मथे व । २-३९

अर्थ—मन्मथ शब्द के आदि वर्ण को व होता है ।

लाहुलेण । २-४०

अर्थ—लाहल शब्द के आदि वर्ण को ण होता है ।

षट्शावक सप्त पर्णाना छ । २-४१

अर्थ—इन शब्दो के आदि वर्ण को छ होता है ।

नो ण सर्वत्र । २-४२

अर्थ—सब स्थानो पर नकार को णकार होता है ।

शषो स । २-४३

अर्थ—शकार तथा षकार के स्थान पर सकार होता है ।

दशादिषु ह ।　　　　२-४४

अर्थ—दश आदि शब्दो मे शकार को ह होता है ।

सञ्ज्ञाया वा ।　　　　२-४५

अर्थ—यदि दश शब्द का प्रयोग किसी शब्द के साथ हो और वह सम्पूर्ण शब्द किसी सज्ञा का द्योतन करे तो वहा दश के श को विकल्प से ह होता है ।

दिवसे सस्य ।　　　　२-४६

अर्थ—दिवस शब्द के सकार को ह होता है ।

स्नुषायां ण्ह ।　　　　२-४७

अर्थ—स्नुषा शब्द के षकार को ण्ह होता है ।

तृतीय परिच्छेद

उपरिलोप क ग ड त द प ष साम् ।　　　　३-१

अर्थ—युक्त वर्णो के ऊपर स्थित क, ग, ड, त, द, प, ष तथा स वर्णो का लोप हो जाता है ।

अधोमनयाम् ।　　　　३-२

अर्थ युक्त वर्णो के नीचे स्थित म, न, य का लोप होता है ।

सर्वत्रलवराम् ।　　　　३-३

अर्थ—सयुक्त वर्णो के ऊपर स्थित ल, व तथा र का लोप हो जाता है ।

द्रेरोवा ।　　　　३-४

द्र शब्द के रकार का विकल्प से लोप होता है ।

सर्वज्ञ तुल्येषु ञ ।　　　　३-५

अर्थ—सर्वज्ञ तथा तुल्य शब्दो मे ञकार का लोप हो जाता है ।

श्मश्रुश्मशानयोरादे ।　　　　३-६

अर्थ—श्मश्रु तथा श्मशान शब्दो के आदि का लोप हो जाता है ।

मध्याह्ने हस्य ।　　　　३-७

अर्थ— मध्याह्न शब्द के ह का लोप होता है ।

ह्न ह्ल ह्मेषु नलमा स्थितिरूर्ध्वम् ।　　　　३-८

अर्थ—ह्न, ह्ल तथा ह्म मे जो न ल तथा म है उनकी स्थिति ऊपर हो जाती है ।

युक्तस्य ।　　　　३-९

अर्थ— यह भी अधिकार सूत्र है । इसके आगे इस परिच्छेद मे वर्णित जो भी कार्य होगा वह युक्त वर्णो को ही होगा ।

ष्टस्य ठ ।　　　　३-१०

अर्थ—ष्ट के टकार को ठकार होता है ।

अस्थनि ।　　　　३-११

अर्थ—अस्थि शब्द मे सयुक्त वर्ण को ठकार होता है ।

स्तस्य थ ।　　　　३-१२

अर्थ—स्त को थ आदेश होता है ।

स्तम्बे ।　　　　३-१३

अर्थ—स्तम्ब शब्द के स्त को थ नही होता ।

स्तम्भे ख । ३-१४

अर्थ—स्तम्भ शब्द के स्त को ख होता है।

स्थाणावहरे । ३-१५

अर्थ—स्थाणु शब्द के सयुक्त वर्ण को ख होता है पर यदि स्थाणु शब्द हर (शकर) का वाची नही है।

स्फोटके । ३-१६

अर्थ—स्फोटक शब्द के सयुक्त वर्ण को खकार होता है।

र्य शय्याभिमन्युषु ज । ३-१७

अर्थ—र्य तथा शय्या और अभिमन्यु शब्दो के सयुक्त वर्णो को जकार होता है।

तूर्य धैर्य सौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु र । ३-१८

अर्थ—इन शब्दो के र्य को रकार होता है।

सूर्येवा । ३-१९

अर्थ—सूर्य शब्द के र्य को रकार विकल्प से होता है।

चौर्य समेषु रिअ । ३-२०

अर्थ—चौर्य आदि के समान शब्दो मे र्य को 'रिअ' यह आदेश होता है।

पर्यस्त पर्याण सौकुमार्येषु ल । ३-२१

अर्थ—इन शब्दो के र्य को लकार होता है।

र्तस्य ट । ३-२२

अर्थ—र्त इसको टकार होता है।

पत्तने । ३-२३

अर्थ—पत्तन शब्द के सयुक्त वर्ण को टकार होता है।

न धूर्तादिषु । ३-२४

अर्थ—धूर्त आदि शब्दो मे तकार को टकार नही होता।

गर्तेड । ३-२५

अर्थ—गर्त शब्द के र्त को डकार होता है।

गर्दभ, समर्द, वितर्दि, विच्छर्दिषु र्दस्य । ३-२६

अर्थ—इन शब्दो के र्द को ड होता है।

त्यथ्यद्या चछजा । ३-२७

अर्थ—त्य, थ्य, तथा द्य इनको क्रम से च छ तथा ज होता है।

ध्यह्योर्झ । ३-२८

अर्थ-ध्य तथा ह्य को झकार होता है।

ष्क स्कक्षा ख. । ३-२९

अर्थ-ष्क, स्क तथा क्ष को ख हो जाता है।

अक्ष्यादिषुच्छ । ३-३०

अर्थ—अक्षि आदि शब्दो मे क्ष को छ होता है।

क्षमा वृक्ष क्षणेषु वा । ३-३१

अर्थ-इन शब्दो के क्षकार को विकल्प से छकार होता है।

ष्म पक्ष्म विस्मयेषु म्ह । ३-३२

अर्थ—ष्म, पक्ष्म और विस्मय शब्दो के सयुक्त वर्णों को म्ह आदेश होता है।

ह्लस्नष्ण क्ष्ण श्ना ण्ह् । ३-३३

अर्थ—ह्ल स्न ष्ण क्ष्ण तथा श्न को ण्ह होता है।

चिन्हेन्ध । ३-३४

चिन्ह के सयुक्त वर्ण को न्ध होता है।

ष्पस्य फ । ३-३५

अर्थ—ष्प इसको फ आदेश होता है।

स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य । ३-३६

अर्थ—स्प यह सयुक्त वर्ण यदि शब्द मे कही पर भी हो तो उसे फ हो जाता है।

सि च । ३-३७

अर्थ—स्प को कही-कही सि आदेश भी होता है।

वाष्पे अश्रुणि ह । ३-३८

अर्थ—पाष्प शब्द यदि आसू वाचक हो तो उसे ह आदेश होता है।

कार्षापणे । ३-३९

अर्थ—कार्षापण शब्द मे सयुक्त वर्ण को हकार होता है।

श्चत्सप्सा छ । ३-४०

अर्थ—श्च त्स तथा प्स को छकार होता है।

वृश्चिकेञ्छ । ३-४१

अर्थ—वृश्चिक शब्द के श्च को ञ्छ आदेश होता है।

नोत्सुकोत्सवयो । ३-४२

अर्थ—उत्सुक तथा उत्सव इनमे सयुक्त वर्णो को छ नही होता।

न्मोम । ३-४३

अर्थ—न्म इसको मकार होता है।

म्न ज्ञ पञ्चाशत् पञ्चदशेषु ण । ३-४४

अर्थ—म्न, ज्ञ तथा पञ्चाशत् और पञ्चदश शब्दो मे सयुक्त वर्णो को णकार होता है।

तालवृन्तेण्ट । ३-४५

अर्थ—तालवृन्त शब्द मे सयुक्त वर्ण को ण्ट होता है।

भिन्दिपालेण्ड । ३-४६

अर्थ—भिन्दिपाल इस शब्द मे सयुक्त वर्णो को ण्ड आदेश होता है।

विह्वलेभहौवा । ३-४७

अर्थ—विह्वल शब्द मे सयुक्त वर्णो को भकार तथा हकार विकल्प से होते है।

आत्मनिप । ३-४८

अर्थ—आत्मन् शब्द मे सयुक्त वर्ण को पकार होता है।

क्मस्य । ३-४९

अर्थ—क्म इसको पकार होता है।

शेषादेशयोर्द्वित्व मनादौ । ३-५०

अर्थ—युक्त वर्णो मे आदेश रूप मे जो शेष रह जाते हैं उनको यदि वे आदि मे न हो तो द्वित्व हो जाता है।

वर्गेषु युजः पूर्वं । ३-५१

अर्थ—युक्त वर्णों मे आदेश रूप मे जो शेष रह जाते हैं उनको यदि रे आदि मे नही तो द्वित्व होने पर यदि वे दूसरे या चौथे वर्ण हैं (वर्ग के) तो दूसरे को पहला और चौथे को तीसरा वर्ण उसी वर्ग का होता है।

नीडादिषु । ३-५२

अर्थ—अनादि मे वर्तमान नीड आदि शब्दो को द्वित्व होता है।

आम्र ताम्रयोर्व । ३-५३

अर्थ—आम्र तथा ताम्र शब्दो मे विकल्प से व का द्वित्व होता है।

नरहो । ३-५४

अर्थ—रकार तथा हकार को द्वित्व नही होता।

आङोज्ञस्य । ३-५५

अर्थ—आङ् पूर्वक ज्ञ इस वर्ण को द्वित्व नही होता।

न विन्दु परे। ३-५६

अर्थ—अनुस्वार परे होने पर द्वित्व नही होता।

सामसे वा। ३-५७

अर्थ—समास मे आदेश के शेष भूत वर्णों को विकल्प से द्वित्व होता है।

सेवादिषु च। ३-५८

अर्थ—सेवा आदि शब्दो मे अनादि मे स्थित वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है।

विप्रकर्षः। ३-५९

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है। इस अध्याय की समाप्ति तक जो कार्य होगा वह विप्रकर्ष दूर या स्वरभक्ति के रूप मे होगा। अर्थात् सयुक्त वर्ण अलग-अलग या दूर हो जावेंगे।

क्लिष्टश्लिष्टरत्न क्रियाशार्ङ्गेषु तत्स्वर वत् पूर्वस्य। ३-६०

अर्थ—क्लिष्ट आदि शब्दो मे सयुक्त वर्णों का विप्रकर्ष होने पर जो निरर्थक पूर्व वर्ण होता है उसकी तत्स्वरता होती है अर्थात् पूर्व स्वर के साथ ही वह वर्ण भी उसी रूप का हो जाता है।

कृष्णे वा। ३-६१

अर्थ—कृष्ण शब्द मे सयुक्त को विप्रकर्ष तथा तत्स्वरता विकल्प से होती है।

इ श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लान स्वप्न स्पर्श हर्षार्हं गर्हेषु। ३-६२

अर्थ—इन शब्दो के युक्त को विप्रकर्ष होता है और पूर्व को इकार होने पर तत्स्वरता भी होती है।

अ. क्ष्मा श्लाघयो.। ३-६३

अर्थ—क्ष्मा तथा श्लाघा शब्दो मे युक्त को विप्रकर्ष होता है तथा पूर्व को अकार तथा तत्स्वरता भी होती है।

स्नेहे वा। ३-६४

अर्थ—स्नेह शब्द मे युक्त को विप्रकर्ष तथा पूर्व को अकार और तत्स्वरता विकल्प से होती है।

उ पद्म तनवी समेषु। ३-६५

अर्थ—पद्म तथा तन्वी के समान शब्दो में युक्त को विप्रकर्ष होता है

और पूर्व को उ तथा तत्स्वरता भी होती है।

ज्यायामीत्। ३-६६

अर्थ—ज्या शब्द मे युक्त को विप्रकर्ष होता है और पूर्व को ईकार तथा तत्स्वरता भी होती है।

चौथा परिच्छेद

सन्धावचामज् लोप विशेषा वहुलम्। ४-१

अर्थ—सन्धि में वर्तमान अचो (स्वरो) को अच् के विशेष कार्य के (ह्रस्व आदि) तथा लोप विकल्प से होते हैं।

उदुम्वरे दोर्लोप। ४-२

अर्थ—उदुम्बर शब्द मे दु का लोप होता है।

कालायसे यस्य वा। ४-३

अर्थ—कालायस शब्द में यकार का लोप विकल्प से होता है।

भाजने जस्य। ४-४

अर्थ—भाजन शब्द मे ज का लोप विकल्प से होता है।

यावदादिषु वस्य। ४-५

अर्थ—यावद् आदि शब्दो मे व का लोप विकल्प से होता है।

अन्त्य हल॰। ४-६

अर्थ—शब्दो के अन्त मे जो हल् है उसका लोप होता है।

स्त्रियामात्। ४-७

अर्थ—स्त्रीलिंग के शब्दो को यदि उनके अन्त मे हल् है तो उसे आकार होता है।

रो रा। ४-८

अर्थ—स्त्रीलिंग मे अन्त्य के र् को रा होता है।

न विद्युति। ४-९

अर्थ—विद्युत् शब्द मे आकार नही होता।

शरदो द। ४-१०

अर्थ—शरत् शब्द के अन्त्य को द होता है।

दिक् प्रावृषो स। ४-११

अर्थ—दिक् तथा प्रावृट् शब्द के अन्त्य को सकार होता है।

मो विन्दु। ४-१२

अर्थ—अन्त्य के हलन्त मकार को विन्दु होता है।

अचिमश्च। ४-१३

अर्थ—अच् परे होने पर म् को विकल्प से विन्दु तथा मकार होता है।

नञोर्हलि। ४-१४

अर्थ—नकार तथा ञकार को हल् परे रहने पर विकल्प से विन्दु तथा मकार होता है।

वक्रादिषु। ४-१५

अर्थ—वक्र आदि शब्दो मे बिन्दु होता है।

मासादिषु वा। ४-१६

अर्थ—मास आदि शब्दो मे विकल्प से विन्दु होता है।

यथि तद् वर्गान्त । ४-१७

अर्थ—यय् प्रत्याहार पर होने पर विन्दु होता है या उस अक्षर के वर्ग का अन्तिम अक्षर होता है।

नसान्त प्रवृष्ट् मरद पु सि — ४-१८

अर्थ—नकारान्त, सकारान्त शब्द तथा प्रावृ ट् और शरत् शब्द पुल्लिग मे प्रयुक्त होते हैं।

नशिरोनभसी। ४-१९

अर्थ—शिरस् तथा नभस् शब्दो का पुल्लिग मे प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पृष्ठाक्षिप्रश्न स्त्रिया वा। ४-२०

अर्थ—इन शब्दो का प्रयोग स्त्रीलिंग मे विकल्प से होता है।

ओदवापयो । ४-२१

अर्थ—अ व तथा अप इ न उप सर्गो को विकल्प से ओ होता है।

तल्त्वयोर्दात्तणौ। ४-२२

अर्थ—तल् तथा त्व प्रत्यायो को क्रम मे दा तथा त्तण ये आदेश होते हैं।

क्त्वा ऊण । ४-२३

अर्थ—क्त्वा प्रत्यय को ऊण आदेश होता है।

तृण इर शीले। ४-२४

अर्थ—शील या स्वभाव अर्थ मे जो तृन् प्रत्यय होता है उनको इर आदेश होता है।

आल्विल्लोल्लालवन्तेन्ता मतुप । ४-२५

अर्थ—मतुप् प्रत्यय के स्थान पर आलु, इल्ल, आल, वन्त, इन्त ये आदेश होते है।

विद्युत् पीताभ्या वाल । ४-२६

अर्थ—विद्युत् तथा पीत शब्दो को स्वार्थ मे ल प्रत्यय विकल्प से होता है।

वृन्दे वो र.। ४-२७

अर्थ—वृन्द शब्द मे वकार से परे स्वार्थ मे विकल्प से र का प्रयोग होता है।

करेण्वा रणो स्थिति परिवृत्ति.। ४-२८

अर्थ—करेणु शब्द मे र तथा ण का स्थान परिवर्तन हो जाता है।

आलाने लनो । ४-२९

अर्थ—आलान शब्द मे ल तथा न का (केवल हल मात्र का) स्थान परिवर्तन होता है।

वृहस्पतौ वहोर्भऔ। ४-३०

अर्थ—वृहस्पति शब्द मे व तथा ह को क्रमश. भ तथा अ होते है।

मलिन लिनो रिलोवा। ४-३१

अर्थ—मलिन शब्द मे लि तथा न को क्रम से इ तथा ल विकल्प से होते हैं।

गृह घरोऽपतौ। ४-३२

अर्थ—गृह शब्द को घर आदेश होता है पर पति शब्द के योग मे

नही होता।

दाढादयो बहुलम्। ४-३३

अर्थ—दष्ट्रा आदि शव्दो के स्थान पर दाढ् आदि शब्द विकल्प से निपतित होते हैं।

पांचवां परिच्छेद

अत ओत् सो। ५-१

अर्थ–अकारान्त शब्द से परे सु के स्थान पर ओ होता है।

जश् शसोर्लोप। ५-२

अर्थ—अकारान्त के अनन्तर जस् तथा शस् का लोप होता है।

अतो म। ५-३

अर्थ—अकारान्त शब्द के वाद द्वितीया के एक वचन मे जो अम् है उसके अकार का लोप होता है।

टामोर्ण। ४-५

अर्थ—अकारान्त शब्द के अनन्तर टा, आम् इनको णकार होता है।

भिसोर्हिं। ५-५

अर्थ–अकारान्त शब्द के अनन्तर भिस् को हिं आदेश होता है।

ङसेरादोदुहय। ५-६

अर्थ—अकारान्त के वाद पञ्चमी के एक वचन् ङस् को आ, दो, दु तथा हि ये आदेश होते हैं।

साहितो सुतो। ५-७

अर्थ–अकारान्त शब्द के अनन्तर भ्यस् को हितो तथा सुतो आदेश होते हैं।

स्सोङ्स। ५-८

अर्थ—अकारान्त के अनन्तर ङस को स्स आदेश होता है।

ङेरेम्मी। ५-९

अर्थ—अकारान्त के अनन्तर ङे को ए तथा म्मि आदेश होते है।

सुप सु। ५-१०

अर्थ—अकारान्त के अनन्तर सुप् को सु आदेश होता है।

जश् शस् ङस्यासु दीर्घ। ५-११

अर्थ–जसादि के परे अकार को आकार होता है।

एच सुप्यङिङ्सो। ५-१२

अर्थ—सुप् परे होने पर ङि तथा ङस् को छोडकर अ को ऐ होता है।

क्वचिद् ङसि ङयोर्लोप ।　　५-१३

अर्थ—कही पर ङसि तथा ङि परे होने पर आकार का लोप होता है ।

इदुतो शसो णो ।　　५-१४

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त से परे शस् को ण् होता है ।

ङसो वा ।　　५-१५

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त से परे ङस् को विकल्प से ण् होता है ।

जसश्च ओ यूत्वम् ।　　५-१६

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त से परे जस् को ओकार होता है । इकार तथा उकार को ईकार तथा ऊकार होता है और ण भी होता है ।

टाणा ।　　५-१७

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त से परे टा को ण होता ।

सुभिस्सुप्सुदीर्घ ।　　५-१८

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त से परे सु, भिस् तथा सुप् को दीर्घ होता है ।

स्त्रिया शस उदोतौ ।　　५-१९

अर्थ—स्त्रीलिंग मे शस् को उत् तथा ओत् आदेश होते हैं ।

जसो वा ।　　५-२०

अर्थ—स्त्रीलिंग मे जस् को विकल्प से उत् तथा ओत् होते हैं ।

अमिह्रस्व ।　　५-२१

अर्थ—स्त्रीलिंग मे अम् परे होने पर ह्रस्व होता है ।

टाङस् ङीना मिदेददात ।　　५-२२

अर्थ—टा ङस् तथा ङि को स्त्रीलिंग मे इत्, एत, अत् तथा आत् ये आदेश होते हैं ।

नातोऽदातो ।　　५-२३

अर्थ—आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के अनन्तर टा, ङस्, ङि को अत् तथा आत् आदेश नही होते ।

आदीतौ वहुलम् ।　　५-२४

अर्थ—स्त्रीलिंग मे आकारान्त शब्द के आ के स्थान पर आकार तथा ईकार विकल्प से होते हैं ।

न नपुंसके ।　　५-२५

अर्थ—नपुसक लिंग मे प्रथमा के एक वचन मे दीर्घ नही होता ।

इज्जश् शसोर्दीर्घश्च ।　　५-२६

अर्थ—नपुसक लिंग में जस् तथा शस् के स्थान पर इकार होता है और पूर्व को दीर्घ होता है ।

नामन्त्रणे सावोत्व दीर्घ विन्दव । ५-२७

अर्थ—आमन्त्रण प्रतीत होने पर सु विभक्ति मे ओकार दीर्घ तथा विन्दु नही होते ।

स्त्रिया मात एत् । ५-२८

अर्थ—स्त्रीलिंग मे आमन्त्रण अर्थं मे सु विभक्ति के परे आकार को एकार होता है ।

ईदूतोर्ह्रस्व । ५-२९

अर्थ—आमन्त्रण मे ईकार तथा ऊकार ह्रस्व होता है ।

सोर्विन्दुर्नपुंसके । ५-३०

अर्थ—नपुंसक लिंग से सु को विन्दु होता है ।

ऋत आर सुपि । ५-३१

अर्थ—ऋकारान्त शब्द को सुप् परे होने पर आर् आदेश होता है ।

मातुरात् । ५-३२

अर्थ—मातृ सम्बन्धी ऋकार को आकार होता है ।

उर्ज्जश्शस्, टाङस्सुप्सुवा । ५-३३

अर्थ—जस्, शस्, टा, ङस्, सुप् तथा सु परे होने पर ऋकार को विकल्प से उ होता है ।

पितृ भ्रातृ जामातृ णामर । ५-३४

अर्थ– पितृ आदि शब्दो के ऋ को सुप् होने पर अर् होता है ।

आ च सौ । ५-३५

अर्थ—सुप परे होने पर पितृ आदि को आ होता है ।

राज्ञश्च । ५-३६

अर्थ—राजन् शब्द को सु विभक्ति के परे आकारादेश होता है ।

आमन्त्रणे वा विन्दु । ५-३७

अर्थ—राजन् शब्द को आमन्त्रण अर्थ मे विकल्प से विन्दु होता है ।

जश्शस्ङसाणो । ५-३८

अर्थ—राजन् शब्द से परे जस्, शस् तथा ङस् को णो आदेश होता है ।

शसएत् । ५-३९

अर्थ—राजन् शब्द से परे शस् को ए आदेश होता है ।

आमोण । ५-४०

अर्थ—राजन् शब्द के परे षष्ठी के वहुवचन आम को ण आदेश होता है ।

टाणा । ५-४१

अर्थ— राजन् शब्द के परे टा को णा आदेश होता है ।

ङसश्च द्वित्व वान्त्यलोपश्च । ५-४२

अर्थ—राजन् शब्द से परे ङस् तथा टा को विकल्प मे द्वित्व होता है और अन्त्य का लोप होता है ।

इदद्वित्वे । ५-४३

अर्थ—राजन् शब्द को द्वित्व न होने पर ङस् तथा टा विभक्ति होने पर इकार होता है ।

आणो णमोरङसि । ५-४४

अर्थ—णो तथा ण मो परे होने पर राजन् के जकार को आकारादेश होता है पर ङस् मे नही होता ।

आत्मनोऽप्पाणो वा । ५-४५

अर्थ—आत्मन् शब्द को अप्पाण आदेश होता है विकल्प से ।

इत्वद्वित्ववर्जं राजवदनादेशे । ५-४६

अर्थ—आत्मन् शब्द को अनादेश होने पर राजन् के समान कार्य होते हैं । पर इकार तथा द्वित्व नहीं होते ।

ब्रह्माद्या आत्मवत् । ५-४७

अर्थ—ब्रह्मा आदि शब्द प्रयोजन के अनुसार आत्मन् शब्द के समान सिद्ध होते हैं ।

छठा अध्याय

मर्वादि जस एत्वम् । ६-१

अर्थ—सर्वादि शब्दो से परे जस् को एकारादेश होता है ।

ङे० : स्सिम्मि त्था । ६-२

अर्थ—सर्व आदि शब्दो से ङि (सप्तमी के एक वचन) के परे होने पर स्सि म्मि तथा त्थ आदेश होते हैं ।

इदमेतत्कि यत्तद् भ्यष्टा इणावा । ६-३

अर्थ—इदम् एद् किम् यद् तथा तद् इनसे परे यदि टा हो तो उसे इण् आदेश विकल्प से होता है ।

आम एसि । ६-४

अर्थ—इदम् आदि शब्दो से परे यदि आम् हो तो उसे एसि आदेश विकल्प से होता है ।

कियत्तद्भ्यो ङस आस॰ । ६-५

अर्थ—ईकारान्त तथा किम् आदि शब्दो से परे ङस् को स्सा तथा से आदेश होते हैं ।

इद्भ्य॰ स्सा से । ६-६

अर्थ—किम् यद् तद् तथा तद् इन शब्दो से परे ङस् को विकल्प मे आस आदेश होता है ।

ङे हिं। ६-७

अर्थ—किम् आदि शब्दो से परे ङि को हिं आदेश विकल्प से होता है।

आहे इ आ काले। ६-८

अर्थ—कि, यद् तथा तद् शब्दो से ङे के काल मे आहे तथा इआ आदेश होते हैं।

त्तो दो ङसे। ६-९

अर्थ—कि, यद् तथा तद् शब्दो से परे ङस् को त्तो तथा दो आदेश होते हैं।

तद ओश्च। ६-१०

अर्थ—तद् शब्द से परे ङस को ओकार विकल्प से होता है।

ङसा से। ६-११

अर्थ—तद् शब्द को ङस् के साथ से आदेश होता है।

आमा सिं। ६-१२

अर्थ—तद् शब्द को आम् विभक्ति के साथ सिं आदेश होता है।

किम क। ६-१३

अर्थ—किं शब्द को सुप् परे होने पर क आदेश होता है।

इदम इम। ६-१४

अर्थ—सुप् परे होने पर इदम् शब्द को इम् आदेश होता है।

स्सस्सिमोरद् वा। ६-१५

अर्थ—स्स तथा स्सि के परे होने पर इदम् को अद् आदेश होता है (विकल्प से)

ङे र्देन ह। ६-१६

अर्थ—इदम् शब्द के दकार के साथ ङे के स्थान पर विकल्प से ह आदेश होता है।

न त्थ। ६-१७

अर्थ—इदम् शब्द से परे ङे के स्थान पर त्थ आदेश नही होता। ६-२ से प्राप्त था।

नपुसके स्वमो रिदमिण मिणमो। ६-१८

अर्थ—नपुसक लिंग मे इदम् शब्द से सु तथा अम् परे होने पर विभक्ति के साथ इद, इण तथा इणमो ये तीन आदेश होते हैं।

एतद सा वो त्व वा। ६-१९

अर्थ—एतद् शब्द को सु विभक्ति परे होने पर विकल्प से ओत्व होता है।

त्तो ङसे ।　　६-२०

अर्थ–एतद् शब्द से परे ङस् को त्तो आदेश होता है।

त्तो त्थयोस्त लोप ।　　६-२१

अर्थ–त्तो तथा त्थ परे होने पर एतद् के तकार का लोप होता है।

तदेतदो स सावनपुंसके ।　　६-२२

अर्थ—नपुंसक लिंग को छोडकर सु परे होने पर तद् तथा एतद् के तकार को सकार होता है।

अद सो दो मु ।　　६-२३

अर्थ—सुप् परे होने पर अदस् के दकार को मु आदेश होता है।

हश्च सौ ।　　६-२४

अर्थ—अदस् शब्द के दकार को सु परे होने पर हकारादेश होता है।

पदस्य ।　　६-२५

अर्थ—यह धिकार सूत्र है। इसके आगे जो कुछ भी कार्य होगा वह पद को होगा।

युष्मदस्त तुम ।　　६-२६

अर्थ—सु परे होने पर युष्मद् को त तथा तुम आदेश होते हैं।

तुं चामि ।　　६-२७

अर्थ—युष्मद् शब्द को अम् परे होने पर तु आदेश विकल्प से होता है।

तुज्झे तुह्मे जसि ।　　६-२८

अर्थ—युष्मद् शब्द को जस् विभक्ति होने पर तुज्झे तथा तुह्मे आदेश होते हैं।

वो च शसि ।　　६-२९

अर्थ—युष्मद् शब्द से शस् परे होने पर युष्मद् को वो आदेश विकल्प से होता है।

टा ङ्यो स्तइ तए तुमए तुमे ।　　६-३०

अर्थ—युष्मद् शब्द से टा तथा ङि विभक्ति परे होने पर युष्मद् के स्थान पर तइ, तए, तुमए तथा तुमे ये चार आदेश होते हैं।

ङसि तुमो तुह तुज्झ तुह्म तुम्मा ।　　६-३१

अर्थ—युष्मद् शब्द से ङसि मे युष्मद् को तुमो, तुह, तुज्झ, तुह्म तथा तुम्म आदेश होते हैं।

आङि च ते दे ।　　६-३२

अर्थ—युष्मद् शब्द से तृतीया एक वचन आङ् तथा ङसि मे भी ते तथा दे आदेश होते हैं।

तुमाइ च।

६-३३

अर्थ—युष्मद् शब्द के आङ् परे होने पर तुमाइ आदेश होता है।

तुज्झेहि तुह्मेहि तुम्मेहि भिसि।

६-३४

अर्थ—युष्मद् शब्द को भिस् परे होने पर तुज्झेसिं, तुह्मेसिं और तुम्मेहिं आदेश होते हैं।

ङसो तत्तो तइत्तो तुमादो तुमादु तुमाहि।

६-३५

अर्थ—युष्मद् शब्द को ङस् परे होने पर तत्तो, तइत्तो, तुमादो, तुमावु तथा तुमाहि आदेश होते हैं।

तुह्माहितो, तुह्मासुन्तो भ्यसि।

६-३६

अर्थ—युष्मद् शब्द को भ्यस् (पचमी का बहुवचन) परे होने पर तुह्माहित्तो तथा तुह्मासुन्तो आदेश होते हैं।

वो भे तुज्झाण तुह्माण मामि।

६-३७

अर्थ—युष्मद् शब्द को आम् परे होने पर वो, भे तुज्झाण तथा तुह्माण आदेश होते हैं।

ङौ तुमम्मि।

६-३८

अर्थ—युष्मद् शब्द को ङि परे होने पर तुमम्मि आदेश होता है।

तुज्झेसु तुम्हेसु सुपि।

६-३९

अर्थ—युष्मद् शब्द को सुप् परे होने पर तुज्झेसु तथा तुह्मेसु आदेश होते हैं।

अस्मदो ह मह महअ सौ।

६-४०

अर्थ—अस्मद् शब्द को सु परे होने पर ह अह अहअ आदेश होते हैं।

अहम्मिरमि च।

६-४१

अर्थ—अस्मद् पद को अम् परे होने पर अहम्मि आदेश होता है।

म मम।

६-४२

अर्थ—अस्मद् पद को अम् परे होने पर म मम आदेश होते हैं।

अह्मे जश्शसो।

६-४३

अर्थ—अस्मद् पद को जस् तथा शस् परे होने पर अह्मे आदेश होता है।

णो शसि।

६-४४

अर्थ—अस्मद् शब्द को शस् परे होने पर णो आदेश होता है।

आङि में ममाइ।

६-४५

अर्थ—अस्मद् पद को आङ् (टा) परे होने पर मे तथा ममाइ आदेश होते हैं।

डौच मइ मए। ६-४६

अर्थ—अस्मद् शब्द को टि परे होने पर मइ तथा मए आदेश होते हैं।

अह्मेहि भिसि। ६-४७

अर्थ—अस्मद् पद को भिस् परे होने पर अह्मेहि आदेश होता है।

मत्तो मइत्तो ममादो ममाद ममाहि ङ्सौ। ६-४८

अर्थ—अस्मद् पद को ङ्स् परे होने पर मत्तो, महत्तो, ममादो, ममादु तथा ममाहि आदेश होते हैं।

अह्माहितो अह्मासु तो भ्यसि। ६-४९

अर्थ—अस्मद् शब्द को भ्यस् परे होने पर अह्माहितो तथा अह्मासु तो आदेश होते हैं।

मे मम मह मज्झ ङसि। ६-५०

अर्थ—अस्मद् पद को ङस् परे होने पर मे, मम, मह तथा मज्झ आदेश होते हैं।

मज्झणो अह्म अह्माण अह्मे आमि। ६-५१

अर्थ—अस्मद् शब्द को आम् परे होने पर मज्झणो, अह्म, अह्माण तथा अह्मे आदेश होते है।

ममम्मि ङौ। ६-५२

अर्थ—अस्मद् पद को ङि परे होने पर ममम्मि आदेश होता है।

अह्मेसु सुपि। ६-५३

अर्थ—अस्मद् पद को सुप् परे होने पर अह्मेसु आदेश होता है।

द्वेर्दो। ६-५४

अर्थ—सुप् परे होने पर द्वि शब्द को दो आदेश होता है।

त्रेस्ति। ६-५५

अर्थ—सुप् परे होने पर त्रि शब्द को ति आदेश होता हैं।

तिण्णि जश् शस्भ्याम्। ६-५६

अर्थ—त्रि शब्द को जस् तथा शस् मे तिण्णि आदेश होता है।

द्वेर्दुवे दोणि वा। ६-५७

अर्थ—द्वि शब्द को जस् तथा शस् परे होने पर दुवे तथा दोणि आदेश होते हैं।

चतुरश्चत्तारो चत्तरि। ६-५८

अर्थ—चतुर् शब्द को जस् तथा शस् परे होने पर चत्तारो तथा चत्तारि आदेश होते हैं।

एषामामोण्ह् । ६-५९

अर्थ—द्वि, त्रि तथा चतुर् शब्दो को आम् परे होने पर ण्ह् आदेश होता है ।

शेषोऽदन्तवत् । ६-६०

अर्थ—शेष विभक्तियो मे अदन्त शब्दो के समान कार्य होता है ।

न ङि ङस्योरेदातौ । ६-६१

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त शब्दो को ङि तथा ङसि विभक्ति मे अदन्त शब्दो के समान एकार तथा आकार नही होता ।

एभ्यसि । ६-६२

अर्थ—इकारान्त तथा उकारान्त शब्दो को भ्यस् परे होने पर अदन्त शब्दो के समान एकार नही होता ।

द्विवचनस्य वहुवचनम् । ६-६३

अर्थ—सव विभक्तियो मे सुवन्त तथा तिङन्त दोनो मे द्विवचन को वहुवचन होता है ।

चतुर्थ्या षष्ठी । ६-६४

अर्थ—चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति होती है ।

सातवां परिच्छेद

ततिपोरिदेतौ । ७-१

अर्थ—त तथा तिप् इनके स्थान पर इत् आदेश होते हैं ।

थास्सिपो सि से । ७-२

अर्थ—थास् और सिप् इन दोनो मे एक एक के स्थान पर सि तथा से ये आदेश होते हैं ।

इड् मिपोमि । ७-३

अर्थ—इट् तथा मिप् इन के स्थान पर मि होता है ।

न्तिहेत्थामोमुमा वहुषु । ७-४

अर्थ—वहुवचन मे तिङ् के स्थान पर न्ति ह, इत्था, मा, मु तथा म ये आदेश होते हैं ।

अत ए से । ७-५

अर्थ—त, तिप्, सिप् तथा थास् इनको ए तथा से आदेश होते हैं ।

अस्तेर्लोप । ७-६

अर्थ—थास् तथा सिप् परे होने पर अस् धातु का लोप होता है ।

मिमोमुमाना मधोहृश्च । ७-७

अर्थ—अस् धातु के परे मि मो मु तथा मा के होने पर इनके नीचे हृ होता है और अस् का लोप हो जाता है ।

यक ईअ इज्जौ । ७-८

अर्थ—यक् के स्थान पर ईअ तथा इज्ज आदेश होते हैं ।

नान्त्यद्वित्वे । ७-९

अर्थ—धातु के अन्त्य को द्वित्व होने पर यक को ईअ तथा इज्ज आदेश होते हैं ।

न्तमाणौ शतृ शानचो । ७-१०

अर्थ—शतृ तथा शानच् प्रत्ययों को क्रम से न्त तथा माण आदेश होते हैं ।

ईचस्त्रियाम् । ७-११

अर्थ—स्त्रीलिंग मे शतृ तथा शानच् को ईकारादेश होता है तथा न्त, माण भी होते हैं ।

धातोर्भविष्यतिहि । ७-१२

अर्थ—भविष्यत् काल में धातु के आगे हि का प्रयोग करना चाहिये ।

उत्तमे स्सा हा च । ७-१३

अर्थ—भविष्यत् काल मे उत्तम पुरुष मे स्सा तथा हा का प्रयोग करना चाहिये और हि का भी ।

मिनास्सवा । ७-१४

अर्थ—भविष्यत् काल मे उत्तम पुरुष मे मि ना के साय धातु के वाद स्स का प्रयोग होना चाहिये ।

मोमुमैहिस्साहित्था । ७-१५

अर्थ—भविष्यत् काल के उत्तम पुरुष मे मो मु म के साथ हिस्सा तथा हित्या आदेश होते हैं (विकल्प से) ।

कृदाश्रुवचि गमि दृशिविदि रूपाणा काहृ दाहृ सोच्छ वोच्छ गच्छ रोच्छ दच्छ वेच्छ । ७-१६

अर्थ—भविष्यत् काल मे उत्तम पुरुष के एक वचन मे कृञ् आदि के स्थान पर काहृ आदि आदेश यथा क्रम होते है ।

श्रुत्रादीना त्रिष्वप्यनुस्वार वर्ज हिलोपश्चवा । ७-१७

अर्थ—श्रु आदि धातुओ को तीनो पुरुषो मे भविष्यत् काल मे सोच्छ आदि आदेश होते है ।

उसुमुविध्यादिष्वेकस्मिन । ७-१८

अर्थ—विधि आदि मे एक प्रत्यय को क्रम से उ, सु, मु आदेश होते हैं ।

न्तुहमोवहुषु । ७-१९

अर्थ—विधि आदि लिंगो मे वहुवचन मे यथा क्रम न्तु ह तथा मोये आदेश होते हैं ।

वर्तमानभविष्यदनद्यतनयोर्ज्ज ज्जावा । ७-२०

अर्थ— वर्तमान भविष्यत् तथा अनद्यतन कालो मे विधि आदि लिंगो मे ज्ज तथा ज्जा आदेश विकल्प से होते हैं ।

मध्येच । ७-२१

अर्थ—वर्तमान भविष्यत् तथा अनद्यतन कालो मे विधि आदि लिंगो मे धातु तथा प्रत्यय के मध्य मे ज्ज तथा ज्जा विकल्प से होते हैं ।

नानेकाच । ७-२२

अर्थ–अनेकाच् धातुओ के मध्य मे ज्ज तथा ज्जा नही होते पर धातु के अन्त मे होते हैं ।

ईअभूते । ७-२३

अर्थ—भूत काल मे धातु के प्रत्यय को ईअ आदेश होता है ।

एकाचो हीअ । ७-२४

अर्थ—भूतकाल मे एकाच धातु से हीअ आदेश होता है ।

अस्तेरासि । ७-२५

अर्थ—भूतकाल मे अस् धातु को आसि यह निपात होता है ।

णिच एदादेरत आत् । ७-२६

अर्थ—णिच् प्रत्यय को एकार होता है और धातु के आदि अकार को आ होता है ।

आवेच । ७-२७

अर्थ—णिच् को आवे आदेश होता है और अ को आ भी होता है ।

आवि क्त कर्मभावेषु वा । ७-२८

अर्थ—भाव कर्म मे तथा क्त प्रत्यय के परे होने पर णिच् को आवि आदेश विकल्प से होता है ।

नैदावे । ७-२९

अर्थ—क्त तथा भावकर्म मे णिच् प्रत्यय को ए तथा आवे आदेश नही होते हैं ।

अतआमिपिवा । ७-३०

अर्थ—अकारान्त धातु से मिप् परे होने पर विकल्प से आ होता है ।

इच्च वहुषु । ७-३१

अर्थ–वहुवचन मे मि तथा मिप् परे होने पर अकार को इकार तथा आकार होता है ।

क्ते। ७-३२

अर्थ—क्त प्रत्यय के परे अ को इ होता है।

एच क्त्वा तुमुन तव्य भविष्यत्सु। ७-३३

अर्थ—क्तवा, तुमुन् तथा तव्य प्रत्ययो मे भविष्यत काल मे अ को ए तथा इ होता है।

लादेशेवा। ७-३४

अर्थ—लकारादेश मे अ को ए विकल्प से होता है।

आठवाँ परिच्छेद

भुवोहोहुवो। ८-१

अर्थ—भू धातु को हो हुवो ये आदेश होते है।

क्ते हू। ८-२

अर्थ—भू धातु को क्त प्रत्यय के परे हु आदेश होता है।

प्रादेर्भव। ८-३

अर्थ—प्रादि उपसर्गो के होने पर भू धातु को भव आदेश होता है।

त्वरस्तुवर। ८-४

अर्थ—जित्वरा सम्भ्रमे इम धातु को स्तुवर आदेश होता है।

क्ते तुर। ८-५

अर्थ—क्त प्रत्यय परे होने पर तुर आदेश होता है।

घुणो घोल। ८-६

अर्थ—घुण घूर्ण भ्रमणे इस धातु को घोल आदेश होता है।

णुदो णोल्ल। ८-७

अर्थ–णुद प्रेरणे इस धातु को णोल्ल आदेश होता है।

दूडो दूम। ८-८

अर्थ—दूङ् परितापे इस धातु को दूम आदेश होता है।

पटे फल। ८-९

अर्थ—पद गतौ इस धातु को फल आदेश होता है।

पदे पाल। ८-१०

अर्थ—पद गतौ इस धातु को पाल आदेश होता है।

वृप कृप मृप हृपा मृतोऽरि। ८-११

अर्थ—वृपादिधातुओ के ऋ के स्थान पर अरि आदेश होता है।

ऋतोऽर.। ८-१२

अर्थ—ऋकारान्त धातु के ऋ को अर होता है।

कृञ्‌ कुणोवा । ८-१३

अर्थ—डुकृञ्‌ करणे इस धातु के प्रयोग मे विकल्प से कुण आदेश होता है।

जृभो जभाअ । ८-१४

अर्थ—जभिजृभी गात्र विनामे इस धातु को जभाअ आदेश होता है।

ग्रहे गेण्ह । ८-१५

अर्थ—ग्रह उपादाने इस धातु को गेण्ह आदेश होता है।

घेत्‌ क्त्वा तुमुन्‌ तव्येषु । ८-१६

अर्थ - क्त्वा, तुमुन्‌ तथा तव्यत्‌ प्रत्यो के परे होने पर ग्रह धातु को घेत्‌ आदेश होता है।

कृञ्‌ का भूत भविष्यतोश्च । ८-१७

अर्थ—भूत तथा भविष्यत्‌ काल मे कृञ्‌ धातु को का आदेश होता है।

स्मरतेर्भर सुमरौ । ८-१८

अर्थ—स्मृचिन्तायाम्‌ इस धातु को भर तथा सुमर आदेश होते है।

भियोभावीहौ । ८-१९

अर्थ—ञिभीभये इस धातु को भा तथा वीह आदेश होते हैं।

जिघ्रते पा पाओ । ८-२०

अर्थ—घ्रागन्धग्रहणे इस धातु को पा तथा पाअ आदेश होते हैं।

म्लैवावाओ । ८-२१

अर्थ—म्लै हर्षक्षये इस धातु को वा तथा वाअ आदेश होते हैं।
(विकल्प से)

तृपस्थिप । ८-२३

अर्थ—तृप तृप्तौ इस धातु को स्थिप आदेश होता है।

ज्ञो जाणमुणौ । ८-२३

अर्थ—ज्ञाअववोधने इस धातु को जाण तथा मुण आदेश होते हैं।

जल्पेर्लोम । ८-२४

अर्थ—जल्पव्यक्तायावाचि इस धातु के ल को म होता है।

ष्ठाध्यागाना ठाअ झाअ गाआ । ८-२५

अर्थ—ष्ठागति निवृत्तौ, ध्यै चिन्तायाम्‌, गै शब्दे इन धातुओ को क्रम से ठाअ, झाअ तथा गाअ आदेश होते है।

ठाझागाश्च वर्तमान भविष्य द्विध्याद्येक वचनेषु । ८-२६

अर्थ—ष्ठा, ध्या, णा को ठा, झा, गा आदेश भी होते हैं वर्तमान भविष्य द्‌ तथा विधि आदि एक वचन मे।

खादिधाव्यो खाधौ । ८-२७

अर्थ—खादृभक्षणे, धावुजवे इन दोनो धातुओ को खा, धा, आदेश होते हैं वर्तमान, भविष्यत्‌ तथा विधि आदि के एक वचन मे।

ग्रसेर्विस । ८-२८

अर्थ—ग्रसु ग्लसु अदने इस धातु को विस आदेश होता है ।

चिञाश्चण । ८-२९

अर्थ—चिञ चयने इस धातु को चिण् होता है ।

क्रिञः किणः । ८-३०

अर्थ—डुक्रीञ् द्रव्य विनिमये इस धातु को किण् आदेश होता है ।

वे क्के च । ८-३१

अर्थ—विपूर्वक क्रीञ धातु को क्के आदेश होता है ।

उद्ध्म उद्धुमा । ८-३२

अर्थ—ध्मा शब्दाग्नि सयोगयो उद् उपसर्ग पूर्वक इस धातु को उद्धुमा आदेश होता है ।

श्रदोधोदह । ८-३३

अर्थ—श्रशब्द पूर्वक 'डुधाञ् धारणपोषणयो' इस धातु को दह आदेश होता है ।

अवाद्गाहेर्वाह । ८-३४

अर्थ—गाहू विलोडने-अव पूर्वक इस धातु को वह आदेश होता है ।

कासेर्वास । ८-३५

अर्थ—अव उपसर्ग पूर्वक कासृ शब्द कुत्सायाम् इस धातु को वास आदेश होता है ।

निरोमाङोमाण. । ८-३६

अर्थ—निर उपसर्ग पूर्वक माङ् माने इस धातु को माण आदेश होता है ।

क्षियोझिज्ज । ८-३७

अर्थ—क्षि क्षये इस धातु को झिज्ज आदेश होता है ।

भिदिच्छिदो रन्त्यस्यन्द । ८-३८

अर्थ—भिदिर् तथा छिदिर् इन धातुओ के अन्त्य को न्द होता है ।

क्वथेढ । ८-३९

अर्थ—क्वथ निष्पाके इस धातु के अन्त्य को ढ होता है ।

वेष्टेश्च । ८-४०

अर्थ वेष्ट वेष्टने इस धातु के अन्त्य को ढ होता है ।

उत्समोर्ल । ८-४१

अर्थ—उत् तथा सम् उपसर्ग पूर्वक वेष्ट धातु के अन्त्य को ल होता है ।

रुदेर्वं. । ८-४२

अर्थ—रुदि र् धातु के अन्त्य को व होता है ।

उदोविज । ८-४३

अर्थ—उत् उपसर्ग पूर्वक यिज् धातु के अन्त्य को व होता है ।

वृधेर्ढ । ८-४४

अर्थ—वृधुवर्धने इस धातु के अन्त्य को ढ होता है ।

हन्तेर्म्म । ८-४५

अर्थ—हन् धातु के अन्त्य को म्म होता है ।

रुषादीनादर्घता । ८-४६

अर्थ—रुष् आदि धातुओ को दीर्घ होता है ।

च्चो व्रज नृत्यो. । ८-४७

अर्थ—व्रज तथा नृत् धातु के जन्त्य को च्च होता है ।

युधिवुध्योर्झ । ८-४८

अर्थ—युधि सम्प्रहारे, वुध अवगहने इन धातुओ के अन्त्य को झ होता है ।

रुधेर्न्धम्भौ । ८-४९

अर्थ—रुधिर् धातु के अन्त्य को न्ध तथा म्म आदेश होते हैं ।

मृदोल' । ८-५०

अर्थ—मृदक्षालने इस धातु के अन्त्य को ल होता है ।

सद्लृपत्य।ड. । ८-५१

अर्थ—शद्लृ शातने, पत्लृ पतने इन धातुओ के अन्त्य को ड होता है ।

शकादीना द्वित्वम् । ८-५२

अर्थ—शक्लृ शक्तौ आदि धातुओ को द्वित्व होता है ।

स्फुटिचल्योवा ८-५३

अर्थ—स्फुट विकसने, चलकम्पने इनके अन्त्य को विकल्प से द्वित्व होता है ।

प्रादेर्मील । ८-५४

अर्थ—प्र आदि उपसर्गों से युक्त मील् धातु को विकल्प से द्वित्व होता है ।

भूजादीना क्त्वा तुमुन तव्येषुलोप । ८-५५

अर्थ—भुज आदि धातुओ के क्तवा तुमुन तथा तव्यत् प्रत्ययो के परे अन्त्य का लोप होता है ।

श्रुहुजिलू धुवा णोऽन्त्येस्व ।	८-५६

अर्थ—इन धातुओ के अन्त मे अ का प्रयोग करना चाहिए और दीर्घ को ह्रस्व भी होता है।

भावकर्म णोव्वंश्च ।	८-५७

अर्थ—८-५६ सूत्र मे कथित धातुओ को भाव कर्म मे व्व होता है और ण भी होता है।

गमादीना द्वित्व वा ।	८-५८

अर्थ—गम् आदि धातुओ को विकल्प से द्वित्व होता है।

लिहेर्लिज्झ ।	८-५९

अर्थ—लिह् आस्वादने इस धातु को लिज्झ आदेश होता है।

हृ ञो र्हीर कीरौ ।	८-६०

अर्थ—हृ ञ् हरणे, डुकाञ् करणे इन धातुओ को हीर तथा कीर आदेश होते हैं।

ग्रहे दीर्घोवा ।	८-६१

अर्थ—भावकर्म के अर्थ मे ग्रह धातु को विकल्प से दीर्घ होता है।

क्तेन दिण्णादय ।	८-६२

अर्थ—क्त प्रत्यय के साथ दिण्य आदि शब्द निपतित हैं।

खिदेर्विसूर ।	८-६३

अर्थ—खिद दैन्ये इस धातु को विसूर आदेश होता है।

क्रुधेर्जूर ।	८-६४

अर्थ—क्रुध कोप ने इस धातु को जूर आदेश होता है।

चर्चेश्चप ।	८-६५

अर्थ—चर्च अध्ययने इस धातु को श्चप आदेश होता है।

त्रसेर्वज्ज ।	८-६६

अर्थ—त्रस उद्वेगे इस धातु को वज्ज आदेश होता है।

मृजेर्लुभसुपौ ।	८-६७

अर्थ—टुमस्जो शुद्धौ इस धातु को लुभ तथा सुप आदेश होते है।

वुट्टखुप्पौमस्जे ।	८-६८

अर्थ—टुमस्जो शुद्धौ इस धातु को वुट्ट तथा खुप्प आदेश होते है।

दृशे पुलअणिअक्क अवक्खा ।	८-६९

अर्थ—दृशिर् प्रेक्षणे इस धातु को पुलअ, णिअक्क तथा अ व क्ख आदेश होते है।

शकेस्तरवअ तीरा । ८-७०

अर्थ—शक्लृ शक्तौ इस धातु को तर, व अ तथा तीर आदेश होते हैं ।

शेषाणामदन्तता । ८-७१

अर्थ—इसी प्रकार अन्य शब्दो को भी अदन्त के समान कार्य होते हैं ।

९वां परिच्छेद

निपाता । ९-१

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है । इसके आगे निपातो का वर्णन है ।

हु दान पृच्छा निर्धारणेषु । ९-२

अर्थ—दान, पृच्छा तथा निर्धारण अर्थो मे हू निपतित होता है ।

विअ वेअ अवधारणे । ९-३

अर्थ—अवधारण अर्थ मे विअ तथा वेअ निपतित हैं ।

ओ सूचना पश्चात्ताप विकल्पेषु । ९-४

अर्थ—सूचना, पश्चात्ताप तथा विकल्प अर्थों में 'ओ' शब्द निपात सज्ञक होता है ।

इर किर किला अनिश्चिताख्याने ९-५

अर्थ—अनिश्चित आख्यान मे इर किर तथा किला निपात सज्ञक होते हैं ।

हु क्खु निश्चय वितर्क मन्भावनेषु । ९-६

अर्थ—निश्चय, वितर्क तथा सम्भावना अर्थों मे हु तथा क्खु निपात सज्ञक होते हैं ।

णवर केवले । ९-७

अर्थ—केवल अर्थ मे णवर निपात सज्ञक होता है ।

आनन्तये णवरि । ९-८

अर्थ—आनन्तर्य अर्थ मे ण वरि निपात सज्ञक होता है ।

किणो प्रश्ने । ९-९

अर्थ—प्रश्नवाची मे किण निपात सज्ञक है ।

अव्वो दु ख सूचना सम्भावनेषु । ९-१०

अर्थ—दु ख सूचना तथा सम्भावना अर्थों मे 'अव्व' निपात सज्ञक है ।

अलाहि निवारणे । ९-११

अर्थ—निवारण अर्थ मे अलाहि शब्द निपात सज्ञक है ।

अइ वले सभाषणे । ९-१२

अर्थ—सम्भाषण अर्थ मे अ इ तथा वले निपात सज्ञक हैं ।

णवि वैपरीत्ये । ९-१३

अर्थ—विपरीत अर्थ मे णवि निपात सज्ञक होता है ।

सू कुत्सायाम् । ९-१४

अर्थ—कुत्सा या निन्दा अर्थ में सू निपात सज्ञक है ।

रे अरे हिरे सम्भाषण रतिकलहा क्षेपेषु । ९-१५

अर्थ—रति, कलह तथा आक्षेप अर्थों मे रे, अरे तथा हिरे निपात संज्ञक हैं ।

म्मिव मिवविअ स्वार्थे । ९-१६

अर्थ—इव के अर्थ मे म्मिव, मिव तथा विअ निपात सज्ञक है ।

अज्ज आमन्त्रणे । ९-१७

अर्थ—आमन्त्रण अर्थ मे अज्ज शब्द निपतित है ।

शेष सस्कृतात् । ९-१८

अर्थ—शेष शब्द सस्कृत के अनुसार है ।

दसवां परिच्छेद

(इस परिच्छेद मे पैशाची प्राकृत का कार्य विधान किया गया है)

पैशाची । १०-१

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है ।

प्रकृति शौरसेनी । १०-२

अर्थ—पैशाची प्राकृत की प्रकृति शौरसेनी प्राकृत है ।

वर्गाणा तृतीय चतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ । १०-३

अर्थ—वर्गों के अयुक्त तथा अनादि तीसरे तथा चौथे वर्णों को क्रमश पहले और दूसरे हो जाते हैं ।

इविस्य पिव । १०-४

अर्थ—इव के स्थान पर पिव आदेश होता है ।

णोन । १०-५

अर्थ—णकार के स्थान पर नकार होता है ।

ष्टस्य सट । १०-६

अर्थ—ष्ट इसके स्थान पर सट आदेश होता है ।

स्नस्य सन । १०-७

अर्थ—स्न के स्थान पर सन आदेश होता है ।

र्यस्यरिअ । १०-८

अर्थ—र्य के स्थान पर रिअ आदेश होता है ।

ज्ञस्यञ्ज । १०-९

अर्थ—ज्ञ के स्थान पर ञ्ज आदेश होता है।

कन्यायान्यस्य । १०-१०

अर्थ—कन्या शब्द मे न्या के स्थान पर ञ्ज आदेश होता है।

ञ्ज ञ्च । १०-११

अर्थ—शौरसेनी द्वारा प्राप्त ञ्ज को ञ्च होता है।

राज्ञो राचि टा ङ सि ङ स् ङिषु वा । १०-१२

अर्थ—राजन् शब्द को टा, ङ सि तथा ङि मे राचि आदेश विकल्प से होता है।

क्त्व स्तून । १०-१३

अर्थ—क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर तून आदेश होता है।

हृदयस्य हितअक । १०-१४

अर्थ—हृदय के स्थान पर हित अक शब्द निपतित है।

ग्यारहवां परिच्छेद

(इस परिच्छेद मे मागधी प्राकृत का कार्य वर्णित है)

मागधी । ११-१

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है।

प्रकृति शौरसेनी । ११-२

अर्थ—मागधी की प्रकृति शौरसेनी है।

षसो श । ११-३

अर्थ—ष तथा स के स्थान पर श होता है।

जो य । ११-४

अर्थ—जकार को यकार होता है।

चवर्गस्य स्पष्टता तथोच्चारण । ११-५

अर्थ—चवर्ग का स्पष्ट उच्चारण होना चाहिये।

हृदयस्य हडक्क । ११-६

अर्थ—हृदय को हडक्क आदेश होता है।

र्य र्ज यो र्य्य । ११-७

अर्थ—र्य तथा र्ज के स्थान पर य्य आदेश होता है।

क्षस्य स्क । ११-८

अर्थ—क्ष के स्थान पर स्क आदेश होता है।

अ स्मद सौ हके हगे अह के । ११-९

अर्थ—अस्मद् के स्थान पर सु विभक्ति परे होने पर हके हगे तथा अहके आदेश होते हैं ।

अत इदेतौ लु क् च । ११-१०

अर्थ—अकारान्त शब्द से सु विभक्ति परे होने पर इकार तथा एकार होता है ।

क्तान्तादुश्च । ११-११

अर्थ—क्त प्रत्ययान्त शब्दो मे सु विभक्ति परे होने पर उकार होता है ।

ङसो हो वा दीर्घत्व च । ११-१२

अर्थ—ङस् परे होने पर हकारादेश होता है और दीर्घ भी हो जाता है ।

अदीर्घ सम्वुद्धौ । ११-१३

अर्थ—अकारान्त शब्द के अकार को सम्वोधन मे दीर्घ होता है ।

चिट्ठस्य चिष्ठ । ११-१४

अर्थ—चिट्ठ को चिष्ठ आदेश होता है ।

कृञ्, मृङ् गमा क्तस्य ड । ११-१५

अर्थ—इन धातुओ के क्त प्रत्यय को ड आदेश होता है ।

क्त्वो दाणि । ११-१६

अर्थ—क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर दाणि आदेश होता है ।

शृगाल शब्दस्य शिआला शिआलका । ११-१७

अर्थ—शृगाल शब्द के स्थान पर शिआल तथा शिआलक आदेश होते हैं ।

बारहवां परिच्छेद

(इस परिच्छेद मे शौरसेनी प्राकृत का वर्णन किया गया है)

शौरसेनी । १२-१

अर्थ—यह अधिकार सूत्र है ।

प्रकृति सस्कृतम् । १२-२

अर्थ—इसकी प्रकृति सस्कृत है ।

अनादावयुजो स्तथ योर्दधौ । १२-३

अर्थ—असयुक्त तथा अनादि में वर्तमान त तथा थ को द तथा ध क्रम से होते हैं ।

व्यापृते ड । १२-४

अर्थ—व्यापृत शब्द के त को ड होता है।

पुत्तेपि क्वचित् । १२-५

अर्थ—कही-कही पर पुत्त शब्द के त को भी ड होता है।

इ गृध्र समेषु । १२-६

अर्थ—गृध्र के समान शब्दो मे ऋ को इ होता है।

ब्रह्मण्य विज्ञ यज्ञ कन्यकाना ण्यज्ञ न्याना ञ्जोर्वा । १२-७

अर्थ—इन शब्दो के ण्य, ज्ञ तथा न्य को विकल्प से ञ्ज होता है।

सर्व ज्ञेङ्गितज्ञयोर्ण । १२-८

अर्थ—सर्वज्ञ तथा इङ्गितज्ञ के अन्त के सयुक्त वर्ण को ण होता है।

क्त्व इअ १२-९

अर्थ—क्त्व को इअ आदेश होता है।

कृगमो दुअ । १२-१०

अर्थ—कृ तथा गम् धातु से परे क्त्वा प्रत्यय को दुअ आदेश होता है।

णि र्ज्जश्‍ शसो र्वा क्लीवे स्वर दीर्घश्च । १२-११

अर्थ—नपुसक लिग मे जस् तथा शस् को णि होता है और पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है।

भोभु वस्तिङि । १२-१२

अर्थ—तिङ् परे होने पर भू धातु को भो होता है।

न लृटि । १२-१३

अर्थ—लृट् लकार में भू धातु को भो नही होता।

ददाते दे दइस्स लृटि । १२-१४

अर्थ—दा धातु को लिङ् मे दे आदेश होता है और लृट् लकार मे दइस्स होता है।

डुकृञ्‍ कर । १२-१५

अर्थ—डुकृ ञ् धातु को कर आदेश होता है।

स्थश्चिट्ठ । १२-१६

अर्थ—तिङ् मे स्था धातु को चिट्ठ आदेश होता है।

स्मरते सुमर । १२-१७

अर्थ—तिङ् मे स्मृ धातु को सुमर आदेश होता है।

दृश पेक्ख । १२-१८

अर्थ—दृश् धातु को तिङ् मे पेक्ख आदेश होता है।

अस्तेरच्छ । १२-१९

अर्थ—अस् धातु को तिङ् मे अच्छ आदेश होता है।

तिपित्थि ।   १२-२०

अर्थ–अम् धातु को तिप् के योग मे त्थि आदेश होता है ।

भविष्यति मिपा स्स वा स्वर दीर्घत्वं च ।   १२-२१

अर्थ–अस् धातु को भविष्यत् काल मे मिप् के साथ न्सं आदेश होता है और धातु को दीर्घ भी होता है ।

स्त्रिया मित्थी ।   १२-२२

अर्थ—स्त्री शब्द के स्थान पर इत्थी आदेश होता है ।

एवस्य जेव्व ।   १२-२३

अर्थ–एव शब्द को जेव्व आदेश होता है ।

इवस्य विअ।   १२-२४

अर्थ–इव को विअ आदेश होता है ।

अस्मदो जसा वअ च ।   १२-२५

अर्थ—अस्मद् शब्द को जस् के साथ वअ आदेश होता है ।

सर्वनामा ङे सि त्वा ।   १२-२६

अर्थ—सर्व नामो को ङि विभक्ति से सित्वा आदेश होता है ।

धातोर्भाव कर्तृ कर्मसु परस्मैपदम् ।   १२-२७

अर्थ–शौरसेनी मे भाव याच्य, कर्म वाच्य तथा कर्तृ वाच्य मे परस्मैपद होता है ।

अनन्त्य एच्च ।   १२-२८

अर्थ—अन्त्य से भिन्न वर्ण को एकार होता है ।

मिपो लोटि च ।   १२-२९

अर्थ—लोट् लकार मे मिप् को ए होता है ।

आश्चर्यस्याच्चरिअ ।   १२-३०

अर्थ—आश्चर्य को अच्चरिअ आदेश होता है ।

प्रकृत्या दोला दण्ड दशनेषु ।   १२-३१

अर्थ—दोला, दण्ड तथा दशन शब्दो को प्रकृतिवद् भाव (वैसे के वैसे रहना) होता है ।

शेष महाराष्ट्रीवत् ।   १२-३२

अर्थ–शेष कार्य महाराष्ट्री के समान होता है ।